जल बिन्दु महाकाव्य

भाग-1

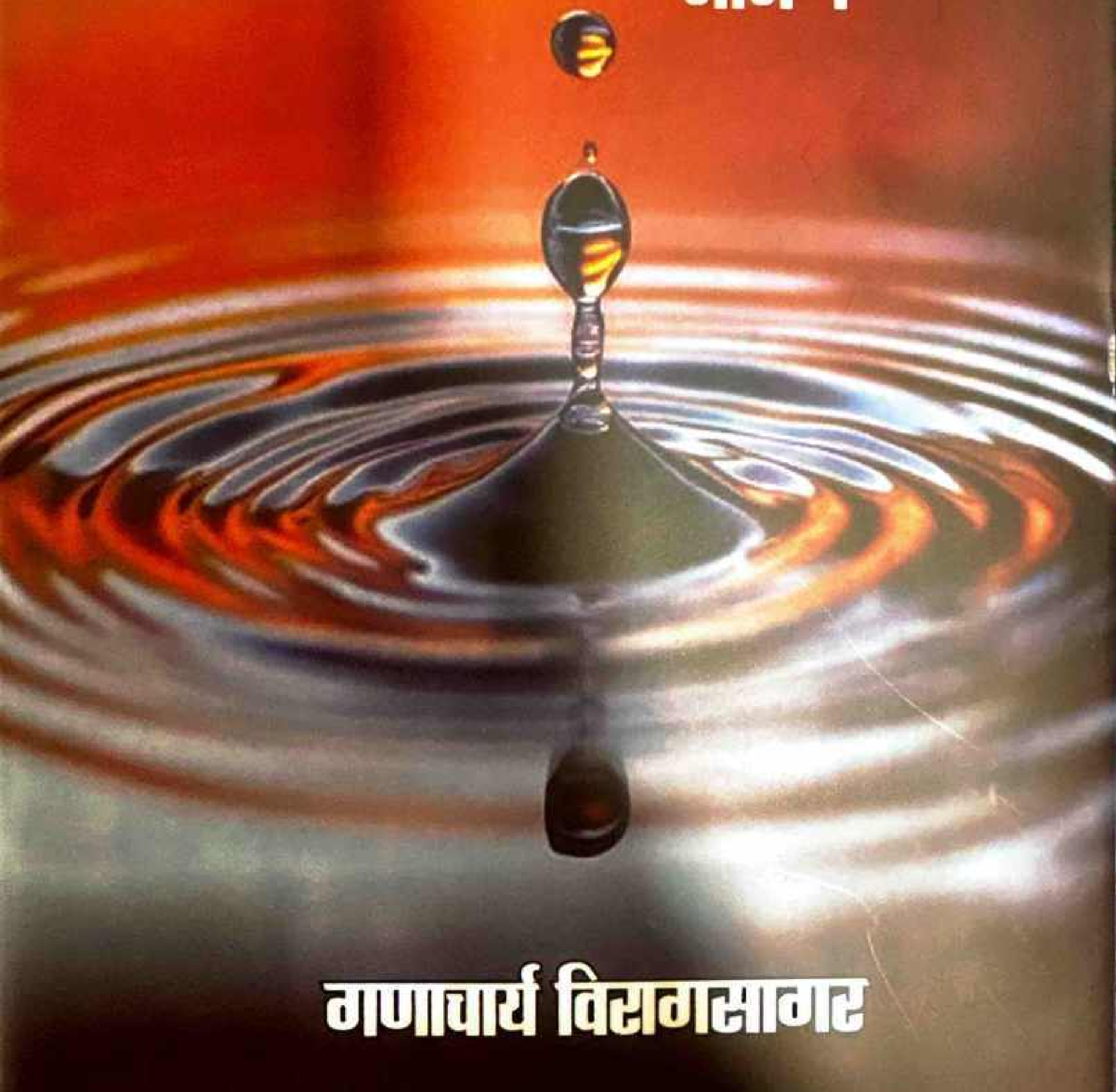

गणाचार्य विरागसागर

साहित्य सृष्टि एवं शिष्य सृष्टि के सृजेता

सदा-सर्वत्र समादरणीय संत संस्तुत्य परमोत्तम पुरुष गणाचार्य श्री 108 विरागसागर जी महाराज! आप भगवान महावीर की आचार्य परम्परा में प्रतिष्ठित युग प्रधान दिगम्बर आचार्य वीतराग निर्ग्रन्थ श्रमण महामुनिराज हैं।

भारतीय श्रमण संस्कृति संत परम्परा के श्रेष्ठ शिल्पी हैं। आपके दीक्षा सिद्ध हस्त कमलों से लगभग पाँच सौ से अधिक श्रमण संघ दीक्षित हुआ। शताधिक अचेतन कृतियों को आपने प्रसूत किया।

राष्ट्रभाषा हिन्दी, देववाणी संस्कृत! प्राच्य भाषा प्राकृत पर आपका सिद्ध हस्त अधिकार है। आप त्रिभाषा महाकवि । विद्या वाचस्पति है। आप शताधिक अलंकरणों समेत उपाधि पत्रों से पूज्यपाद हैं।

वाणी में माधुर्य, शब्दों में ओज, चेहरे पर तेज भाषा में विनम्रता, प्रयोग में शिष्टाचार आचरण में पंचाचार चिन्तन में विश्वहित, प्रवचन में हितोपदेश, प्रतिज्ञा में अटल जीवन में संयम, लक्ष्य में समाधि, प्रयत्नमें साधना लेखन में निरन्तरता, चर्या में नियमितता, चर्चा में आगम समाहित हैं।

कोटि-कोटि मानवों को आत्म कल्याण दृष्टय, प्राणिमात्र पर करुणा वृष्टि कर्ता । श्री गुरुदेव विराग सागर जी इस जल-बिन्दु महाकाव्य के रचयिता महाकवीश्वर है।

प्रस्तुत महाकाव्य सन् 2000 में सिध्द क्षेत्र सम्मेद शिखर से प्रारंभ हुआ। सन् 2023 में जन्म भूमि पथरिया में प्रकाश में आया। सन् 2024 में अन्तरंग संशोधन के साथ 2 जुलाई को देवमूर्ति जालना (विराग समाधि तीर्थ) में पूर्ण हुआ।

प्रस्तुत जलबिन्दु महाकाव्य

श्री गुरुदेव के काव्य साहित्य सृष्टि की अंतिम अद्वितीय महारचना है। जो विश्वहिताय उदार भावना से संवोधनात्मक संदेशात्मक विवेक दृष्टि दायक आलेखन है।

मेरी चिरकालीन भावना भरी प्रार्थनाओं के फलस्वरूप मुझे गुरुदेव का आशीर्वाद प्रकाशन का सौभाग्य भी मिला।

कृतज्ञता पूर्वक आपकी कृति, आपके लिए समर्पण

जल बिन्दु महाकाव्य

भाग - 1

प्रकाशक / लेखक की अनुमति के बिना इस पुस्तक को या इसके किसी अंश को संक्षिप्त, परिवर्धित कर प्रकाशित करना या फ़िल्म आदि बनाना कानूनी अपराध है।

जल बिन्दु महाकाव्य

भाग - 1

कविवर

प. पू. गणाचार्य विरागसागर जी

भारतीय ज्ञानपीठ

ISBN 978-93-94212-56-5

जलबिन्दु महाकाव्य भाग -1

(महाकाव्य)

कविवर- प. पू. गणाचार्य विरागसागर जी

शब्दसंशोधन - आर्यिका विबोधश्री माताश्री (ससंघ)

प्रकाशक : भारतीय ज्ञानपीठ

18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली-110 003

© भारतीय ज्ञानपीठ

JALBINDU MAHAKAVYA PART -1

(EPIC)

by Param Pujya Ganacharya Viragsagar ji

Published by
Bharatiya Jnanpith
18, Institutional Area, Lodi Road,
New Delhi-110003
Ph.: 011-24626467; 41523423
Mob.: 9350536020, 9810015517
e-mail: sales@jnanpith.net,
gmbharatiyajnanpith@gmail.com
website: www.jnanpith.net

First Edition : 2025
Price : Rs. 650

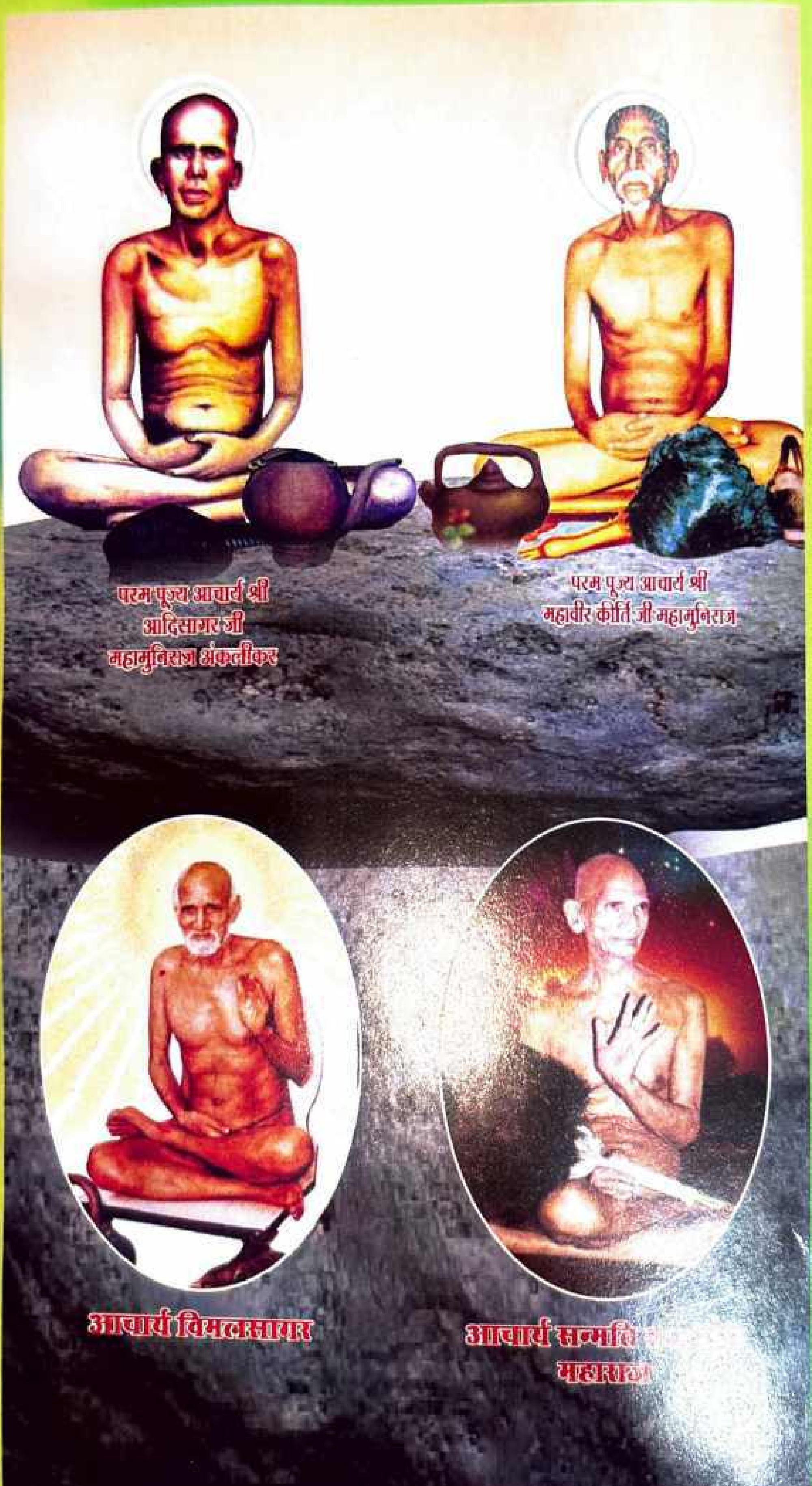
परम पूज्य आचार्य श्री
आदिसागर जी
महामुनिराज अंकलीकर
परम पूज्य आचार्य श्री
महावीर कीर्ति जी महामुनिराज
आचार्य विमलसागर
आचार्य सन्मति

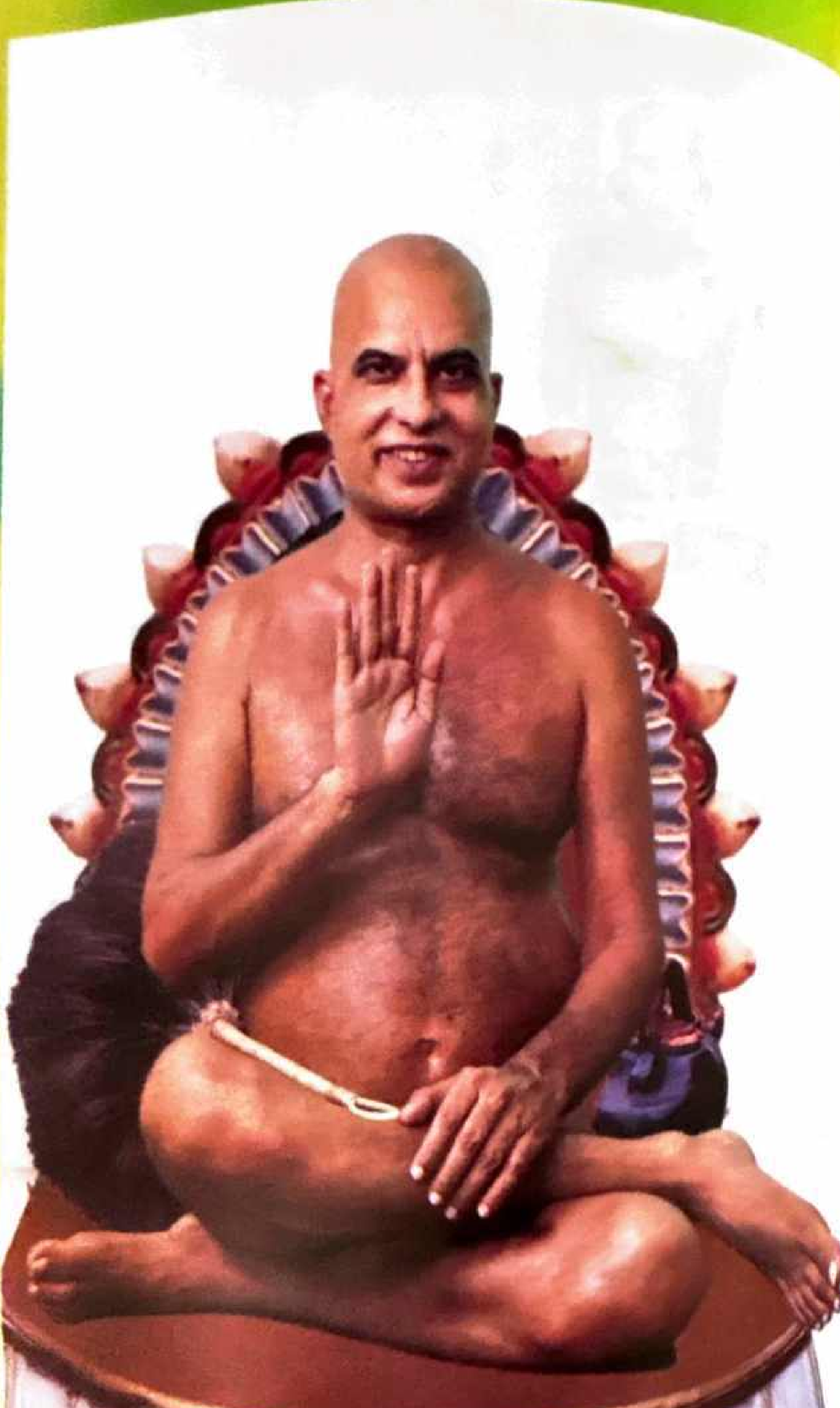

युग सर्वोत्कृष्ट साधक प.पू. गणाचार्य श्री विराग सागर जी महामुनिराज

गुरुमुख निःसृत चतुर्विध संघ संरक्षक
पट्टाचार्य श्री विशुद्ध सागर जी महामुनिराज

प्रकाशन प्रेरणा
श्रमणाचार्य 108 विभव सागर जी महामुनिराज

शास्त्र दान दातार

1. राजेंद्र भूता मंजुला भूता सोनल कार्या गौरव मेहर रवि शीतल श्रेया जिनास्था भूता योगीनगर बोरीवली मुम्बई
2. श्री मती सुनीता अशोक पलक ,पीयूष, विराज, बड़जात्या परिवार इंदौर (म.प्र) गुमास्ता नगर
3. राहुल सिंघई, रत्नेश सिंघई गरिमा, अर्पणा, आरवी, अर्हन, सामर्थ सिंघई परिवार, भोपाल
4. जतिन जी जैन सोनल जी श्री मति क्रांति जैन अशोक जैन हार्दिक जैन गोरेगांव मुम्बई
5. श्री दिनेश वकील मुम्बई
6. श्री श्रेयांश जैन भोपाल
   (सौरभ कुमार जैन)
7. श्री मति हेमलता बांसवाड़ा (राज.)
8. श्री संदीप कुमार श्री अमित लाल जी च[illegible]त मूंगाणा (राज.)
9. श्री रवि कुमार श्रद्धा (रतलाम म.प्र.)
10. श्री कैलाश जी श्री मति गगवाल इंदौर म.प्र.
11. श्री प्रदीप डॉ कोरवा
12. श्री अतुल जैन (स्वाध्याय श्री माताजी)इंदौर
13. श्री सागरमल २. श्री संजय जैन अरथूना
14. श्री गुड्डा जैन बांसवाड़ा (राज.)
15. श्री वीरेंद्र भूता श्री नरेश भूता बोरीवली मुम्बई

परम पूज्य गणाचार्य श्री विराग सागर जी महाराज का

अंतिम उपदेश

जीवन क्षणभंगुर है। पता नहीं, किसके जीवन का कब समापन हो जाये ? इसलिए शास्त्रों में, आचार्यों ने कहा-साधुगण पूर्व से ही तैयार रहते हैं। अभी तक इतना विशाल संघ लगभग लगभग 500-550 शिष्य-प्रशिष्य हैं, और जिनशासन की धर्म ध्वजा फहराते रहे हैं।

इसलिए किसी न किसी योग्य शिष्य के लिए ये जिम्मेदारी सौंपकर के हल्का हो जाना चाहिए। यही जिनेन्द्र भगवान की आज्ञा है। तीर्थंकर भगवान की आज्ञा है। आगम की आज्ञा है

हमारे संघ में प्रभावक और कुशल श्रमणाचार्य विशुद्ध सागर जी महाराज हैं। और वे इस जिम्मेदारी को पालन करने में सक्षम और समर्थ हैं।

चूँकि, इतने विशाल संघ में हर किस्म के साधक होते हैं। आचार्यगण बड़ी गम्भीरता से, धैर्य से उन सबका पालन करते हैं। हम चाहते हैं कि विशुद्ध सागर जी महाराज ! ओ अपनी निःस्वार्थ भावना से, साधुओं में बिना राग-द्वेष के, प्रेम, वात्सल्य के साथ सभी का यथोचित ध्यान रखें। चर्या सभी की श्रेष्ठ हो। क्योंकि शिथिलता के संस्कार एक बार आ जाते हैं तो उनका चेंज करना बड़ा कठिन होता है।

तीसरी, वे इन सब बातों का ध्यान रखें। महाराजों में हमारे बहुत सारे महाराज हैं। विवर्धन सागर जी महाराज हैं, विनिश्चय, विहर्ष विभव आदि-आदि। विहर्ष सागर जी महाराज हैं। सदैव-सदैव जिन्होंने कन्धे-से-कन्धे मिलाकर चले हैं। सहयोगी रहे हैं। भविष्य में भी उनका सहयोग अनवरत बना रहे।

सात आचार्य हैं। आठ व सात उपाध्याय हैं। गणधर हैं। स्थविर हैं। प्रवर्तक हैं। गणिनी माता जी लोग हैं। वो अपने-अपने संघ का अच्छी तरह से पालन करें। अपन लोग सहयोगी बनें। ऐसा मेरा आपके लिए एक उपदेश है, संकेत है, आदेश है।

परम पूज्य गणाचार्य श्री विराग सागर जी महाराज का

अंतिम उपदेश

साधु जीवन का धैर्य से, गंभीरता से पालन करना और कराना यह आचार्यों का उत्तम दायित्व
होता है। इसलिए आज मेरे मन में आया– समय के पूर्व, कल का क्या भरोसा ? आज बोल पा
रहे। कल बोल पाये या न बोल पायें। आज ध्यान है, कल ध्यान रख पाये न रख पाये। इसलिए
एक पूर्व संकेत सभी साधु, सभी शिष्य, प्रशिष्यगण पालन करें।

परम पूज्य आचार्य गुरुदेव विमल सागर जी महाराज और अपने संघ की जो पद्धतियाँ हैं, जो
परम्पराएँ हैं उनका भलीभाँति, बिना इनमें समझौता किये पालन करते रहें। और सभी को
पालन कराते रहें।

मेरी भावना है सभी में चर्या में एकीकरण रहे, एकता रहे। और भरोसा है– सभी योग्य शिष्य हैं
और वे निश्चित इस विषय में सोचेंगे और पालन करेंगे। जैन धर्म की ध्वजा फहराते रहेंगे।

इतने दिनों में मेरे से जाने में, अन्जाने में, जानता हूँ प्रमाद में राग–द्वेष, मोह के वशीभूत होकर के
कहीं कोई त्रुटि हो तो सभी लोग मुझे क्षमा करें। और मैं भी सभी लोगों के लिए, सभी साधुओं
के लिए क्षमा प्रदान करता हूँ।

अभी वसुनंदी का भी समाचार आया था– उन्होंने भी क्षमा याचना की पवित्र भावना रखी,
उनके लिए भी मेरा आशीर्वाद है।

सभी प्रेम, वात्सल्य से रहे और धर्म की प्रभावना करते रहे।

यही मेरा आशीर्वाद...

यह संदेश समाधि के एक दिन पूर्व दोपहर 3:00 से 4: 00 के मध्य दिया।

लिपि : आचार्य विभवसागर

साभार : जिनवाणी चैनल

अंतिम श्रोता : अरुण कोटड़िया, अहमदाबाद

प्रस्तावना

-प.पू. गणाचार्य श्री विरागसागर जी महाराज

भारतीय श्रमण परंपरा आद्य परंपरा है जिसमें अनेकों प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, मराठी, सौरसेनी, मागधी, गुजराती, कन्नड़ी, तमिल, तेलगू, पेशाची, उर्दू, हिन्दी आदि विभिन्न भाषाओं में अनेकों बड़े-बड़े महाकाव्य, प्रबन्ध काव्य और खण्ड काव्य, श्रव्य तथा दृश्य काव्य लिखे गये। प्राय: सभी काव्य विभिन्न छंदोबद्ध शैली में अपने विषय का साङ्गोपाङ्ग वर्णन करते हैं ।

इसे ही वाङ्गमय कहते हैं आदिपुराण में उल्लेख है कि (प्रथम तीर्थङ्कर) महाराजा ऋषभदेव ने गृहस्थावस्था में अपनी ब्राह्मी, सुन्दरी नामक पुत्रियों को स्वयं वाङ्गमय का उपदेश दिया था[1]। वहाँ वाङ्गमय का स्वरूप इस प्रकार से निरूपित है- "वाङ्गमय के जानने वाले गणधरादि देव व्याकरण शास्त्र छन्द शास्त्र और अंलकार शास्त्र इन तीनों के समूह को वाङ्गमय कहते हैं[2]।" भगवान ऋषभदेव ने अनेकों अध्यायों से युक्त छन्द शास्त्र का भी उपदेश दिया था और उसके उक्ता, अत्युक्ता आदि छब्बीस भेद बतलाए थे[3]। तथा अनेक विद्याओं के अधिपति भगवान ने प्रस्तार, नष्ट, उद्दिष्ट, एक-द्वि-त्रि लघु क्रिया, संख्या, अध्वयोग और छन्द शास्त्र के इन छ: प्रत्ययों का भी निरूपण किया था[4]। भगवान ने अलंकार संग्रह रचा जिसमें उपमा, रूपक, यमक आदि अलंकारों का कथन किया था उनके शब्दालंकार और अर्थालंकार रूप दो भागों का विस्तार के साथ वर्णन किया था और माधुर्य ,ओज आदि दस प्राण अर्थात गुणों का भी वर्णन किया था[5]।

अत: हम गर्व से कह सकते हैं कि काव्य और महाकाव्य लिखने की आद्य शिक्षा अरबों खरबों वर्षों पूर्व भगवान ऋषभदेव से चली आ रही

---

1. जैन आदिपुराण पर्व- 16/109-110 2. वही पर्व - 16/111
3. वही पर्व- 16/113 4. वही पर्व- 16/114 5. वही- 16/115

है। वे ही इसके आद्य प्रेणता तथा शिक्षा प्रदाता आद्य गुरू थे। उनसे ही प्रदत्त काव्य महाकाव्य लेखन की परंपरा समग्र भारत देश में ही नहीं किन्तु अन्य अन्य देशों में भी भीप्रचारित हुई। तथा अन्य देशों में प्रचलित छन्दों का भी हमारे देश में प्रचलन हुआ। इसे हम अतुकान्तिक छन्द के नाम से पुकारते हैं। यह छन्द, छन्द शास्त्रों की विधा से अत्यंत भिन्न है क्योंकि न तो इसमें वर्णों की गणना है और न मात्राओं की, अत: हम इसे न वार्णिक छन्द कह सकते हैं और न ही मात्रिक छन्द कह सकते हैं पर लोगों का इसमें रुझान है और आज की आवश्यकता है।

यद्यपि गहराई से अध्ययन करने से लगता है कि यह विद्या भी हमारी भारतीय विद्या रही है। समय-समय पर कभी गद्यात्मक कवितों तो कभी पद्यात्मक कविताएँ लिखने में उतार चढ़ाव चलता रहा है। इसे हम आगे सविस्तृत बतायेंगे। इस छन्द में कम ही महाकाव्य लिखे गये हैं अत: आज से बीस-पच्चीस वर्ष पूर्व से ही "जल बिन्दु महाकाव्य" लिखने का मेरा मन हुआ था यथासमय लेखन भी प्रारम्भ हुआ पर विभिन्न संस्कृत टीकाओं के लेखन की व्यस्तताओं में तथा यात्रा इत्यादि परिस्थितिवश ग्रन्थ लेखन में बहुत विलम्ब हुआ पर इस अवधि में अन्य भी महत्वपूर्ण लेखन कार्य हुए।

यथा- 1999-2007 तक इस काल में विहार, झारखण्ड, छत्तीसगढ़, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, कर्नाटक, तमिलनाडू आदि में स्थित तीर्थ वंदना परक मुख्यत: तीर्थ यात्रा काल 2008, सर्वोदया संस्कृत टीका 2012, रत्नत्रयवर्धिनी संस्कृत टीका 2015, तीन हजार संस्कृत चूर्णी सूत्र 2016, श्रमण प्रबोधिनी टीका 2018, श्रमण सम्बोधिनी टीकाओं के लेखन की व्यस्ततावशात् "जल बिन्दु महाकाव्य" लेखन में यद्यपि काफी विलम्ब हुआ तथापि इस मध्य अनेकों छोटे-छोटे शोधात्मक ग्रन्थ भी लिखे गए, जैसे- परम दिगम्बर

जैन मुनि, सर्वोदयी दिगम्बर जैन धर्म, जिनेन्द्र दर्शन-जिनेन्द्र पूजन, व्यसन विचार, तीर्थङ्कर दिव्य दर्शन (तीर्थङ्करों का सविस्तृत परिचय), सम्यग्दर्शन, सल्लेखना से समाधि, सम्मेद शिखर थय-थुई, पाइय भत्ति संग्रह, कोटिशिला, जैन भूगोल, जैन ज्योतिर्लोक, आगमचक्खू साहू, आदि शोधात्मक साहित्यिक उपासना में समय व्यतीत हुआ परन्तु समय-समय पर अनेकों श्रमणाचार्य, श्रमण, श्रमणीगण जल बिन्दु महाकाव्य लिखने के लिए प्रेरित करते रहे। उसी का परिणाम है कि वर्ष 2019-2020 में जल बिन्दु महाकाव्य का लेखन पुन: प्रारम्भ हुआ। इस वर्ष विश्वव्यापी महामारी कोरोना के कारण लगे लॉक डाउन में विहार स्थगित रहा अत: ग्रंथ लेखन में पर्याप्त समय मिला। और ग्रंथ लेखन अनवरत सानन्द चलता रहा। अच्छी बात यह रही कि श्री अजय जैन (भिण्ड) तत्काल इसे टाईप भी करते गये जिससे वर्षो का काम अल्प समय में ही हो गया।

साहित्य ज्ञान सम्पदा है, सरस्वती का खजाना है और विकास की एक विधा है, अपने मन्तव्य को प्रगट करने वाली कला है, जगत के अनन्तों प्राणियों के अनन्त-अनन्त विचार हैं ।कोई उन्हें गद्य रूप में प्रस्तुत करता है तो कोई उन्हें पद्य रूप में प्रस्तुत करता है।
श्रोता तथा पाठकों की भी तदनुरूप अपनी-अपनी अभिरूचि होती है अत: मैं भी अपनी बात को कविताओं के रूप में कहूँगा। जल बिन्दु महाकाव्य में उल्लिखित कविताओं की समान पंक्तियाँ देख कोई आर्या, इन्द्रवज्रा आदि छंदों या मुक्तक आदि की तरह गाने का प्रयास न करे क्योंकि यह महाकाव्य उक्त छंदों में नहीं किन्तु अतुकान्तिक गद्य छंद में ही लिखा गया है। दूसरी बात यह है अभी तक यह छंद प्राय: विषम पंक्तियों में ही लिखे गये हैं पर यहाँ इसे सम पंक्तियों में ही बनाने का एक

अभिनव प्रयास किया गया है। प्राचीन आर्ष परम्परानुसार मैं सर्वप्रथम काव्य और महाकाव्य काव्यारम्भ के नियमों पर प्रकाश डालूँगा।

काव्यारम्भ के नियम-

1. काव्य का आरम्भ इष्ट देव, गुरू के लिए नमस्कारात्मक, आर्शीवाद प्राप्त करके तथा वर्ण्य वस्तु के निर्देशात्मक रूप मंगलाचरण से करना चाहिए[6]।

तदनुसार जल बिन्दु महाकाव्य के प्रारम्भ में एक-एक अध्याय के रूप में क्रमशः इष्ट देव, सर्वज्ञ वीतराग अर्हंत देव, जिनवाणी-सरस्वती वंदना तथा गुरू देव गौतम गणधर से लेकर प.पू. वात्सल्य रत्नाकर मम मुनि दीक्षा गुरू आचार्य श्री विमल सागर जी तथा क्षुल्लक दीक्षा गुरू प.पू. तपस्वी सम्राट आचार्य श्री सन्मति सागर जी महाराज की अभिवन्दना की गई है।

2. काव्य लेखन में किसी की नकल नहीं करना चाहिए किन्तु समस्या पूर्ति के लिए ही अन्य काव्यों का आश्रय लेना चाहिए[7]।

तदनुसार जल बिन्दु महाकाव्य में किसी भी काव्य की नकल नहीं की गई है अपितु यह स्वतंत्र रूप से लिखा गया एक अनुपम अद्वितीय महाकाव्य है।

3. दो, तीन या पाँच, छः पदों की रचना करके काव्य प्रणयन का अभ्यास करना चाहिए [8]।

जल बिन्दु महाकाव्य लिखने के पूर्व अनेकों पदों के साथ भावों के विशुद्ध क्षण, मुक्तकांजली भाग 1-2 आदि छोटी-छोटी पुस्तिकायें भी लिखी गई हैं। जिनपर कतिपय शोधार्थियों ने शोधप्रबंध लिखकर डॉक्टरेट की उपाधि प्राप्त की है। इसी प्रकार समय-समय पर अन्य भी अनेकों संस्कृत, प्राकृत तथा हिन्दी छंद लिखे गये हैं।

---

6. अंल चि. 1/98
7. अंल चि. 1 98-99
8. अंल चि. 1/102

महाकवि- काव्य शिक्षा का अनुकरण करने वाला श्रृंगार हास्यादि रस और भाव इत्यादि का विशेषज्ञ शब्द, अर्थ इत्यादि समस्त काव्य अगों के ज्ञान से प्रसन्नचित्त महाकवि होता है। अथवा जो अनेक अर्थों को सूचित करने वाले पद विन्यास से सहित मनोहर रीतियों से युक्त एवं स्पष्ट अर्थ से उद्भाषित प्रबन्धों, काव्यों की रचना करते हैं वे महाकवि कहलाते हैं[9]।

मध्यम एवं जघन्य कवि उक्त लक्षणों से भिन्न मध्यम या जघन्य कवि कहलाते हैं[10]।

कवि की रुचि- कोई शब्द सौन्दर्य, कोई अर्थ सौन्दर्य, कोई समासाधिक पदों के तथा कोई समास रहित पदों के अभिलाषी होते हैं, कोई कोमल, कोई स्फुट (प्रसाद गुण विशिष्ट रचना) कोई मध्यम पद्धति की तथा कोई अन्य ही अभिप्रेत रचना करते है[11]।

त्रिशष्टि शलाका महापुरुषों का वर्णन करने वाला महाकवि स्वर्ग को पाता है[12]।

कविता/काव्य- कविता और काव्य अलग-अलग नहीं हैं किन्तु एक ही हैं दोनों समानर्थक हैं। कविता के विषय में महाकवि जैनाचार्य श्री जिनसेन महाराज महापुराण में लिखतें हैं कि-

जब इस संसार में शब्दों का समूह अनन्त है, वर्णनीय विषय अपनी इच्छा के आधीन है, रस स्पष्ट हैं और उत्तमोत्तम छन्द सुलभ हैं तब कविता करने में दरिद्रता क्यों?[13] कविताएँ और मत-सुन्दर, प्रभावशाली, हृदय स्पर्शी और आकर्षक उक्तियाँ "कविता" कहलाती है। अथवा सुनने में प्रिय शब्दों के समुदाय को कविता कहा जाता है[14]। कविता वही प्रशंसनीय समझी जाती है जो धर्म शास्त्र से सम्बन्ध रखती हो, धर्म शास्त्र के सम्बन्ध से रहित कविता मनोहर होने पर भी पापास्त्रव के लिए होती है[15]।

---

9. महा पु. 16/98, 10. अंल चि. 1/103, 11. अंल चि. 1/104-106, 12. अंल चि. 1/107, 13. महा पु. 101/16, 14. काव्य प्रदीप पृष्ठ 2-3, 15. महा.पु. पर्व-63/16

शब्दों के अर्थ की रमणीयता को काव्य का लक्षण माना है ।
अथवा शब्दों के अर्थ की रमणीयता को काव्य का लक्षण माना है।
शब्द और अर्थ दोनों की सुन्दरता से युक्त कथन को काव्य माना है।
किसी युक्ति में शब्द और अर्थ दोनों का होना अनिवार्य है । शब्द विहीन अर्थ और अर्थ विहीन शब्द की कल्पना साहित्य के अंतर्गत की ही नहीं जा सकती । शब्द और अर्थ दोनों एक दूसरे में मिले हुए रहते है । जैसे काव्य के लिए सुन्दर शब्दों की आवश्यकता होती है वैसे ही उनसे व्यक्त होने वाले सुन्दर अर्थ की भी आवश्यकता होती है किन्तु शब्दों का अर्थ प्रसंग के अनुसार बदल भी जाता है।

कितने ही मिथ्यादृष्टि कानों को प्रिय लगने वाले मनोहर काव्य ग्रन्थ की रचना करते हैं परन्तु उनके वे काव्य अधर्मानुबंधी होने से धर्म शास्त्र के निरूपक न होने से सज्जनों को संतुष्ट नहीं कर सकते ऐसे कितने ही कवि काव्य निर्माण के लिए उद्यम करते हैं परन्तु वे बोलने की इच्छा रखने वाले गूँगे पुरूष की तरह केवल हँसी के ही पात्र होते हैं। योग्यता रहित अपने को कवि मानने वाले कितने ही लोग दूसरे कवियों के कुछ वचनों को लेकर उसकी छाया मात्र कर देते हैं अर्थात थोड़ा परिवर्तन कर उसे अपना मान लेते हैं, जैसे नकली व्यापारी दूसरों से थोड़ा सा सामान ले उसमें कुछ न कुछ परिवर्तन कर व्यापारी बन जाते हैं।

श्रृंगारादि रसों से भरी हुई रसीली कविताओं में सहयोगियों की अपेक्षा नहीं करना चाहिए। अथवा किसी की कविताओं में शब्द, अर्थ में परिवर्तन कर अपनाने की कोशिश नहीं करना चाहिए । जैन महापुराण में आचार्य श्री जिनसेन लिखते हैं कि कोई-कोई शब्दों से भरी सुन्दर पर अर्थ शून्य कविता करते हैं, कोई अर्थ भरी किन्तु पद योजना शून्य कविताएँ लिखते हैं जो आनन्द दायी नहीं होती है। कोई काव्य लेखन प्रारम्भ तो करते हैं पर असमर्थ होने पर पूर्ण नहीं कर पाते हैं। कोई मिथ्या

कवियों का अनुसरण कर कवि कहलाने की कोशिश करते हैं ऐसे कुकवि की अपेक्षा अकवि कहलाना श्रेष्ठ है। कितने ऐसे भी कवि है जो न्याय, व्याकरण आदि महाविद्याओं तथा संगीत कला से शून्य हैं वे अज्ञकाव्य करने की कुचेष्टा करते हैं।

अत: बुद्धिमानों को शास्त्र व अर्थ को अच्छी तरह अभ्यास कर महाकवि आचार्यों की उपासना करके ही ऐसे काव्य की रचना करनी चाहिए जो धर्मोपदेश से सहित हो ,प्रशंसनीय हो , यश को बढ़ाने वाली हो।

उत्तम कवि किसी के द्वारा निकाले गए दोषों से कभी नहीं डरता। कोई संतुष्ट हो या नहीं किन्तु कवि को अपने उद्देश्य को पूर्ण करने का उद्यम करना चाहिए। कितने ही कवि प्राचीन हैं कितने ही नवीन हैं । सभी के मत अलग-अलग हैं अत: सभी को संतुष्ट नहीं किया जा सकता हैं। कोई सुन्दर शब्द, कोई अर्थ, कोई समास, कोई पृथक् पदावली को पसन्द करते हैं [16] ।

कविता के लिए दो बातें आवश्यक है- 1. कविता ऐसी भाषा से व्यक्त की जाए जो साधारणतया व्यवहार में आने वाली भाषा से अधिक सुन्दर और सुसंस्कृत रूप से गढ़ी गई हो।

काव्य- जिसका अर्थ रमणीय और आनन्द प्रदायक हो अत: निर्दोष, गुणपूर्ण, अलंकृत, मनोहर अर्थ समन्वित वाक्य को काव्य कहते हैं। यदि इन विशेषताओं में अन्य विशेषता हो किन्तु अलंकृति (सजावट) न भी हो तो भी वाक्य विशेष को काव्य कहा जा सकता है।

काव्य या कविता के कार्य-

1- विचारों को परिष्कृत कर उन्हें उच्च बनाना

2- हृदय को अनिर्वचनीय आनन्द देना

3- ऐसी भाषा उत्पन्न करना और सदा बनाये रखना जिसके द्वारा

---

16 . महा.पु. पर्व 16/67-78

हमारा जगत के चेतन और अचेतन पदार्थ से एक प्रकार का आत्मीय सम्बन्ध स्थापित हो, पर यह तभी सम्भव है जब सरल और सरस शब्दों में हो एवं उसमें रूप सौष्ठव हो[17]।

4- सरल और सरस शब्दों में व्यक्त मन को मुग्ध करने वाले ऐसे उच्च भावों को कविता कहते हैं जिनसे हमारे विचार देश या काल की सीमा को लांघकर सृष्टि के सभी पदार्थ से मानसिक एकता का अनुभव करने लगें।

5-अर्थात् कविता का विषय ऐसा होना चाहिए जो मानव हृदय पर प्रभावशाली हो और जिसके द्वारा उसमें से पशुत्व का अंश अहंभाव निकलकर सच्चे मनुष्यत्व विश्वबन्धुत्व का भाव प्रतिष्ठित हो जाये।

6- जो ऐसे शब्दों से, ऐसे ढंग से प्रगट किया जाये कि मानव हृदय को अपनी ओर खींच सके, इन बातों को ध्यान में रखकर किसी रसात्मक वाक्य को चाहे वह गद्य में हो चाहे पद्य में, काव्य कह सकते हैं परन्तु हमारे देश में यद्यपि पहले भी गद्य में अपने भाव प्रगट करके उनको ग्रन्थों में रखने की प्रथा थी तथापि लोग अधिकतर पद्य में ही अपनी भावभीनी विनयांजलि छोड़ गए इसलिए प्राचीन समय में जहाँ किसी उक्ति को काव्य के नाम से अभिहित करना पड़ा है वहाँ उसके लिए पद्यात्मक होना आवश्यक सा माना गया है परन्तु गद्यात्मक/अतुकान्तिक छंदों में लिखने की भी परम्परा भारतीय ही थी जो दृश्य या श्रव्य काव्यों में देखी जा सकती है पर समय-समय पर अभिरुचियाँ बदलती रहीं अतः लेखन में भी उतार-चढ़ाव आते रहे हैं। गत शताब्दि से हमारे यहाँ भी विस्मृत गद्य काव्य रचनों युरोपीय देशों की भांति पुनरुज्जीवित हो गई और उनमें भावव्यंजना की जाने लगी है।

काव्य सामग्री काव्य साहित्य- सहित्यिक में आश्रित प्राकृतिक शोभा के समान रीतियाँ काव्य के उत्कर्ष को बढ़ाने वाली होती हैं।

17. का.प्र./पृ.2-3

रीतियाँ-

सहायकों में आश्रित शोभा आत्मा के उत्कर्ष को बढ़ाने वाली होती है उसी प्रकार अपनी आत्मा के समान रीतियाँ भी होती हैं।

जैसे- वीरता इत्यादि गुण आत्म शोभा को बढ़ाते हैं वैसे ही ओज

गुण- शौर्य आदि के समान काव्य में श्लेष इत्यादि अलंकार गुण कहे जाते हैं।

इत्यादि गुण काव्य की उत्कृष्टता में वृद्धि करते हैं।

जैसे- शय्या विश्रान्ति प्रदान करती है वैसे ही पदों के अनुरूप रचना काव्य का उत्कर्ष बढ़ाती है।

शय्या- शय्या के समान पदों के अनुरूप विश्रान्ति देने वाली शय्या है। अथवा पदों के उरनुगुणरूप वाली मैत्रों को शेय्या कहते है।

जैसे- हास्यादि अलंकार शारीरिक शोभा बढ़ाते हैं वृत्तियाँ अर्थप्रकाशन के कारण काव्य का महत्व सूचित करती हैं। रस के स्वाद की भिन्नता प्रकट करने वालों को पाक कहते हैं अथवा अर्थो की गम्भीरता को पाक कहते हैं इसके दो भेद हैं 1. द्रक पाक 2.नावि के लपाक ये सब पदार्थ काव्य की सामग्री हैं[18]।

शब्द, पद, वाक्य, अणु वाक्य और महाकाव्य इन सब को वचन कहा है।

शब्द तीन प्रकार के होते हैं-

1. रूढ़ 2. योगिक 3. योगरूढ़[19]

काव्य के भेद-प्रभेद- महाकवि अजित सेन ने काव्य के मुख्य तीन भेद कहे हैं[20]। 1. गद्य काव्य 2. पद्य काव्य 3. मिश्र काव्य ।। इन्हीं तीनों को क्रमश: छन्दोमय, अछन्दोमय और उभय पद में कहा है।

---

18. अंल चि. 5/144 19. अ.चि. 5/16
20-21. अ.चि. 1/96-98

उभय पद को ही चम्पू काव्य कहते हैं। अथवा काव्य के मुख्य दो भेद भी कहे गये हैं 1. निबद्ध काव्य (जो कि स्व रचित होता है)। 2. अनिबद्ध (जो कि अन्य रचित होता है)" ।

गद्य काव्य/गद्य मुक्तक- यदि गद्यात्मक काव्य में कवित्व के उक्त सब उपादान पाये जाते हैं तो उसे गद्य काव्य या गद्य मुक्तक कहा जाता है।

पद्य और कवित्व- हमारे देश में काव्य ग्रन्थ सदा से पद्यबद्ध होते आए हैं इससे साधारणतया पद्य और कविता एक दूसरे के पर्यायवाचक से हो गए हैं"।

किन्हीं परम्परा के अनुयायी केवल पद्यात्मक रचनाओं को ही काव्य मानते हैं परन्तु ऐसा करके वे आकार को ही (बाहरी ढाँचे को ही) प्रधान मान लेते हैं

कविता की आत्मा कही जाने वाले मूलतत्व की उपेक्षा कर बैठते हैं जो कि ठीक नहीं है वास्तव में कविता के विशिष्ट गुणों से युक्त कथन को चाहे वह गद्य में हो या पद्य में , काव्य कहना अधिक युक्ति पूर्ण है।

काव्य के अन्य प्रकार से भेद- काव्य के 1. दृश्य काव्य और 2. श्रव्य काव्य ये दो भेद भी होते हैं।

1. दृश्य काव्य- सामान्य जनों के हृदय पटल पर भी अपनी मुद्रा अंकित करता है। इसमें कल्पित पात्र राजा-रानी अथवा अन्य व्यक्तियों का रूप बनाकर उनके कथन एवं कार्यो को देहचेष्टाओं ,वचन ,वेश भूषा और शारीरिक विकारों को अश्रु, हँसी आदि सात्विक भावों के द्वारा अनुकरण करते हैं। मैंने इसे मेरे द्वारा ही लिखे गये "प्रद्युम्न हरण "नामक नाटक में प्रस्तुत किया है ।

दृश्य काव्य के अंतर्गत रूपक और उपरूपक आते हैं। रूपक के 10 तथा उपरूपक के 18 भेद होते हैं।

रूपक के 10 भेद-

1- नाटक 2- प्रकरण 3- भाण 4- प्रहसन 5- डिम 6- व्यायोग

---

22. का.प्र./पृ. 5

7- समवकार 8- वीथा 9- ईहामृग 10-अङ्क या उत्सृष्टिकाङ्क

उपरूपक के 18 भेद-

1- नाटिका 2- त्रोटक 3-गोष्ठी 4-सदृक 5- नाट्यरासक 6- प्रस्थानक 7- उल्लाप्य 8-काव्य 9- रासक 10- प्रेङ्खण 11- संलापक 12- श्री गदित 13- शिल्पक 14- विलासिका 15- दुर्मल्लिका 16- प्रकरणिका 17- हललीश 18- भणिका।

इन रूपकों और उपरूपकों की प्रकृति यद्यपि नाटक ही है[23]।

श्रव्य काव्य- सहृदयों के हृदय पर ही अपना प्रभाव डालते हैं। इनमें अभिनय नहीं होता केवल पढ़े जाते हैं, जैसे मुनिसुव्रत काव्य। वहाँ पर कहा भी है-

"श्रव्यंकरोत्येषकिल प्रबंध काव्य"[24]

जैनाचार्य महाकवि श्री जिनसेन का महापुराण रविषेण का पद्म पुराण, चन्द्रप्रभ चरित मुनिसुव्रत काव्य, धर्मशर्माभ्युदय काव्य, वङ्कमाण चरक, धन्य कुमार चरित्र आदि

2. श्रव्य काव्य के भेद-

श्रव्य काव्य को गद्य और पद्य दो विभागों में बाँटा जा सकता है।

गद्य काव्य- कथा, कहानी, आख्यायिका, निबंध, उपन्यास आदि गद्य काव्य में आते हैं। **नैतिक कथा मंजूषा भाग 1-2** मेरे द्वारा लिखी गई **श्रेणिक चरित्र** पर एक कथा गद्य रचना है।

पद्य काव्य- पद्य काव्य के मुक्तक और प्रबन्ध ये दो भेद हैं।

मुक्तक छन्द-मुक्तक काव्य ऐसी छन्दोबद्ध रचना को कहते हैं जिसके एक छन्द का भाव दूसरे से मुक्त या निरपेक्ष हो उसमें कोई साधारण भाव, दशा या बात कही जाती है। मुक्तांकाजलि भाग 1-2 यह भी मेरे द्वारा लिखी गई मुक्तक पद्यात्मक रचना हैं। इसी प्रकार वृन्दावन के पद, भूधर दास, भैय्या भगवती दास आदि के दोहे, पद मुक्तक काव्य हैं।

---

23. का.प्र./पृ. 13 24. मुनिसु.काव्य 1/15

गीत काव्य- मुक्तक काव्य की कुछ रचनों गीत के रूप में होती हैं उन्हें गीत काव्य कहते हैं जैसे- बनारसी दास के पद और गीतावली भी गीतों में हैं। (आज कल महादेवी धर्मा, निराला पंत आदि की फुटकर रचनों गीति काव्य कही जाती हैं।)

प्रबन्ध काव्य - प्रबन्ध काव्य में क्रमबद्ध या समबद्ध बात कही जाती है। कोई कथानक धारावाहिक रूप से वर्णित होता है उसके छन्द परस्पर समबद्ध होते हैं। जैसे कि मुनिसुव्रत प्रबन्ध काव्य में कहा भी है-

प्रबंधमाकर्ण्य महाकवीनां, प्रमोदमायाति महानिहैकः।
विधूदयंवीक्ष्य नदीन एव, विवृद्धि मायाति जड़ाशयान[25] ।।

अर्थात - चंद्रोदय होने पर समुद्र ही उद्वेलित होता है न कि छोटे-छोटे जलाशय ; उसी प्रकार महाकवियों का प्रबन्ध काव्य देखकर विज्ञ ही संतुष्ट होते हैं न कि जड़ाशय।

मुक्तक में एक छन्द स्वतः पूर्ण होता है किन्तु प्रबन्ध काव्य ऐसा नहीं होता है। अपितु उसमें पूर्वा पर संबंध बैंठा लेने की नितान्त आवश्यकता होती है। महापुराण में कहा भी है कि किसी एक प्रकीर्णक विषय को लेकर कुछ श्लोक/पद्यों की रचना तो सभी कवि कर सकते हैं परन्तु पूर्वापर का सम्बन्ध मिलाते हुए किसी प्रबन्ध की रचना करना कठिन कार्य है[26]। इसे महाकवि ही कर सकते हैं। महापुराण में महाकवि का स्वरूप बतलाया है जिसे कि हम पूर्व में महाकवि के व्याख्यान में कह चुके है। यथा "जो अनेक अर्थों को सूचित करने वाले पद विन्यास से सहित मनोहर रीतियों से युक्त एवं स्पष्ट अर्थ से उद्भाषित प्रबन्धों काव्यों की रचना करते हैं वे महाकवि कहलाते हैं।"

प्रबन्ध काव्य के भेद- प्रबन्ध काव्य के मुख्य दो भेद हैं-

1. खण्ड काव्य   2. महाकाव्य

1. खण्ड काव्य- जिसमें मानव जीवन के किसी एक अंश का वर्णन

---

25. मुनिसु.काव्य 1/16   26. महा.पु. पर्व 16/100

होता है उसकी सम्पूर्ण व्यापकता का नहीं, उसे खण्ड काव्य कहते है। (मैथिली शरण का जय द्रथ वध, पंचवटी, विरहणी, जंजागना आदि। राम नरेश त्रिपाठी के पथिक मिलन और स्वपन अथवा सियाराम शरण गुप्त का मौर्यविजय खण्डकाव्य है।)

2. महाकाव्य- महाकाव्य के स्वरूप को हम बिन्दुवार इस प्रकार से समझ समझते हैं यथा:

1.जो प्राचीन काल के इतिहास से सम्बन्ध रखने वाला हो जिसमें तीर्थंकर, चक्रवर्ती आदि महापुरुषो के चरित्र का चित्रण किया गया हो ।

2. जो धर्म, अर्थ काम के फल को दिलाने वाला हो ।

3. जीवन का जिसमें विस्तृत और पूर्ण वर्णन होता है।

4. इसका नायक देवता या तत्सदृश कोई क्षत्रिय होता है ।

5.इसका प्रधान रस श्रृंगार, वीर या शान्त होता है, अन्य रस भी रहते हैं पर वे गौण होते हैं ।

6. कथा ऐतिहासिक या लोक प्रसिद्ध सज्जन सम्बधिनी होती है।

7. धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इनमें से कोई इसका फल होता है ।

8. आरम्भ में आशीर्वाद, नमस्कार या वर्ण्य वस्तु का निर्देश होता है।

9. कहीं खलों की निन्दा और सज्जनों के गुणों का वर्णन होता है 10. न बहुत छोटे न बहुत बड़े, आठ से अधिक सर्ग होते हैं।

11. प्रत्येक सर्ग में एक ही छन्द होता है

12. किन्तु प्रत्येक सर्ग का अन्तिम छन्द भिन्न होता है[27] ।

13.खण्ड काव्य की अपेक्षा महाकाव्य की दीर्घता के साथ विषय की व्यापकता भी रहती है। जल बिन्दु महाकाव्य में- जल बिन्दु ही प्रधान नायक है तथा उससे जुड़े माता-पिता सुत. आदि परिमतिपत पात्र हैं।

महाकाव्य में वर्णनीय विषय - महाकवियों ने अपने बड़े-बड़े

27. का.प्र./पृ. 14

प्रबन्धग्रन्थों में जिन वर्णनीय विषयों का निर्देश किया है, महाकाव्यों में उन वर्णनीय विषयों का अत्यंत स्पष्ट रीति से वर्णन किया जाता है। महाकाव्य में राजा, राजपत्नी-महिषी, पुरोहित, कुल, श्रेष्ठपुत्र या ज्येष्ठ पुत्र, अमात्य, सेनापति, देश-ग्राम-सौन्द्रय, नगर, कमल-सरोवर, धनुष, नद, वाटिका, वनोद्योत पर्वत, मन्त्र-शासन संबंधी परामर्श, दूत, यात्रा, मृगया-आखेट, अश्व, गज, ऋतु, सूर्य, चन्द्र, आश्रम, युद्ध, कल्याण, जन्मोत्सव, वाहन, वियोग, सुरत-रति-क्रीडा, सुरापान, नाना प्रकार के क्रीड़ा-विनोद आदि महाकाव्य के वर्ण्य विषय हैं[00]। जल बिन्दु महाकाव्य में जल बिन्दु से संबंधित जो-जो भी उचित या संभव हो सकता है वही इसका वर्ण्य विषय है। सत्य तो यह कि जल बिन्दु का आश्रय लेकर मैंने मानव चित्त की आवश्यक कर्तव्य परक शिक्षा पर ही प्रकाश डाला है।

काव्य के अन्य तीन प्रकार-

रमणीयता के अनुसार काव्य के तीन प्रकार हैं ।

1. ध्वनि काव्य   2. व्यंग काव्य

3. अलंकार काव्य।

ध्वनि काव्य- जिस कविता में शब्दों के साधारण अर्थ की अपेक्षा उनसे निकलने वाले व्यंग में अधिक चमत्कार हो उसे ध्वनि काव्य कहते हैं। अथवा जिस काव्य में केवल व्यंग अर्थ की प्रधानता होती है वह ध्वनि काव्य कहलाता है।

रस और वस्तु व्यंजना ध्वनि के ही उदाहरण हैं।

ध्वनि के दो प्रकार हैं- 1. संलक्ष्यक्रम ध्वनि 2. असंलक्ष्यक्रम ध्वनि।[28]

व्यंग काव्य- जहाँ व्यंग्यार्थ की प्रधानता न हो या शब्दों का साधारण अर्थ और व्यंग्यार्थ दोनों ही समान हो या व्यंग्यार्थ साधारण (वाच्य)

---

28. का.प्र./पृ. 39

अर्थ से न्यून हो वहाँ गुण भूत व्यंग काव्य होता है इसमें व्यंग गुणी भूत/ अप्रधान होता है।

अलंकार काव्य- जिसमें केवल शब्दों के अर्थ का चमत्कार हो, केवल शब्दों की सजावट (जैसे अनुप्रास, यमक आदि अलंकार) का ध्यान हो वह चित्र व अलंकार काव्य होता है । इसे अवर काव्य भी कहते हैं।

चित्र (अलंकार) काव्य के अंतर्गत ऐसी रचनों भी होती हैं जिनमें अक्षर इस ढंग से लिखे जाते हैं कि उनका कमल, कामधेनु, धनुष आदि कुछ वस्तुओं जैसा आकार बन जाता है ऐसा होने से उक्ति के अर्थ की सुन्दरता की ओर ध्यान नहीं जाता केवल उसके शब्दों की सजावट तक रह जाता है। इन भेदों में "ध्वनि काव्य" उत्तम, "गुणी भूत व्यंग" मध्यम और "चित्र अलंकार" या अवर (अधम) काव्य निम्न कोटि का माना जाता है[29]।

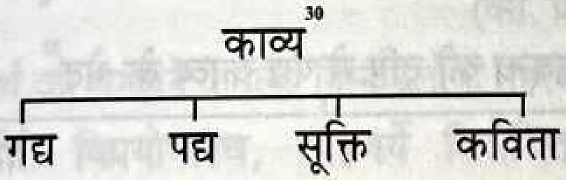

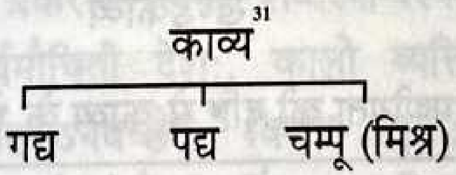

29. का.प्र./पृ. 16
30. का.प्र./पृ. 04
31. का.प्र./पृ. 07

प्रयोजन की दृष्टि से काव्य भेद[32]

दृश्य 28

उपरूपक 18

1. नाटिका 2. त्रोटक
3. गोष्ठी 3. सहक
5. नाट्य रासक 6. प्रस्थानक
7. जललाप्य 8. काव्य
9. रासक 10. प्रेखण
11. संलापक 12. श्री अगदित
13. शिल्पक 14. विलासिका
15. दुर्मल्लिका 16. प्रकरणिका
17. हललीश 18. भणिका

रूपक 10

1. नाटक/ महानाटक
2. प्रकरण
3. भाण
4. प्रहसन
5. डिम
6. व्यायोग
7. समवकार
8. विथी
9. ईहामृग
10. अंक/उत्सृष्टिकांग

श्रव्य

कथा
कहानी
आख्यायिका
निवेध
उपन्यास
आदि गद्य
काव्य/
मुक्तक
काव्य

प्रबन्ध की दृष्टि से पद्य काव्य के भेद[33]

मुक्तक
गीति काव्य

प्रबन्ध
- खण्डकाव्य
- महाकाव्य

रमणीयता की दृष्टि से काव्य के भेद[34]

ध्वनि काव्य (उत्तम)
गुणीभूत व्यंग काव्य (मध्यम)
चित्र या अलंकार काव्य अवर काव्य (अधम)

शब्द- जो सुऔ इत्यादि विभक्ति की उत्पत्ति के योग्य हो उसे शब्द कहते हैं। किन्तु शंख, काहल इत्यादि की ध्वनि को शब्द नहीं कह सकते हैं। इससे यह स्पष्ट है कि लिंग, धातु स्वरूप जो प्रकृति है उसे शब्द कहते हैं।

32. का.प्र./पृ. 8-13
34. का.प्र./पृ. 16
33. का.प्र./पृ. 13-15

शब्द शक्ति- शब्द और अर्थ के संबंध को शक्ति कहते हैं। किसी भी उक्ति (कथन) में शब्द और अर्थ दोनों की आवश्यकता होती है। शब्द विहीन अर्थ और अर्थ विहीन शब्द साहित्य में स्वीकार नहीं होते हैं। शब्द और अर्थ एक दूसरे से मिले हुए ही होते हैं यथा काव्य के लिए सुन्दर शब्दों की आवश्यकता होती है वैसे ही उनसे व्यक्त होने वाले अर्थ की भी, किन्तु शब्दों का अर्थ प्रसंग के अनुसार बदल जाता है[35]।

जैसे- बैल का अर्थ पशु भी है और मूर्ख भी, इसी प्रकार गधा व उल्लू का अर्थ पशु भी है और मूर्ख भी।

शब्दशक्ति

अभिधा लक्षणा व्यंजना

(का. प्र.19)

1. अविधा शक्ति- शब्द सुनते ही सर्वप्रथम मुख्य (प्रसिद्ध) अर्थ का बोध होता है इसे ही अविधा शक्ति कहते हैं। अभिधा का अर्थ-नाम।

(का. प्र.19)

शब्द के अर्थ को समझने के लिए निम्न श्लोक महत्वपूर्ण है

संयोगे विप्रयोगाश्च, साहचर्ये विरोधिता।
अर्थः प्रकरणे लिंगं, शब्दस्यान्यस्य सन्निधीः।।
साहचर्यमौचिती देशः, कालो व्यक्ति स्वरादयः।
शब्दार्थस्याऽनवच्छेदं, विशेष स्मृतिः हेतवः।।

शब्दों के अनेक अर्थ होते हैं अतः किस समय किस शब्द का क्या अर्थ होगा इसके लिए संयोग वियोग (पृथक्, अलग होना) साहचर्य (सहायक) विरोध (विपरीत) अर्थ (पदार्थ) प्रकरण (प्रसंग) लिंग अन्य शब्दों का सामीप्य (निकटता) सामर्थ औचती (जो अर्थ उचित हो) देश काल और स्वर का आश्रय लेकर शब्द का अर्थ करना चाहिए।

35. का.प्र./पृ. 17

वाचक/सङ्केत- जब किसी शब्द से निश्चित अर्थ का बोध हो जाता है तब उसे सङ्केत कहते हैं, उसे ही वाचक भी कहते हैं।

"साक्षात्सङ्केतितमर्थ योऽभिधत्ते स वाचकः[36]"

साक्षात् सङ्केतिक अर्थ को जो धारण करता है उसे वाचक कहते हैं। अभिधा शक्ति के द्वारा प्राप्त अर्थ वाच्यार्थ अथवा मुख्यार्थ कहलाता है और इस अर्थ को प्रगट करने वाला शब्द वाचक कहलाता है"[37]।

2. लक्षणा- जिस शब्द को सुनकर मुख्यार्थ या वाच्यार्थ के ग्रहण करने में बाधा आए और जो अर्थ लिया गया है उसका संबंध मुख्यार्थ या वाच्यार्थ से कुछ न कुछ लगा हुआ हो उसे लक्षणा शक्ति कहते हैं, जैसे बृहस्पति भी उस उल्लू को नहीं समझा सकते है इस वाक्य में उल्लू शब्द से अत्यंत मूर्ख व्यक्ति ग्रहण किया गया है। यहाँ उल्लू शब्द का उर्पयुक्त अभिधा शक्ति से सङ्केतिक अर्थ नहीं लिया गया है किन्तु इसी से संबंध रखने वाला दूसरा अर्थ लिया गया है। इस प्रकार अर्थ करने में मुख्यार्थ या वाच्यार्थ के ग्रहण करने में बाधा उपस्थित हुई किन्तु उक्त वाक्य से जो अर्थ लगा हुआ है उसका सीधा सम्बंध मुख्यार्थ या वाच्यार्थ से कुछ न कुछ लगा हुआ है अत: इसे लक्षणा कहते हैं।

लक्षणा के भेद- भिन्न-भिन्न दृष्टियों से वाक्यों में किसी शब्द या वाक्यांश का लक्ष्यार्थ लेने से लक्षणा के तीन भेद होते हैं-

लक्षणा

रूढ़ा और प्रयोजनवती | लक्षण और उपादान | गोणी तथा शुद्धा

गोणी तथा शुद्धा: सरोपा | साध्य वसाना

रूढ़ या प्रयोजनवती- जहाँ सङ्केतिक तथा नियत अर्थ से भिन्न अर्थ लिया जाता है अर्थात् बहुत दिन पुरानी रूढ़ी या पुरानी परम्परा को

36. का.प्र./पृ.21
37. का.प्र./पृ. 21
38. का.प्र./पृ. 27

साधती हो जैसे - तद्भव मोक्ष गामी मुनिराज को मोक्ष क्यों नहीं होगा क्योकि वे रत्नत्रय धारी हैं यह प्रयोजनवती लक्षणा का उदाहरण है। हिन्दी के प्राय: सभी मुहावरे प्रयोजनवती लक्षणार्थ के उदाहरण हैं।

जहत् स्वार्था लक्षणावृत्ति- जहाँ लक्ष्यार्थ (जिस वस्तु का बोध लक्ष्यार्थ कराता है) के साथ वाच्यार्थ (जिसका बोध वाच्यार्थ कराता है) कुछ भी लगाव न हो, इसी को जहत् स्वार्था लक्षणा वृत्ति कहते हैं[38]।

जैसे उस घर में लोग प्राय: प्रतिदिन भले मलेरिया से पीड़ित क्यों नहीं होगे क्योंकि वह घर तो पानी में है। यद्यपि घर पानी में नहीं रहता अन्यथा घर में ही पानी भर जायेगा। पानी में है मतलब पानी के अत्यंत निकट है।

जैसे- 1. नदी का पानी मैला क्यों नहीं होगा
क्योंकि उसमें अनेकों भैंसें बैठी थीं
2. विशाल तालाब का पानी गंदा था
परन्तु सरिता का पानी गंदा नहीं था
क्योंकि नदी बहती है पर तालाब नहीं
इसलिये नदी का पानी स्वच्छ होता है
पर तालाब का भरा पानी गंदा होता है

उपादान लक्षणा या अजहत् स्वार्था लक्षणा वृत्ति- जिसमें लक्षणार्थ (जिस वस्तु का लक्षणार्थ से बोध होता है) के साथ वाच्यार्थ (जिस वस्तु का वाच्यार्थ) से बोध होता है। अभिन्न अंग रूप से सम्बद्ध होता है उसे उपादान लक्षणा या अजहत् स्वार्था लक्षणा वृत्ति भी कहते हैं।

नदी में नाव गतिमान थी
जिस तट पर जाना था
वहाँ वह पहुँच जाती थी
जहाँ से उसे आना था
वहाँ से वह आ जाती थी

इस बात में स्वयं नाव आ जा नहीं सकती है अथवा गन्तव्य तक पहुँच नहीं सकती है। अतः वाच्यार्थ को छोड़कर यहाँ लक्षणार्थ को ग्रहण करना होगा। जिसका अर्थ होगा "नाविक"। क्योंकि नाव स्वेच्छा से निश्चित गन्तव्य तक नहीं पहुँच सकती है। नाविक ही उसे निश्चित गन्तव्य तक पहुँचाता है अतः नाव नाविक से अजहत् (छोड़े हुए नहीं) है। अतः उक्त वाक्य में अजहत् स्वार्थ लक्षणा है।

गोणी लक्षणा - जिसमें समान गुण (धर्म) के द्वारा लक्ष्यार्थ का बोध होता है उसे गोणी लक्षणा कहते हैं। जैसे वह क्षीर सागर है अर्थात् क्षीर (दूध) के समान सफेद जल वाला। गोणी लक्षणा के दो भेद हैं-

1. सरोपा 2. साध्यवसाना

विषय- जिस पर आरोप किया जाता है। जैसे-सागर (समुद्र), तालाब आदि और

विषयी- जिसका आरोप किया जाता है। जैसे-क्षीर आदि

आरोप- विषय और विषयी दोनों का अलग-अलग निर्देश करके जो अभेद प्रदर्शित होता है उसको आरोप कहते हैं। 1. सारोपा में उपमेय सारोपा और उपमान दोनों रहते हैं जैसे वह क्षीर सागर है। यहाँ उपमेय (सागर) और उपमान (क्षीर) दोनों मौजूद हैं।

2. साध्यवसाना- इसमें उपमेय का कथन न होकर केवल उपमा का ही कथन होता है।

जैसे- **बाड़ में उस रणचंडी ने**
सब तबाह कर दिया।

इसमें उपमेय (नदी) के कथन के बिना ही केवल उपमान (रणचंडी) शब्द से ही उपमेय (नदी) का अर्थ निकल आता है।

रूपक अलंकारों में सरोपा गोणी लक्षणा होती है और रूपातिशयोक्ति में साध्यवसाना गोणी लक्षणा होती है। (का.प्र.29)

शुद्ध लक्षणा- सादृश्य सम्बन्ध के अतिरिक्त अन्य सम्बन्ध से लक्ष्यार्थ का ज्ञान होता है जैसे पानी में घर होता है अर्थात् पानी के तट पर घर का बोध होता है। लाक्षणिक शब्द में लक्षणा के तीन भेद होते हैं-
1. रूढ़ा लक्षणा 2. उपादान लक्षणा 3.शुद्ध लक्षणा (का.प्र.31)
3. **व्यंजना**- कभी-कभी अभिधा और लक्षणा से वाक्य का अभिप्रेत अर्थ नहीं खुलता है ऐसी अवस्था में जिस शक्ति से अभिप्रेत अर्थ तक पहुँचा जाता है उसे व्यंजना कहते हैं।

जैसे- **तालाब ने बहती नदी से कहा**
तुझमें मुझे गंदगी दिख रही है
तब नदी ने उत्तर में कहा कि
सत्य ही मैं तुम्हें दर्पण हूँ
तुम्हें जो मुझमें गंदगी दिख रही है।

अर्थात् दर्पण में जैसे देखने वाले का ही चेहरा दिखता है वैसी ही मुझमें गंदगी देखने वाला ही गन्दा है। बात अभिव्यक्त की गई है ।

व्यंजना[39]

शाब्दी — आर्थी

शाब्दी- जिस व्यंजना में किसी विशेष शब्द के प्रयोग पर ही निर्भर रहता है उसे शाब्दी व्यंजना कहते हैं अर्थात् पर्यायवाची शब्द से शाब्दी व्यंजना नहीं होती है किन्तु यह केवल अनेकार्थी शब्दों में ही होती है।
आर्थी- जहाँ व्यंजना किसी शब्द विशेष पर अवलंबित न हो अर्थात् उसका पर्याय रखने पर भी वह बनी रहे वहाँ आर्थी व्यंजना होती है। ऊपर व्यंजना का साधारण परिचय देते समय जो तीन उदाहरण दिये गये हैं वे सब आर्थी व्यंजना के प्रमाण में लिए जाने चाहिए। (क.प्र.पृ.34)

39. का.प्र./पृ. 32

काव्य या कविता को स-रस होना चाहिए। कि जिसके पढ़ने वाले के
हृदय में एक विशेषप्रकार का आनन्द उपजे और उसे शब्दों से अभिव्यक्त
न कर सके वह सरस समझी जाती है।

काव्य के गुण- रस के बिना काव्य उच्च कोटी का नहीं माना जाता
है।

रस काव्य की आत्मा है जिस प्रकार वीरता, उदारता, त्याग आदि
गुणों से मनुष्य की आत्मा का उत्कर्ष प्रकट होता है उसी प्रकार ओज
2. माधुर्य आदि गुणों से काव्य के आत्म रस का उत्कर्ष होता है।
गुणों की व्यंजना वर्णों या अक्षरों से होती है गुण वर्णों में नहीं किन्तु स-
रस काव्य में होते हैं।

काव्य गुण के प्रकार- काव्य के गुण तीन प्रकार के होते हैं।

1. ओज 2. माधुर्य 3. प्रसाद

आचार्य दण्डी ने दस शब्द गुण और दस अर्थ गुण अलग-अलग
गिनाये है। मम्मट ने इनको इन्हीं तीनों के अंतर्गत सिद्ध किया है।
इसलिए सरस काव्य को ही काव्य कहा जाता है नीरस को नहीं।
जिस प्रकार किसी वीर पुरुष के शरीर का गठन, उसकी चाल आदि से
वीरता की पहचान होती है। उसी प्रकार कठोर या मधुर शब्द से युक्त
रचना को सुनते ही ओज, माधुर्य आदि की प्रतीति होने लगती है।

1.ओज गुण-

I. किसी रचना में ट वर्ग (ट,ठ,ड,ढ,ण) की अधिकता होती है।
II. अन्य वर्गो (क,च,त,प वर्गों) के पहले और तीसरे तथा दूसरे और
चौथे वर्णों के योग से बने संयुक्त शब्द जैसे रिच्छ, क्रुद्ध आदि की
प्रचुरता होती है।

---

41. का.प्र./पृ. 37

III. र के संयोग से बने शब्दों यथा क्रुद्ध, वक्र आदि की अधिकता होती है।

IV. लम्बे-लम्बे समासों वाले शब्दों के प्रयोग से ओज गुण प्रगट होता है।

वीर और रौद्र रस में इसका होना आवश्यक है। वीभत्स और भयानक रस भी इस गुण से उत्कर्षता को प्राप्त होते है।

2. माधुर्य- जिस गुण के कारण किसी रचना को पढ़ या सुनकर मन आनन्दाभिभूत होता है पिघल जाता है ? कठोरता, उमंग या विरक्त नहीं होता है उसे माधुर्य गुण कहते हैं।

इस गुण के लिए काव्य में :

I. टवर्ग के कोई भी वर्ण नहीं होना चाहिए।

II. र के संयोग से बने शब्द नहीं होने चाहिए।

III. लम्बे समास वाले वाक्यांश नहीं होने चाहिए।

यह गुण श्रृंगार, करूण और शान्त रस में पाया जाता है।

3. प्रासाद गुण- जिस गुण के कारण किसी रचना का गुण तुरन्त समझ में आ जाये, उसका चित्त पर पूर्ण प्रभाव पड़े उसे प्रासाद गुण कहते है।

जिस प्रकार पके अंगूर का रस बाहर से झलकता है उसी तरह प्रासाद गुण से युक्त अर्थ या भावार्थ शब्दों से झलकता है। जिससे हृदयंगम होने में देर नहीं लगती जैसे कारूणिक संदेश या प्रेम-वार्ता तत्काल कानों से गुजर कर हृदय पर असर डालती है।

यह गुण सभी रसों में पाया जाता है[42]।

---

42. का.प्र./पृ. 94-96

रस की स्थिति- रस और भाव का अभिनय करने वाले नर्तक में श्रृंगारादि रसों की स्थिति रहती है, पर पहले रस नहीं किन्तु भाव निरूपणा होती है क्योंकि उद्देश्य क्रम के न रहने पर भी रस निरूपण में भाव निरूपण कारण है अतएव भाव निरूपण पूर्व में किया जाता है। इसके बाद श्रृंगार आदि रस को अंकुरित और पल्लवित करने वाली कामजन्य दस अवस्थाओं का वर्णन किया जाता है।

(अ.चि. 5/63)

रस की उत्पत्ति- विभाव, अनुभाव और सञ्चारी (व्यभिचारी) भाव के संयोग से रस की उत्पत्ति मानी जाती है।

पूर्ण रस- जब किसी उक्ति में ये तीनों ही अवयव रहते हैं तभी उसमें पूर्ण रस होता है।

रस का स्वरूप- बड़े-बड़े प्रबंध काव्यों का आनन्द रस से ही प्राप्त होता है। रस काव्य की आत्मा है। विभाव, अनुभाव, संचारी आदि चारों भावों के द्वारा व्यक्त स्थाई भाव ही रस रूप से परिणत होता है।

(अ.चि. 5/83)

अर्थात् जिस प्रकार परिपाक को प्राप्त नवनीत ही घृत रूप से परिणत हो जाता है उसी प्रकार स्थाई भाव ही विभाव, अनुभाव, संचारी भाव इत्यादि के संयोग से रस रूप में परिणत हो जाता हैं।

(अ.चि. 5/83-84)

रस के अंग- 1. स्थायी भाव, 2. विभाव 3. अनुभाव 4. संचारी (व्यभिचारी) भाव, ये रस के चार अंग हैं[43]।

1. स्थायी भाव- इंद्रीय ज्ञान से संवेद्यमान मोहनीय कर्म से उत्पन्न रस की अभिव्यक्ति करने वाली जो चित्तवृत्ति रूप पर्याय है उसे स्थायी भाव कहते हैं[44]। चित्तवृत्ति, मुख्य भाव, स्थाई भाव पर्यायवाची शब्द है जो कि रस का अभियंज्ञक होता है। जैसे-

---

43. अंल चि. 5/2

44. अलं.चि. 5/4

वह शीतल सुगंधित
और सुस्वादु जल था
पर मात्र जल शब्द से
न तो शीतलता का
कभी ज्ञान हुआ है
न उसकी सुगंध का
व न स्वाद का कभी
किसी को वेदन हुआ
परन्तु शब्द सुनकर।
पूर्व स्मृतियाँ या फिर
जलपान करने से ही
सत्य संवेदन होता है

जैसे- जल से भिन्न द्रव्य के पीने से जो आनंदानुभूति हुई वह चित्तवत्ति स्मृति में स्थाई रूप से जम जाती है।

जो जल पर द्रव्य था
वह तो पर ही रहेगा
पीने पर वह जीभ को
क्षणिक स्वाद देकर
विस्मृत ही हो जायेगा
हाँ स्मृति पटल पर ही
दीर्घ काल तक
स्थाई बना रहेगा ।

जैसे पुस्तक की स्थिति मात्र का अनुभव स्व संवेदन है। उसकी समीक्षा या आलोचना सुन जो हर्ष या विषाद का अनुभव हुआ वह संवेदन है। जो भाव अपने में अन्य भावों को मिला ले और उनसे पराजित न हो वह स्थायी भाव है[45]। अथवा मन (अंतरंग) में उत्पन्न होने वाले भावों को

45.स.द 3/1

गिन पाना संभव नहीं है फिर भी काव्य शास्त्र के प्राचीन आचार्यों ने उसे नौ भावों में समाविष्ट किया है।इसे ही काव्य के नौ रस भी कहा जाता है।

स्थायी भावों के नौ रस-

श्रृङ्गारो हास्यकरूणौ रौद्रवीरभयानकः।
बीभत्साद्भुतशान्ताश्च रसाः स्थायिक्रमान्नव।।

(अ.चि. 5/85)

1. श्रृंगार	2. हास्य	3. करूण
4. रौद्र	5. वीर	6. भयानक
7. वीभत्स	8. अद्भुत	9. शान्त,

ये नव रस स्थायी भावों के क्रमानुसार माने गए हैं।

1.श्रृंगार- जैसे कि जलबिन्दु (ख.2/अ11 विवाह/ क.06-07) में कहा है।

सौभाग्यवती ही सृजक है

सृष्टि के सृजक ब्रह्मा नहीं
और न कोई ब्रह्म विद्या होती
किन्तु सौभाग्यवती ही तो
सृष्टि की सच्ची सृजक होती
इसलिये सौभाग्यवती
व साक्षात् ब्रह्मा ही नहीं
वह ब्रह्मस्वरूपा व ब्रह्माणी व
परम ब्राह्मी भी वह होती।

♦♦♦

46. का.प्र./पृ. 60-87

सौभाग्य क्या

सौभाग्य केवल भाग्य ही नहीं
किन्तु असली सौ -भाग्य तो
नारी के माथे की बिंदी ही है
वह केवल सिन्दूर की नहीं
किन्तु यदि सच मानो तो वह
उसका केवल बन्ना/पति ही हैं
पति बिना सिन्दूर व श्रृंगार की
कोई भी शोभा नहीं होती है
सच्ची व असली शोभा
सिंदूर की केवल पति ही है।

♦♦♦

जलबिन्दु महा. में और भी कहा है। (ख.1/ अ.2 जिनवाणी वन्दना/ क.12) जैसे-

जिन सरस्वती

हे अम्ब! तू देह रहित है
फिर भी साहित्यकारों ने
तुझे इस प्रकार माना है कि
तू सहज सुन्दरी, मृगनयनी है
सौम्यवदनी दीर्घ भौंहवती है
तू धनुषाकार उर्ध्वोष्ठा है पुष्पराज
सम अधरोष्ठा है
ललाट पर बिन्दी वाली है
तू मस्तिष्क पर सिन्दूर, व
माथे पर केयूर धारणी है,

हेममयी मणी जड़ित मौली
जिनबिम्ब सहिता है और
युगल कर्णों में कुण्डलवती
नासिका पर नथ वाली है
तुम्हारे गले पर हार मालायें
व भुजाओं में भुज बन्ध है
कलाई पर कंगन व वलय
अंगुलियाँ मुद्रिका वाली है
तू कटि पर कटिबन्धन से
करधनी व पाद पायलों से
पादांगुलियाँ नूपुरों वाली है
जिनवाणी कमंडल सहिता है,
जिनवणी हंस वाहिनी भी है तू
वास्तविक तो तू देवी नहीं
किन्तु देव स्वरुपा है ।

2.हास्य-जैसे कि जलबिन्दु (ख.5/ अ. 47/क. 8-10) में कहा है।

जान-वर हूँ

पत्नी ने कहा कि हे नाथ!
आप मेरे प्राण हो जान हो
तो पति ने कहा कि न-न
तू मेरी जान मैं तेरा वर हूँ
दासी ने दोनों की बात सुन

अट्टाहास करते हुए कहा
सही सही बिल्कुल सही
ये जानवर है कल से इन्हें
तुम घास और चारा ही देना
पत्नी ने कहा तुम चुप रहो
हमारे बीच में न बोला करो।

♦♦♦

हास्य-वार्ता

सेठानी ने दासी से कहा
तू मुझे मिश्री जैसी लगती थी
दासी ने कहा-तो मैंने कौन सा आपके लिए
कटु नीम का घोल दिया है
इसी बीच उनका छोटा बेटा बोला
टो मैं भी टुट टहूं भाषा को सुनकर
सभी लोगों को जोर से हँसी आई
परन्तु केवल पति और पत्नी चुप रहे।

♦♦♦

उसकी तोतली भाषा

पर बेटा माना नहीं बोलता ही गया
उसने कहा डेको डेको टूहा टूहा
तो उसकी छोटी बहिन ने कहा कि
टहां-टहां है टब मैंने बटाया टि उसे टो
मैंने मम्मी टि ढोटी से ही बांढ डिया
डेको वो बढा है सुनते ही मम्मी चोंकी

और घबड़ा कर के वे शीघ्र ही उठी
उन्होंने तेजी से अपना पल्लू फटकारा
उनकी बड़बड़ाहट देख सभी हँस पड़े
बच्चों ने कूद-कूद कर ताली बजाते कहा
मेली मम्मी हमाली बाटो में आ डई
बात सुन कर पापा ने कहा कि बेटा
ऐसा तुम्हें कभी नहीं बोलना चाहिए
तब बेटा ने कहा कि आप ही बोलो
टो मैं ट्या टरूं मम्मी उडास रहटी है।

♦♦♦

3.करूण- जैसे कि जलबिन्दु (ख.3 / अ.29 मेरी माँ जलोधर / क.04) में कहा है।

बच्चों को एहसास न होने देती

माँ इतना सब कुछ सहती
पर किसी से कुछ न कहती
एहसास भी नहीं होने देती
कि मैंने भोजन नहीं किया

पूछने पर वह कह देती कि
मैंने तो भोजन कर लिया है
बेटा! तू मेरी चिंता मत कर
यही है सच्ची माँ का परिचय

इतना ही नहीं, तुम्हें सुनना है
तो मैं तुझे और भी सुनाती हूँ।

♦♦♦

4.रौद्र-जैसे कि जलबिन्दु (ख.4 / अ.43 चेतावनी / क.9-10) में कहा है।

जीवन गवांओगे

नदी बोली ,क्रोध के समय
तुम मुझसे मस्ती न करना
हँसी मजाक भी मत करना
खेलने या तैरने मत आना
पानी पीने या पानी भरने
नहाने,कपड़े धोने न आना
तब मेरे पास कभी न आना
अन्यथा तुम मेरे क्रोध की
चपेट में आ जाओगे और
व्यर्थ में ही जीवन गवांओगे
यही तो पाठ सिखाती है नदी ।

♦♦♦

क्रोधावेश

मेरे क्रोध की जो भी
विकराल अवस्था है
वह बाढ़ और लहरे हैं
उस समय यदि तुम
मेरे पास आओगे तो
घबड़ाओगे पछताओगे,
नाहक प्राण गवांओगे
परिवार को रुलाओगे
सबको दुखी बनाओगे
उस वक्त तुम मुझसे
दूर बहुत दूर ही रहना
ऐसा पाठ सिखाती है नदी।

♦♦♦

5.वीर- जैसे कि जलबिन्दु (ख.1/ अ.7 प्रतिज्ञा/ क.16) में कहा है।

वीर-प्रतिज्ञा

तुम तो वीर हो क्योंकि
महावीर की सन्तान हो
महावीर की सन्तान कभी भी
कायर नहीं होती है किन्तु
वह सदैव वीर ही होती है
जब-जब भी जो प्रतिज्ञा लेती
उसे कभी भी तोड़ती नहीं है
किन्तु प्राणपन से पूर्ण निभाती है।

6. भयानक- जैसे कि जलबिन्दु (ख. 5/ अ. 49 ओस /व.19) में कहा है

वे भयानक होते

नरक को नरक इसलिए कहते हैं
क्योंकि नरकों में प्रत्येक नारकी
आपस में प्रेम से मिलते नहीं किन्तु
श्वान की तरह लड़ते-लड़ते रहते
रौद्र रूप व बड़े-बड़े विकराल दाँत,
नाखून और बाल धारण करते हुए
लाल और बड़ी-बड़ी आँखें दिखाते
शरीर को कम्पायमान कराने वाली
भीषण और डरावनी वे हुंकार भरते
रूखे,तेज व अमर्यादित शब्द करते
काले देह वाले वे भयानक होते।

जलबिन्दु महा.में और भी कहा है। (ख.5/ अ.49ओस/ क.17)

वीभत्स शरीर

नारकियों का वैक्रियिक शरीर होता है
अशुभ विक्रिया सम्पन्न होते हैं जिनके
अंग-अंग भयानक और वे टेढ़े होते हैं
आकार में कोई भी समान नहीं होते हैं
जो अत्यंत वीभत्स और डरावने होते हैं
जिनके शरीर का वर्ण नीला, कापोत व
कृष्ण वर्ण एवं वह रोगों से भरा होता है
तथा जिनका शरीर गहरे घावों से युक्त
वह सदा खून व मवाद बहाने वाला होता है
जिनकी आँखों में कीचड़, कानों में मैल
और नासिका में नाक, मुख से कफ-लार
अत्यंत दुर्गन्धित घृणा कराने वाला होता है।

♦♦♦

7.**बीभत्स**- जैसे कि जलबिन्दु (ख.5/अ.49 ओस /व.18) में कहा है।

भूखे ही पीड़ा पाते है

अंग-अंग में इतनी दुर्गन्ध होती है कि
जिसके सम्मुख कोई क्षण भर भी न तो
ठहर ही पाता और न सहन कर पाता है
मनुष्य इतनी दुर्गन्ध से मृत ही हो जायेंगे
उन नारकियों की चाल अप्रशस्त होती हैं
उनका भोजन कुत्ते अथवा बिल्ली की
छी छी की तरह मृतिकामय ग्लानि और
दुर्गन्ध को उत्पन्न कराने वाला होता है
जिसे वे जीवन भर खा भी नहीं पाते हैं
अन्न के दाने बिना भूखे जीवन बिताते हैं।

♦♦♦

8.अद्भुत- जैसे कि जलबिन्दु (ख.5/ अ.55भंवर/ क.2) में कहा है।

जहाज भी घूम जाते हैं

पानी की भंवर इतनी तेज होती कि
उसमें बड़े-बड़े जहाज भी घूम जाते
या उलट-पलट हो जाते और तो क्या
वे स्वयं डूबते व सवारी को भी डुबा देते
सबका एक साथ काम तमाम कर देते
न फिर वे कभी काम के रहते और
न कभी किसी को काम के रहने देते।

♦♦♦

9.शान्त- जैसे कि जलबिन्दु (ख.3/ अ.22शाब्दीक सत्य/ क.17) में कहा है।

शब्दातीत सत्य

सत्य धर्म शब्दातीत होता है
जो सदा वचनातीत होता है
उसका अनुभव तो होता है
वचनाभिव्यक्ति नहीं होती है
जैसे किसी ने आपसे पूछा कि
गुड़ का स्वाद कैसा होता है
तो आप कहेंगे मीठा होता है
और यदि उसने पुन: पूछा कि
मीठे का स्वाद कैसा होता है
तो फिर आप यही कहेंगे कि
मीठे का स्वाद शब्दातीत है
अनुभव गोचर है उसे तो आप
चखकर ही समझ सकते हैं।

♦♦♦

काव्य प्रदीप में क्रम परिवर्तित है। जो इस प्रकार है-

काव्य के नौ रस - प्रेम, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा, (घृणा) विस्मय (आश्चर्य) और निर्वेद (वैराग्य)। किन्हीं विद्वानों ने वात्सल्य नामक दसवाँ रस भी माना है।

यद्यपि दृश्य काव्य/नाट्य शास्त्र में निर्वेद को नहीं माना गया है अत: आठ तथा कोई-कोई शान्त रस को भी नहीं मानते हैं अत: सात रस भी माने जाते हैं।

रस के भेद[44]

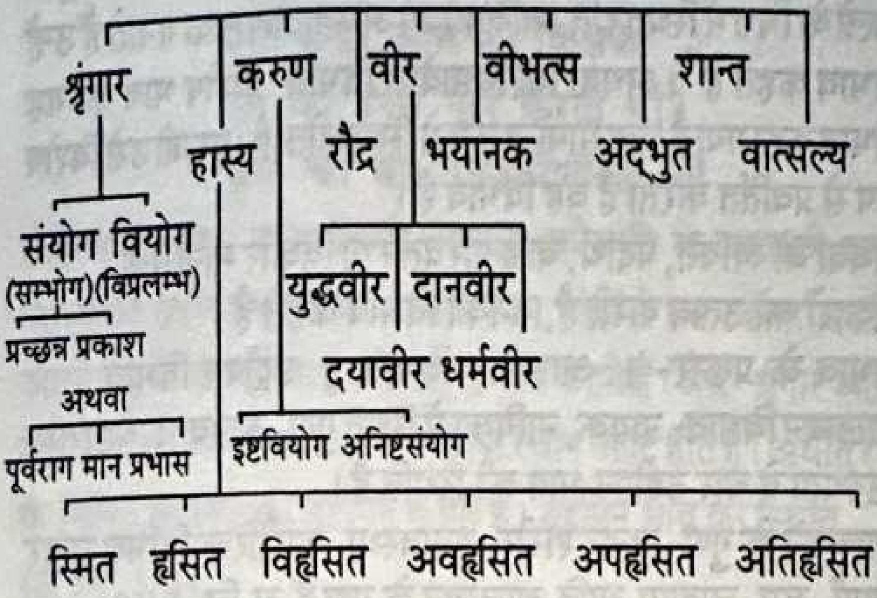

स्थायी भाव के भेद (काव्य के नौ रस)-

i. रति (प्रेम)- सम्भोग विषयक इच्छा।

ii. हास- विकृत वस्तुओं के दर्शन/श्रवण आदि से उत्पन्न मनोरथ।

iii. शोक- इष्ट जनों के वियोग से उत्पन्न दुख।

iv. क्रोध- शत्रुओं द्वारा हुए अपकार से चित में उत्पन्न दाह या उद्वेग।

v. उत्साह- सांसारिक या पारमार्थिक कार्यों में किया जाने वाला अत्यंत सुस्थिर प्रयास।

vi. भय- भयंकर वस्तुओं के दर्शन इत्यादि से अनर्थ की आशंका।
vii.जुगुप्सा(घृणा)-वस्तुओं के दोष अवलोकनादि से उत्पन्न घृणा।
viii.विस्मय(आश्चर्य)- विलक्षण वस्तुओं को देखने आदि से उत्पन्न चित्त विस्तार।

ix. शम(निर्वेद,वैराग्य)- वैराग्य के कारण मन की निर्विकारता"। यद्यपि दृश्य काव्य/नाट्य शास्त्र में निर्वेद को नहीं माना गया है। अत: आठ तथा कोई-कोई शान्त रस को भी नहीं मानते हैं। अत: सात रस भी माने जाते हैं। पर श्रव्य काव्यों में इनकी गणना की जाती है। (क.प्र.46)

2. विभाव- नाटक आदि के देखने वालों के तथा काव्यादि के सुनने वालों के चित्त में स्थित रति आदि को जो आस्वादोत्पादक बनाते हैं उन्हें विभाव कहते हैं"। अथवा विशेषभावेति विभाव: विशेष भाव को यह विभाव कहा गया है भाव सामान्य रूप से स्थित होता है। पर जो उसे विशेष रूप से प्रवर्तित करता हैं वह विभाव हैं।

अथवा जो व्यक्ति, पदार्थ, बाह्य परिवर्तन या विकार मानसिक विकारों को उत्पन्न करते है, उनको विभाव कहते हैं।

विभाव के प्रकार- 1. आलम्बन विभाव 2. उद्दीपन विभाव

आलम्बन विभाव- नायक, नायिका में स्थित गुण, अलंकार, चेष्टा तथा तटस्थता ये चार उद्दीपन भाव की स्थिति है।

आलम्बन के गुण- सुन्दर शरीर, युवावस्था, शारीरिक विभिन्न सुन्दर चेष्टाएँ, रूप, लावण्य आदि आलम्बन के गुण हैं अ.चि. 5/10

यथा-
चमकते मोती समान
किरणें बिखेरती हुई
जल बिंदु दर्शकों के
नेत्रों को हरण करके
अनिमेष कर रही थी

अथवा जिनका आश्रय ले रस अभिव्यक्त होते हैं उन्हें आलम्बन विभाव कहते हैं। ये दम्पति की तरह परस्पर आलंबित रहते अथवा रसोत्पादक हेतु को आलम्बन विभाव कहते हैं"।

---

47. अलं.चि./प. 5/3
48. अलं.चि.5/5
49. अलं.चि.5/5-7

यथा-

जो गोल-गोल मोतियों की
शोभा का तिरस्कार करती
तो कभी-कभी स्फटिक की
छोटी-छोटी गोलियों की भी
शोभा को वह परास्त करती
सूर्य किरणों की संगति पा
वह सप्त रंग बिखेर रही थी
ऐसी सुन्दर ओस बूँद किसके
मन को हरण नहीं करती थी?
सभी को वह मनोहारिणी ही थी

उद्दीपन विभाव- अन्य किसी के द्वारा क्रोधादि के महकाने वाले काव्य को उद्दीपन कहते हैं। अथवा जिन भावों से रस उद्दीप्त अर्थात् आस्वादन के योग्य होता है उसे उद्दीप्त भाव कहते हैं। जैसे- श्रृंगार आदि रसों में उद्यान, चन्द्रिका, सरोवर एकान्त स्थान आदि होते हैं। अर्थात् रस के निमित्त कारणों को उद्दीपन कहते हैं। उद्दीपन भाव की स्थिति (अ.चि. 5/8)

उद्दीपन के दो भेद हैं- चेष्टा और सामग्री[50]।

चेष्टा- क्रोधादि को भड़काने वाले कटु वचन, भयानक रूप आदि अथवा जो आलम्बन में ही होते हैं अर्थात् आलम्बन की शारीरिक चेष्टाएँ, वार्ता आदि

सामग्री- जो आलम्बन से पृथक् होते हैं जैसे-जोश लाने वाले नगाड़े शत्रु की हूंकार आदि। उक्त आलम्बन और उद्दीपन साहित्य में विभाव के अंतर्गत माने गये है।

---

50. का.प्र./पृ. 48

3. अनुभाव- जो शारीरिक विकार अथवा वचन क्रिया के आरम्भ में होते हैं उन्हें अनुभाव कहते हैं। जैसे कटाक्ष आदि शरीर में उत्पन्न भाव अनुभाव हैं"[51]। (अ.चि. 5/14) इसे ही अनुभव कहते हैं।

अनुभव- भावानुभूति को अनुभव कहते हैं। इसके द्वारा काव्य में भाव व्यञ्जित किये जाते हैं।

"भावस्यनुगच्छतीति अनुभव:"

जो भावों के पीछे चलता है उसे अनुभव कहते हैं।

अनुभव के भेद- अनुभव के दो भेद हैं- 1. सात्विक 2. कायिक

1. सात्विक अनुभव- जो विकार या व्यापार शरीर की स्वाभाविक विक्रिया के रूप में होते हैं। जिन पर आश्रय का कोई वश या असर नहीं होता है उसे सात्विक अनुभव कहते हैं।

1. सात्विक अनुभव के भेद-

1. रोमाञ्च 2. स्वर भङ्ग (वैस्वर्य) 3. स्वेद 4. स्तम्भ [जड़ता]
5. लय (प्रलय) 6. अश्रु 7. कम्प (वेपथु) 8. वैवर्ण्य

1(3). रोमाञ्च- हर्ष भय रोंगटे खड़े होना।
2(4). स्वर भङ्ग (वैश्वर्य)-मुख से स्वाभाविक शब्द नहीं निकलना।
3(2). स्वेद- अनुराग, आश्चर्य, पसीना आदि।
4(1). स्तम्भ- प्रसन्नता, लघुता, व्यथा आदि का वर्णन किया जाता है ।
5(8). लय (प्रलय)- चेतना शून्य होकर सुधबुध भूल जाना।
6(7). अश्रु- आँसु बहाना।
7(5). कम्प (वेपथु)- शरीर का काँपना।
8(6). वैवर्ण्य- चेहरा लाल-पीला होना। (अलं.चि./5/17)

साहित्य दर्पण एवं काव्य प्रदीप पृ.50-51 में क्रम परिवर्तित है। जिसे उक्त प्रकार से कोष्ठक में दर्शाया गया है।

---

51. अलं.चि./प. 5/14

इन सभी के स्वरूप को सोदाहरण अ.चि 5/18-25 में समझाया गया है।

2. कायिक अनुभव- जो विकार या व्यापार अङ्गों की चेष्टाओं के रूप में होते हैं, जो आश्रय के आधीन होते हैं उन्हें कायिक अनुभव कहते हैं जैसे-कटाक्ष पात,हाथ से इङ्गित करना, फटकारना, छपटना आदि[52]। ध्यान रहे, आश्रय की चेष्टों अनुभव के अंतर्गत आती हैं किन्तु आलम्बन की नहीं।

रस का अनुभव- प्राय: प्राणियों के हृदय में प्रेम, क्रोध, घृणा, करुणा, भय, उत्साह, आदि भाव स्थायी रूप से विद्यमान रहते हैं। जब हम किसी नाटक को देखते हैं या कविता पढ़ते हैं अथवा सुनते हैं तब प्रसंग के अनुसार इनमें से कोई न कोई भावअवसर पाकर प्रकट होते हैं। हृदय प्रभावित होता है। इसी को रस का अनुभव कहते हैं[53]।

भाव- ज्ञान और क्रिया के बीच की स्थिति को भाव कहते हैं। जो कि एक विकार ही हैं। ये विकार स्वयं ही उत्पन्न नहीं होते, न सहज ही नष्ट होते हैं किन्तु विकार ही विकार को उत्पन्न करते हैं।

नौ रस - उक्त भावों के फल व स्वरूप क्रमश: निम्न रूप से समझें-

1. प्रेम भाव से -	श्रृंगार रस उत्पन्न होता है।
2. हास्य	हास्य
3. शोक	करुण
4. क्रोध	रौद्र
5. उत्साह	वीर
6. भय	भयानक
7. जुगुप्सा	वीभत्स
8. विस्मय	अद्‌भुत
9. निर्वेद	शास्त्र

52. का.प्र./पृ. 51

53. का.प्र./पृ. 42

भाव- जब इनमें से एक भी अवयव की कमी रहती है। तब वह भाव मात्र ही रहता है। कतिपय विद्वानों ने वात्सल्य नामक दसवाँ रस भी माना है" । (का.प्र./पृ. 60)

शोक, क्रोध, भय आदि स्थाई भाव माने जाते हैं। क्योंकि इन्हें विरुद्ध या अविरुद्ध भाव छिपा नहीं सकते हैं। और काव्य और नाटक में विरोधी या सहायक भाव इनको पुष्ट करने में ही सहायक होते हैं, इनका आस्वाद सदैव बना रहता है।

4. संचारी (व्यभिचारी)भाव-

संचारी भाव- जिस प्रकार समुद्र में अनेक लहरें उत्पन्न होती और नष्ट हो जाती हैं उसी प्रकार आत्मा में अनेक तरह से भाव संचरण करते हैं उसे ही संचारी या सात्विक भाव कहते हैं। अ.चि. 5/26

जो हृदय में स्थाई रूप से रहते हैं वे स्थाई भाव कहलाते हैं। तथा जो स्थाई भावों के स्थिति काल में केवल उन्हें पुष्टि में सहायक होते हैं तथा जो अपना काम करने के बाद तुरन्त लुप्त हो जाते हैं उन्हें सञ्चारी या व्यभिचारी भाव कहते हैं" । (43. का.प्र./पृ. 51-52)

अथवा अलंकार चिंतामणी 5/4 के भावार्थ में डॉ नेमीचन्द्र जैन शास्त्री संस्कृत, प्राकृत विभागाध्यक्ष एच.डी.जैन कॉलेज, आरा मगध विश्वविद्यालय ने सात्विक भाव व सञ्चारी भाव प्राय: एक माना है कई अलंकार शास्त्रियों ने सात्विक भाव की गणना सञ्चारियों के अंतर्गत की है। जिसे हम सात्विक भावों में देख चुके हैं। सात्विक भाव का अर्थ है कि जिनकी उत्पत्ति सत्व अर्थात् शरीर से होती है। इसे ही सात्विक भाव भी कहते है चिन्नवृत्ति सत्व है उससे उत्पन्न भाव सात्विक है इनकी संख्या आठ होती है" (44. अलं.चि. 5/4)

संचारी भाव के भेद- इसके 33 भेद होते हैं

यथा- 1. भय 2. शंका 3. ग्लानि 4. श्रम 5. धृति 6. जड़ता 7. गर्व 8. निर्वेद 9. दैन्य 10. क्रोध 11. ईर्ष्या 12. हर्ष 13. स्मृति 14. मरण

15. उद्बोध 16. निद्रा 17. अवहित्था 18. तर्क 19. लज्जा 20. आवेग 21. मोह 22. सुमति 23. अलसता 24. भ्रान्ति 25. अपस्मार 26. चिन्ता 27. रोग 28. सुप्ति 29. औत्सुक्य 30. विषाद 31. चपलता 32. औग्र्य 33. कार्पण्य[54]।

काव्य प्रदीप में कुछ नामों में परिवर्तन है।

व्यभिचारी भाव के 33 भेद होते हैं-

1. निर्वेद (उदासीनता, शान्तता) 2. आवेग 3. दैन्य 4. श्रम 5. मद 6. जड़ता 7. उग्रता 8. मोह 9. शङ्का 10. चिन्ता 11. ग्लानि 12. विषाद 13. व्याधि 14. आलस्य 15. आमर्ष 16. हर्ष 17. गर्व 18. असूया 19. धृति 20. मति 21. चापल्य 22. क्रीड़ा (लज्जा) 23. अवहित्था 24. निद्रा 25. स्वप्न 26. विबोध (जागना) 27. उन्माद 28. अपस्मार 29. स्मृति 30. और सुक्य (उत्सुकता) 31. त्रास 32. वितर्क 33. मरण[55]।

नोट- मरण को अङ्गल माना गया है। अत: कुछ आचार्य मृत्यु के कुछ पल पहले की दशा या रोगादि से होने वाली चिर कालीन मूर्छा को ही मरण मानते हैं।

सञ्चारी या व्यभिचारी भाव उक्त 33 से भी अधिक हो सकते हैं[00]।

सात्विक और व्यभिचारी भाव अनेक रसों में साधारणतया रहते हैं। यथा-

श्रृंगार रस में- सभी सात्विक व्यभिचारी भाव रहते हैं।

हास्य रस में- अवहित्था, ग्लानि, श्रम, चापल्य और हर्ष पाये जाते है।

करूण रस में- हर्ष, मद, गर्व, धृति, क्रीड़ा, उग्रता और सुक्य के अतिरिक्त सभी पाये जाते हैं।

रौद्र रस में- शंका, ग्लानि, दैन्य, आलस्य, चिन्ता, क्रीड़ा, आवेग, विषाद, जड़ता, निद्रा, सुगित भरा, अपस्मार, अवहित्था, रोग और

54. अलं.चि./प. 5/27-62 55. का.प्र./पृ. 53-59

उन्माद से भिन्न शेष सभी रस पाये जाते हैं

वीर रस में- निर्वेद के साथ रौद्र रस में गिनाये गये भावों के अतिरिक्त अन्य सभी व्यभिचारी भाव मिलते हैं।

भयानक रस में- धृति, मद, क्रीड़ा, गर्व, सुप्ति, निद्रा ,हर्ष, अवहित्था, मति, ईर्ष्या और उग्रता से रहित अन्य सभी भाव पाये जाते है।

वीभत्स व अद्भुत रस में- भय, चिन्ता इत्यादि यथा संभव अनेक भाव संभव होते हैं।

शान्त रस में- प्राय: धृति और निर्वेद भाव पाये जाते हैं। (अ.चि. 5/62)

रसविरोध

रसविरोध के भेद- रसविरोध के तीन भेद होते हैं[56]

1. आलम्बन 2. आश्रय (अविरोधी) 3. व्यवधान (नैरन्तर्य)

1. आलम्बन रस विरोध- जिसके प्रति भाव प्रवृत्त होता है वह आलम्बन है।

1. कुछ रस एक ही आलम्बन में होने से विरुद्ध होते हैं।

जैसे- वीर और श्रृंगार रस एक ही आलम्बन में होने से विरुद्ध होते है। इसी तरह एक ही आलम्बन में हास्य,रौद्र और वीभत्स रस के साथ विप्रलम्भ श्रृंगार रस का विरोध होता है

2. आश्रय (अविरोधी) रस विरोध- जिसके हृदय में भाव उत्पन्न एवं सञ्चरित होता है वह आश्रय कहलाता है। कुछ रस एक ही आश्रय में होने से विरूद्ध होते हैं।

जैसे- वीर और भयानक रसों का एक आश्रय में समावेश करना निषिद्ध है। क्योंकि निर्भय और उत्साही पुरुष होता है यदि उसमें भय आ जाये तो वह वीर नहीं रहेगा।

3. व्यवधान (नैरन्तर्य) रस विरोध- कुछ रस एक-दूसरे के पीछे बिना व्यवधान के आने से विरुद्ध होते है। जैसे- शान्त और

56. का.प्र./पृ. 89

श्रृंगार रस का नैरन्तर्य से एक के बाद दूसरे के आने से विरोधी है अर्थात् शान्त और श्रृंगार का एक ही क्रम में वर्णन अनुचित है दोषास्पद है यदि उनके बीच कोई अन्य रस आ जाये तो दोष नहीं रहेंगे।

कुछ रस ऐसे भी है जिनका परस्पर में कोई विरोध नहीं है जैसे-

I. वीर रस का अद्भुत और रौद्र के साथ उक्त तीनों (आलम्बन, आश्रय, नैरन्तर्य विरोध) में किसी तरह का विरोध नहीं है।

II. श्रृंगार का अद्भुत के साथ किसी तरह का विरोध नहीं है।

III. भयानक का वीभत्स के साथ किसी तरह का विरोध नहीं है।

IV. श्रृंगार का हास्य के साथ किसी तरह का विरोध नहीं है।

ध्यान रहे ,विरोधी रसों के असाधारण अंगों के वर्णन में ही दोष होता है उभय के साधारण वर्णों में नहीं।

निम्न रस एक साथ नहीं रह सकते-

जैसे- I. श्रृंगार रस करुण, वीभत्स, रौद्र, वीर और भयानक एक साथ नहीं रह सकते हैं।

II. हास्य रस, भयानक और करूण एक साथ नहीं रह सकते हैं।

III. करूण रसहास्य, श्रृंगार एक साथ नहीं रह सकते है।

IV. रौद्र रस हास्य, श्रृंगार और भयानक एक साथ नहीं रह सकते हैं।

V. वीर रस भयानक और शान्त रस एक साथ नहीं रह सकते हैं।

VI. भयानक, श्रृंगार, वीर, रौद्र, हास्य और शान्त रस एक साथ नहीं रह सकते हैं।

VII. वीभत्स रस श्रृंगार रस के साथ नहीं रह सकता है।

VIII. शान्त रस वीर, श्रृंगार, रौद्र, हास्य और भयानक रस एक साथ नहीं रह सकते हैं[56]।

अलङ्कार

चारूत्वहेतुना येन वस्तलङ्क्रियतेऽङ्गवत्।
हारकाञ्चयादिभि: प्रोक्त: सोऽलङ्कार: कवीशिभि:।।

हार और काञ्ची (करधनी) इत्यादि आभूषणों से जैसे सुन्दर रमणी के अंग सुशोभित होते है, उसी प्रकार शब्दार्थ-सौन्दर्य के कारण जिससे वस्तु की शोभा बढ़ती है, काव्य शास्त्र के विद्वानों ने उसे अलंकार कहा है।

(अ.चि. 4/1)

अर्थात् सुन्दर अंग वाली स्त्री यदि आभूषण धारण कर ले तो उसकी शोभा और अधिक बढ़ जाती है वैसी ही शब्दार्थ से जो वस्तु की शोभा बढ़ाता है वह अलंकार है।

"काव्यशोभाकरान्धर्मानलङ्कारान्प्रचक्षते[57]" (का.आ.2/1)

काव्य की शोभा करने वाले धर्म को अलङ्कार कहते है।

काव्य में अलंकार आवश्यक नहीं होते हैं अलङ्कार काव्य का अस्थिर धर्म है। किन्तु रस काव्य का प्राण है। इस के बिना काव्य,काव्य नहीं होता[58]।

(का.प्र./पृ. 97-98)

अलंकार के भेद- अलंकार के मुख्य दो भेद होते हैं -

1. शब्दालङ्कार
2. अर्थालङ्कार

57.का.आ.2/1

58.का.प्र./पृ. 97-98)

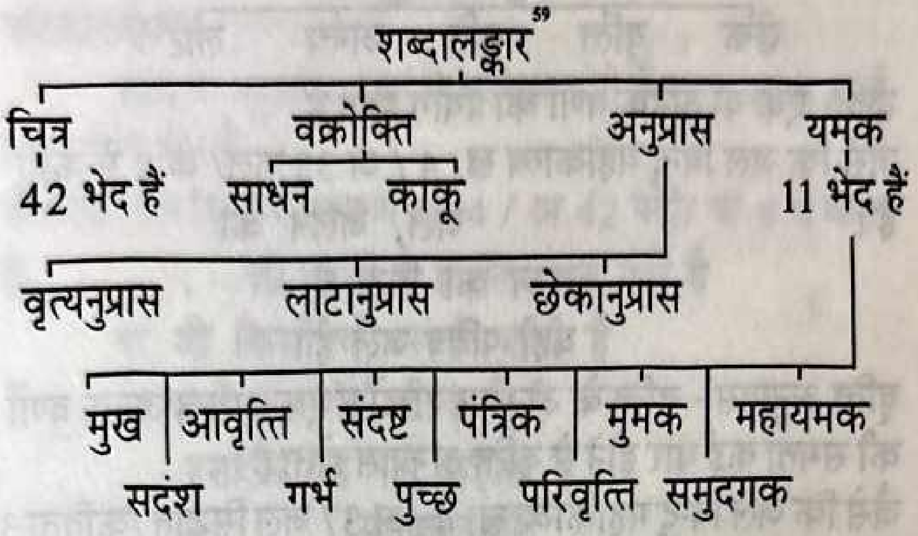

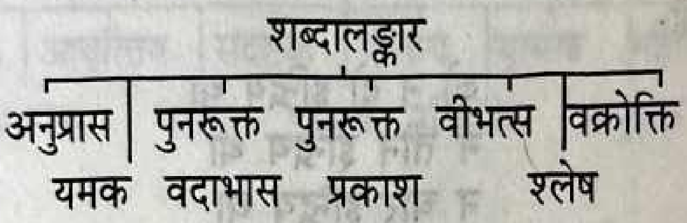

श्लेष और वक्रोक्ति- शब्द व अर्थ (अलंकार) दोनों के कारण हैं। अनुप्रास- एक या कई व्यंजन जब वाक्य के शब्दों में एक से अधिक बार एक ही क्रम में आते हैं तब अनुप्रासालङ्कार होता है।

"व्यञ्जन समवरू रस असम अनुप्रासालङ्कार[60]"

यह आवश्यक नहीं कि उन सब व्यञ्जनों में एक ही समान स्वर का संयोग हो। असम अर्थात कि सम भी हो सकते हैं।

जैसे कि जलबिन्दु महाकाव्य ख.4/अ.43 चेतावनी/क.20 में कहा

यथा- **कल कल बहती सरिता,**
नित्य एक सबक सिखाती
कल कभी भी नहीं आता ,
कल कल ही बना रहता है
तथा जो आता है तो वह
जैसा आता है वैसा ही वो
वापिस चला ही जाता है ।

59. अलं.चि./प- 2 60. अलंकार मंजुषा

अनुप्रास लंङ्कार[61]

छेक — वृत्ति — श्रुति — अन्त्य — लाट

छेक- एक या अनेक वर्णों का प्रयोग होता है
जैसे कि जल बिन्दु महाकाव्य ख. 4 / अ.33 जल/ क.2 में कहा है।

जल, जलन को
तपन को मिटा दे
वही पवित्र जल है।

वृत्ति अनुप्रास - वृत्ति के अनुसार शब्दों में एक अथवा अनेक वर्णों की समता कई बार होने से वृत्ति अनुप्रास होता है।
जैसे कि जल बिन्दु महाकाव्य ख. 4 /अ.37 जल सिद्धांत /कविता 3 में कहा है-

जो न दो इन्द्रिय था
न तीन इन्द्रिय था
न चार इन्द्रिय था
न वह पंचेन्द्रिय था
किन्तु एकन्द्रिय था

लाटानुप्रास अ.- इसमें ऐसे शब्द या वाक्य दुबारा आते हैं जिनका अर्थ तो एक ही होता है पर अन्वय करने से अर्थ भिन्न हो जाता है।
जैसे कि जल बिन्दु महाकाव्य ख. 4/ अ.33 जल /कविता 6 में कहा है

जल जो कि तरल है परन्तु
जग के सभी तरल जल नहीं
जल जो कि सरल है परन्तु
दिखे सभी सरल जल नहीं
जल प्रकृति से भी शीतल है
किन्तु सभी शीतल जल नहीं
जो प्यास को मिटाये वह जल है
लेकिन प्यास मिटाने वाले
सभी जल नहीं हुआ करते हैं।

61. का.प्र./पृ. 102

यमकालंकार-

शब्द या वाक्यांश एक से अधिक होते हैं परन्तु उनके अर्थ सर्वत्र भिन्न होते हैं[62]।

जैसे कि जल बिन्दु महाकाव्य ख. 4 / अ.42 नदी/ क-8 में कहा है-

जो बहती है इसलिए वह नदी है
पर जो किसी को न-दी जाती है
न कभी कुछ देती ही जाती है
इसलिए वह नदी कहाती है।

यमकालंकार

मुख प.	आवृत्तिय	संदष्टक	पंक्तिय	युग्मंक	महायमक
सदंशय	गर्भय	पुच्छय	परिवृत्ति	समुद्गक	

1. प्रथम, द्वितीय पाद में समानता मुख यमकालंकार है।
2. प्रथम, तृतीय पाद में समानता संदश यमकालंकार है।
3. प्रथम, चतुर्थ पाद में समानता आवृत्ति यमकालंकार है।
4. द्वितीय, तृतीय पाद में समानता गर्भय यमकालंकार है।
5. द्वितीय, चतुर्थ पाद में समानता संदष्टक यमकालंकार है।
6. तृतीय, चतुर्थ पाद में समानता पुच्छ यमकालंकार है।
7. चारों चरणों/पाद में समानता पंक्ति यमकालंकार है।
8. प्रथम, चतुर्थ तथा द्वितीय, तृतीय पाद में समानता परिवृत्ति यमकालंकार है।
9. प्रथम, चतुर्थ तथा तृतीय, चतुर्थ पाद में समानता युग्मंक यमकालंकार है।
10. पूर्वार्द्ध, उत्तरार्द्ध समान पाद में समानता समुद्गक यमकालंकार है।
11. एक ही श्लोक को दो बार पढ़े जाने पर पाद में समानता महायमक यमकालंकार है[63]।

---

62. का.प्र./पृ. 108

63. अल.चि. 3/12

पुनरूक्ति प्रकाशालंङ्कार- एक ही शब्द जब दो या अधिक बार आते है और रुचि को बढ़ाते है। तब यह अलंकार होता है।

जैसे कि जल बिन्दु महाकाव्य ख. 4/ अ.42 नदी / क. 9 में कहा है।

यथा- **कहाँ-कहाँ नहीं बही वह नदी**
किस से न टकराई थी वह नदी

श्लेषालंकार- एक शब्द के एक ही बार के प्रयोग में दो अर्थ निकले वह श्लेषालंकार है[51]।

जैसे कि जल बिन्दु महाकाव्य ख. 4/ अ.41 नाली-नाला / कविता 12 में कहा है।

यथा-1. **जो किसी को भी**
कभी नहीं लाता था
अत: वह नाला था
और नित्य ही सभी
कुछ बहा लाता अत:
नाला कहलाता था।

जैसे कि जल बिन्दु महाकाव्य ख. 4/ अ.42 नदी. क.9 में कहा है-

2. **लोगों को सदा सब कुछ देती**
आश्चर्य है फिर भी वह न-दी,
सम्पूर्ण विश्व में सदा
नदी नाम से पुकारी जाती थी।

वक्रोक्ति अलंकार- जहाँ किसी वाक्य में जब वक्ता के अभिप्रेत आशय से भिन्न अर्थ की कल्पना की जाती है

---

51. का.प्र./पृ. 117 52. का.प्र./पृ. 121
53. का.प्र./पृ. 126

वहाँ वक्रोक्ति अलंकार होता है[52]।

जैसे कि जल बिन्दु महा. ददख. 4/ अ.42 नदी/क.10 में कहा है।

जैसे- **मात्र वह नदी थी,क्योंकि**
उसने स्वेच्छा से कभी भी
किसी को भी कुछ भी
नहीं दिया था तो भी वह
बहती हुई नदी कहलाती थी

अर्थालंकार-शब्दों की अपेक्षा जिसमें अर्थ पर जोर पड़ता है उसे अथवा प्रयोक्त शब्दों द्वारा भिन्नार्थ निकाला जाता है वह अर्थालंकार है[53]।

जैसे कि जल बिन्दु महा.ख. 4/ अ.42 नदी /क.11,12,13 में कहा है।

जैसे- 1. **वह नदी नहीं किन्तु**
वह तो बहुत ही बड़ा
लम्बा अजगर ही था

2. **वह नदी होकर के भी**
सभी के लिए सब कुछ
देती ही तो देती जाती थी

3. **जल तो जलन मिटाता**
पर उस उबलते जल ने
सभी को जलाया ही था
व किसी-किसी को तो
मौत के घाट उतार कर
मृत शैय्या पर सुलाया था।

उपमा अलंकार- किसी की किसी भिन्न अच्छी वस्तु के रूप में उपमा देना उपमा अलंकार है[54]।

54. का.प्र./पृ. 129

अथवा जिस वस्तु का वर्णन किया जाता है उसकी उससे अधिक गुण वाली या प्रसिद्ध वस्तु से समानता की जाती है तब उपमा अलंकार होता है।

जैसे कि जल बिन्दु महाकाव्य ख. 5/ अ.48 जल बिन्दु सुत /क. 2 में कहा है।

जैसे वह जल की बिन्दु नहीं किन्तु
वह तो साक्षात् जल सिन्धु थी
बिन्दु बिन सिन्धु नहीं बनी थी
वह बिन्दु से ही सिन्धु बनी थी

उपमा अलंकार के भेद- उपमा के चार अंग होते हैं

1. उपमेय- जिसकी तुलना की जाये
2. उपमान- जिससे तुलना की जाये
3. साधारण धर्म- जिस गुण में तुलना की जाये
4. वाचक- जिस शब्द के द्वारा तुलना प्रकट हो।

उपमा अलंकार में भिन्न वस्तुओं की आवश्यकता होती है।

लुप्तोपमा अलंकार- उपरोक्त चारों अंगों में से किसी एक या अधिक अंग के न होने पर लुप्तोपमा अलंकार होता है[55]।

प्रतीपालंकार- उपमा के अंगों के उलट फेर से अर्थात् उपमेय को उपमान के समान न कह कर प्रत्युत उलट फेर से अर्थात् उपमान को उपमेय के समान कहना प्रतीपालंकार है।

जैसे कि जल बिन्दु महाकाव्य ख. 4/ अ.44संगम/ क.1 में कहा है।

---

55. का.प्र./पृ. 131

जैसे - तीर्थङ्कर श्री ऋषभदेव की
तप:स्थली प्रयागराज में
जाकर के मैंने देखा कि
जमुना का जल कृष्णवत
श्याम था पर गंगा का जल
बलराम देहवत गोरवर्ण था

इसमें उपमेय (कृष्ण,बलराम) के शरीर का वर्ण और उपमान (जमुना,गंगा का जल) के विपर्यय द्वारा जमुना जल उपमेय और कृष्ण और बलराम के शरीर का वर्ण उपमान कर देने से प्रतीपालंकार हुआ[56]।

व्यतिरेकालंकार- जब उपमेय को उपमान से बढ़ाकर अथवा उपमान को उपमेय से घटाकर वर्णन किया जाता है तब व्यतिरेक अलंकार होता है जैसे आदिनाथ का मुँह चन्द्रमा सदृश नहीं था क्योंकि चन्द्र उदितास्त है पर आप उदितास्त नहीं हैं।

जैसे कि जल बिन्दु महाकाव्य ख. 5/ अ.50 बर्फ /क. 11 में कहा है।

जल बिन्दु ने जब जब
शीतलता पाई तब तब
जमकर पत्थर समान
कठोर तो हो गई परन्तु
वह पूर्ण पत्थर नहीं हुई
क्योंकि पत्थर कभी भी
पिघलता नहीं है किन्तु
पत्थर के समान जमी हुई
बर्फ सदैव पिघल जाती है।

---

56. का.प्र./पृ. 139

रूपक अलंकार - जब प्रस्तुत या उपमेय पर अप्रस्तुत या उपमान का आरोप होता है तब रूपक अलंकार होता है।

रूपक (आरोप)

- अभेदता रूपक
- तद्रूपता रूपक

रूपक[57]

- सावयव
  - समस्त वस्तु विषय
  - एकदेशविवर्ति
- निरवयव
  - केवल
  - मालारूप
- परम्परित
  - शिलष्ठ हेतुक
    - केवल
    - मालारूपत्व
  - अशिलष्ठ हेतुक
    - केवल
    - मालारूपत्व

जब उपमेय की उपमान के रूप में दिखाया जाता है तप रूपक अलंकार होता है।

जैसे कि जल बिन्दु महाकाव्य ख. 4/ अ.33 जल /क.3 में कहा है।

जैसे   **जल बिन्दु जल बिन्दु ही नहीं**
किन्तु वह अमृत बिन्दु भी थी
प्यासे को अमृत से कम न थी
उसे मरण से बचाने वाली थी

रूपक के तीन भेद

1. सम रूपक- उपमेय और उपमान में जहाँ समानता

57. अलं.चि./प-4/104

होती है मुख, चन्द्र दोनों में समानता।

2. अधिक रूपक- उपमेय में उपमान की अपेक्षा कुछ अधिकता दिखायी जाती है जैसे निष्कलंक जिन चन्द्र मुख/ जिन भगवान का मुख चन्द्र सम तो है किन्तु चन्द्रमा कलंकित है और जिनमुख निष्कलंकित है।

जैसे कि जल बिन्दु महाकाव्य ख. 5/ अ.50बर्फ /क. 12में कहा है।

वह जल बिन्दु तो
रजनीकांत से भी
अति शीतल थी
क्योंकि वह तो
बर्फ भी बन जाती
पर चन्द्रमा कभी
बर्फ नहीं बनता
न बर्फ सम कभी
वह शीतल होता।

3. न्यूनरूपक- उपमेय में उपमान की अपेक्षा कुछ न्यूनता दिखाई जाती है[58]।

जैसे कि जल बिन्दु महाकाव्य में कहा है।

जैसे- **नदि वायुवत्**
बह रही थी
वायु तो सर्वत्र
बहती रहती है
नदी सर्वत्र नहीं
बहा करती है।

58. का.प्र./पृ. 148

उत्प्रेक्षालंकार- जिसमें अप्रकृत अर्थ के सम्बन्ध से प्रकृत अर्थ का किसी दूसरे प्रकार से वर्णन किया जाये, उसे विद्वानों ने उत्प्रेक्षालंकार कहा है[59]।

जब उपमेय में उपमान से भिन्नता जानते हुए भी उसमें उपमान की सम्भावना की जाती है तब उत्प्रेक्षा अलंकार होता है[60]।

जैसे कि जल बिन्दु महाकाव्य में कहा है।

यथा-

बहती नदी ऐसी
लग रही थी मानो
कोई लम्बा सर्प हो
या डामर रोड हो

उपरोक्त दृष्टांत को यदि ऐसा कहते कि वह नदी सर्प के समान है। तो उपमा अलंकार, प्रसंग भी तथा नदी सर्प ही है ऐसा कहते तो रूपक अलंकार होता परन्तु इन दोनों से भिन्न यदि ऐसा कहते हैं नदी मानो सर्प हो, तो उत्प्रेक्षा अलंकार होगा।

उत्प्रेक्षा के प्रकार- असत्य को सत्य से उद्भावन करना उत्प्रेक्षा अलंकार है। इसके मुख्य दो भेद हैं-

1. वाच्योत्प्रेक्षा- जैसे- जानते हैं / मानता हूँ निश्चय ही प्राय: आदि अथवा पर्यायवाची शब्दों को रखकर कथन किया जाता है उसे वाच्योत्पेक्षा कहते हैं। (क.प.154)

2. गम्यमानोत्प्रेक्षा- जैसे- वाच्योत्प्रेक्षा से भिन्न उक्त शब्द प्रयोग से रहित होने पर भी अर्थ झलकता है। इसे प्रतीयमान उत्प्रेक्षा भी कहते हैं।

अथवा

उत्प्रेक्षाएँ तीन प्रकार की होती हैं

1. वस्तु 2. हेतु 3. फल

जैसे कि जल बिन्दु महाकाव्य ख. 4/ अ.नदी में कहा है।

1. वस्तु उत्प्रेक्षा- **नदी की विकराल धारा**
ऐसी लग रही थी मानो

---

59. अलं.चि./प-4/141
60. का.प्र./पृ.-155

कोई रण चंडी अपने तीव्र
क्रोध में ही वो उफना रही हो

2. हेतु (कारण) नदि गतिशील
इसीलिए थी कि
शीघ्र ही सिंधु से
वह मिल सके

3. फलोत्प्रेक्षा- प्यास बुझाते बरसते बादल
प्यासों को हर्षित कर रहे थे

हेतु कार्य के पूर्व होता है और फल बाद में, इतना ही दोनों में अन्तर होता है।

स्मरण अलंकार- पहले देखी-सुनी बात को पुन: याद करने में स्मरण अलंकार होता है[61]।

जैसे कि जल बिन्दु महाकाव्य में कहा है।

जो कल भी प्यास बुझाती थी
वो आज भी प्यास बुझा रही है
और आगे भी बुझाती रहेगी
अथवा
एक बूँद ने दूसरी बूँद से कहा
तुम वही हो न जो कल तुम
मुझे बाँध में मिली थी आज
दूसरे बाँध में मैं भी छिक गई
इसलिए ही तो तुम्हें देखकर
याद आ गई कि तुम वही हो
जो कल उस बाँध में मिली थी

61. का.प्र./पृ.-157

अपह्नुति अलंकार- यह नहीं है, यह है इस प्रकार साम्य के कारण अपह्नुति अलंकार होता है। इसे अपन्हव भी कहते है

अपन्हुति अलंकार के तीन भेद होते है-

1. आरोप्यापह्न 2. अपह्नवारोप 3. छलादि उक्ति

जैसे-यह इन्द्र सभा देवताओं द्वारा बजाई गई उत्तम भेरी का शब्द नहीं है किन्तु पवन वेग से आहत हुए समुद्री जल का गम्भीर शब्द है। यह अपह्नवारोप का उदाहरण है इससे विपरीत आरोप्यापह्न होता है। चंड किरणों की तरह बरसती हुई जल वर्षा हो रही थी[62]।

किसी बात को छिपाकर उसके स्थान पर किसी झूठी बात के रखने में अपह्नुति अलंकार है[63]।

जैसेकि जल बिन्दु महाकाव्य ख. 4/ अ.43 चेतावनी/ क .22,23में कहा है।

जैसे- वह नदी नहीं किन्तु
वह काल के समान
काला नाग ही थी
जिसने सब ही बहा
बहा कर काल के
मुख में पहुँचाया था
अथवा
वह ऐसी एक दया मूर्ति थी
जिसने प्यासे प्राणियों को व
बोए खेत पर बैठे किसान को
और बाग के बागवानों को
मानो उन्हें जीवन ही दिया हो।

भ्रान्तिमान(भ्रम) अलंकार- किसी वस्तु को देख जब उसमें अन्य वस्तु का संशय होने लगता है तब भ्रान्तिमान अंलकार होता है[64]।

जैसे कि जल बिन्दु महाकाव्य ख. 5/अ.52 लहरें/क.29 में कहा है।

62. अल.चि./प-4/135-136
63. का.प्र./पृ. 163
64. का.प्र./पृ. 167

यथा- जलनिधि के उस तट पर
छोटी बड़ी सीप पड़ी थी
जिन्हें देखकर कोई चांदी
तो कोई मछली समझ कर
पकड़ने की कोशिश करता
पर न चांदी न मछली पाता
मात्र पछताता ही रह जाता

संदेहालंकार- जिसमें सज्जनों से अभिमत सादृश्य के कारण विषय और विषयों में कवि को सन्देह प्रतीत हो तो उसे संदेहालंकार कहते हैं[65]।

भ्रम अलंकार में उपमेय और उपमान को सत्य मान लिया जाता है किन्तु संदेह में उपमेय और उपमान का निर्णय ही नहीं होता है। यही दोनों में अन्तर है[66]।

जैसे कि जल बिन्दु महाकाव्य ख. 4/ अ.43 चेतावनी /क-24 में कहा है।

यथा-

सरिता तट जल विहीन
पूर्णतः वह सूखा ही था
सूर्य किरणों को पाकर
उसमें तो केवल बालू ही
चमक रही थी और वह
प्यासे खड़े एक मृग को
विचारों में उलझा रही थी
क्या ये चमक पानी की है
नहीं नहीं ऐसी चमक तो
सूखी बालू की भी होती
मैं वहाँ जाऊँ या न जाऊँ।

---

65. अलं.चि./प-4/128 66. का.प्र./पृ. 168

संदेहालंकार के भेद- संदेहालंकार के मुख्य तीन भेद हैं -
1.शुद्धा- केवल संदेह में समाप्त होने वाली संदेहालंवृति
जैसे कि जल बिन्दु महाकाव्य ख.5/ अ.52 लहरें/क-30में कहा है-

क्या यह रत्नों से भरा रत्नाकर है
या मकरों से भरा कोई मकराकर है

2. निश्चय गर्भा- जो हेतु द्वारा सिद्ध किया जाता है।
जैसे कि जल बिन्दु महाकाव्य ख.4/ अ.43 चेतावनी/ क .25 में कहा है-

बहती सरिता को देख ऐसा लग रहा था कि
क्या सरपट चलने वाली यह कोई वाष्पयान है
नहीं नहीं वाष्पयान तो पट्टी पर चलती है परन्तु
यह बिना पट्टी की ही चलती बहती रहती है

3. निश्चयान्ता संदेहालंकार- काफी उदाहरण के बाद जिसे निश्चय किया जाता है
जैसे कि जल बिन्दु महाकाव्य ख.4/ अ.32 जल/ क.12में कहा हैं-

क्या वह जल बिन्दु कोई
धर्म शिक्षा प्रदान करती
धर्म की पुस्तिका है या
अर्थ शिक्षा प्रदात्री कोई
अर्थ शास्त्र है अथवा ये
क्या कोई नीति शास्त्र है
या फिर राजनीति शास्त्र है।

उल्लेखालंकार- यह नहीं है, है इस प्रकार साम्य के कारण अपह्नुति अलंकार होता है। अ.चि. 4/135 जब किसी वस्तु का विविध प्रकार से वर्णन किया जाता तब उल्लेखालंकार होता है[67]।

67. का.प्र./पृ. 171

जैसे कि जलबिन्दु महाकाव्य ख. 4/ अ.43 चेतावनी /क.26 में कहा है।

यथा-
नदी तो मात्र एक ही थी
परन्तु उसको कोई देवी
कोई उसको काला नाग
कोई उसको अपने प्राण
संपूर्ण आजीविका का
एक आधार ही मानते थे।

प्रतिवस्तूपमालंकार- इस अलंकार में मुख्य तीन बातों पर ध्यान रखना आवश्यक होता है-

1. उपमेय और उपमान संबंधी दो अलग-अलग वाक्यों में
2. भिन्न-भिन्न शब्दों से तथा
3. जब एक ही धर्म में तुलना की जाती है तब प्रतिवस्तु अलंकार होता है।

जैसे कि जल बिन्दु महाकाव्य में कहा है-

जल बिंदु एक ही बिंदु थी परन्तु
वह अपने निज गुण धर्म से थी
किसी साँचे में नहीं ढाली गई थी
इसलिए ही तो वह सहज और
वास्तविक असली स्वाभाविक ही थी

दृष्टान्तालंकार- जहाँ दो वाक्यों में बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव रूप सामान्य धर्म का कथन हो वहाँ दृष्टान्तालंकार होता है[68]। अथवा जहाँ उपमेय और उपमान वाक्य तथा उसके साधारण धर्म का पृथक् होते हुए भी बिम्ब, प्रतिबिम्ब मानें तो वहाँ दृष्टान्तालंकार होता है।

---

68. अ.लि.4/233

जैसे कि जल बिन्दु महाकाव्य में कहा है।

जो स्वच्छ सरिता जल
प्यास बुझा सकता है
वह क्या कभी कोई
लवण समुद्र का जल
किसी की प्यास को
बुझा सकेगा?नहीं न।

दृष्टान्तालंकार के भेद- दृष्टान्तालंकार के मुख्य दो भेद होते है-
1. साधर्म्य 2. वैधर्म्य

जैसे कि जल बिन्दु महाकाव्य ख.4/ अ.38 वर्षा /क.40 में कहा है-

सूर्य के उदित होते ही
कमल विकसित होते हैं
उसी तरह जल वर्षा से
भूमि हरी भरी हो जाती है।

उदाहरण अलंकार- जब दो वाक्यों का साधारण धर्म भिन्न होता है फिर भी दोनों में समानता दिखाई जाती है तब उसे उदाहरण अलंकार कहते हैं[69]।

जैसे कि जल बिन्दु महाकाव्य में कहा है-

प्रभाती सूर्योदय बेला में
पद्म सरोवर के कमल
ऐसे खिल रहे थे कि
मानो वे कलशामृत हों
जो तीर्थेश वर्द्धमान के
मस्तकाभिषेक के लिए
उत्कण्ठा से पूर्ण भरे हों।

---

69. का.प्र.

अतिशयोक्ति अलंकार- उपमेय के निगरण पूर्वक उसके साथ विषयी उपमान की प्रतिपत्ति हो वहाँ अतिशयोक्ति होता है[70]। अर्थात् किसी की लोक सीमा से भी बढ़कर वर्णन करने में अतिशयोक्ति अलंकार होता है।

जैसे-
जल बिन्दु तो साक्षात्
विशाल सिन्धु ही थी
क्योंकि विशाल सिन्धु
जल बिन्दु से ही बना था।

अथवा-
जो चुल्लुभर
पानी के लिए
तरसा देते थे
पर प्यास बुझा
प्यासे राहगीर को
हर्षा भी देते थे

अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार- जहाँ अप्रासंगिक के निरूपण से प्रासंगिक अर्थ की प्रतीत होती है। (अ.चि.4/259)
जैसे कि जल बिन्दु महाकाव्य ख.2/ अ.10/क.40 बादल में कहा है।

यथा-
अरे पपीहे! तू
श्वेत बादल में
पानी पाने की
आस मत कर
चूँकि वे कभी
बरसेंगे भी नहीं
पानी तो केवल
काले बादल ही
नियमत: बरसाते हैं।

/पृ. 178 70. अंल चि. 4/151

अतिशयोक्ति[71]

भेद में अभेद, अभेद में भेद, संबध में असबंध, असंबंध में संबंध

अतिशयोक्ति अलंकार[72]

रूपातिश. | संबंधा तिश. | अक्रमातिश. | अत्यन्तातिश.
भेदातिश. असंबंधातिश. चपलातिश.

विशेष दृष्टव्य-

उपमा से मिलते-जुलते अलंकार-

1. इस का मुख चन्द्र वत् है (उपमा)
2. इसका मुख इसी के समान है (अन्वय)
3. चन्द्रमा इसके मुख के समान है (प्रतीप)
4. चन्द्र देख इसके मुख का स्मरण आ जाता है (स्मरण)
5. इसका मुख ही चन्द्र है (रूपक)
6. यह क्या इसका मुख है या चन्द्र (संदेह)
7. इसके मुख को चन्द्र समझ चकोर इसकी ओर एक टक देखेते हैं। (भ्रान्तिमान)
8. यह चन्द्र नहीं मुख है (अपह्नुति)
9. मुख मानो चन्द्र है (उत्प्रेक्षा)
10. निष्कलंक मुख चन्द्र से बढ़कर है (व्यतिरेक)
11. देखो यह चन्द्र निकला (अतिशयोक्ति)[73]

अत्युक्ति अलंकार- अतिशयोक्ति में यद्यपि उपमेय के विषय में बढ़ा-चढ़ा कर बात की जाती है फिर भी सत्य का कुछ न कुछ इसमें अंश रहता है।

पर जिसमें सत्य का कुछ भी अंश नहीं रहता है उस अलंकार

71. का.प्र./पृ. 178
72. का.प्र./पृ. 187
73. का.प्र./पृ. 187

को अत्युक्ति अलंकार कहते है[74]।

जैसे कि जल बिन्दु महाकाव्य जल में कहा है।

जल बिन्दु का वर्णन शब्दातीत है
शब्द उसके सन्मुख बौने होते है।

तुल्ययोगितालंकार-जिसमें प्रस्तुत से भिन्न अर्थों के सदृश्य के कारण सादृश्य प्रतीत होता है उसे तुल्ययोगिता कहते है[75]।

जैसे कि जल बिन्दु महाकाव्य ख.4/अ38 वर्षा /क40 में कहा है-

जैसे जैसे वर्षा हुई
वैसे वैसे पृथ्वी की
तपन और प्यास ये
दोनों ही कम हुई
और समाप्त हो गई

अथवा जब किसी व्यक्ति का पदार्थो या क्रिया अथवा विशेष गुणों के द्वारा एक ही धर्म (गुण) निश्चित किया जाता है तब तुल्ययोगितालंकार होता है।

जैसे- **नदी का बहना और**
पवन का बहना भी
दोनों समान ही थे।

अथवा

जल बिन्दु, बिन्दु ही नहीं
पर बिन्दु तो ओस बिन्दु है
अमृत बिन्दु व नेत्र बिन्दु
और वह साक्षात् सिन्धु है।

दीपकालंकार- जिसमें प्रस्तुत और अप्रस्तुत पदार्थो में एक धर्म का अभिसंबंध होने से उपमानोपमेय भाव प्रतीत होता है वही आदि उसे दीपकालंकार कहते है[76]।

---

74. का.प्र./पृ. 189
75. अंल चि. 4/216
76. अंल चि. 4/222

अथवा तुल्ययोगिता में केवल उपमेय अथवा केवल उपमान का एक ही धर्म कहा जाता है। परन्तु जहाँ पर उपमेय और उपमान (प्रस्तुत या अप्रस्तुत) दोनों के किसी गुण (धर्म) का किसी क्रिया अथवा विशेषण के द्वारा केवल एक बार वर्णन हो तब दीपक अलंकार होता है"।

यथा- यह सरिता गंगा ही नहीं
किन्तु आकाश गंगा थी
क्योंकि वे साथ रहती थी
एक भू पर एक खं पर थी।

दीपकालंकार के भेद- 1. आदि दीपकालंकार
2. मध्यदीपकालंकार 3. अंत दीपकालंकार

1. आदिदीपकालंकार- जैसे स्वयंभू रमण में महामच्छ
स्वर्ग में इन्द्र सुशोभित होता है
उसी प्रकार विशाल रत्नाकर में
मनोहारी रत्न सुशोभित हो रहे थे।

2. अन्त्य दीपकालंकार- मालाओं से इन्द्र,
सरिताओं से समुद्र
चाँदनी से चन्द्रमा
सुशोभित होता है
वैसे ही नदियों के
मिल जाने से समुद्र
सुशोभित हो रहा था।

---

77. का.प्र./पृ. 199

3. मध्य दीपकालंकार- जैसे तेज से सूर्य,
शीतलता से चन्द्रमा
सुशोभित होता है
वैसे ही मोतियों से
समुद्र शोभित होता है।

मालादीपकलंकार- रस से काव्य,काव्य से वाणी और वाणी से विद्वतता की शोभा बढ़ती है[78]।

जल बिन्दु से वर्षा
वर्षा से नाले और
नालों से नदी तथा
नदियों से जलनिधि
सुशोभित हो रहे थे

ब्याज स्तुति अलंकार- 1. निंदा द्वारा स्तुति की जाती है अथवा
2. स्तुति द्वारा निंदा की जाती है[79]।

यथा- ये वे बादल
किसानों को
इंतजारी ही
नहीं कराते
कभी-कभी
उन्हें रूला भी
देते हैं तब ही
वे बरसते हैं।

78. का.प्र./पृ. 192
79. अंल चि. 4/256

अथवा-जो चुल्लुभर

पानी के लिए
तरसा देते थे
पर प्यास बुझा
प्यासे राहगीर को
हर्षा भी देते थे

विशेष का सामान्य से समर्थन जैसे-

जल बिन्दु प्यासे की प्यास बुझाती
तपन से संतप्त की ताप मिटाती
किसानों की आश को पूर्ण करती
आखिर वह सभी बड़े काम करती

सामान्य का विशेष से समर्थन-

जिसके आने से सुख मिलता
सम्पूर्ण पृथ्वी हरी भरी होती
अथवा जाने से दुख मिलता
बिना उसके वह सूख जाती है

अर्थान्तरन्यास अलंकार- प्रतिवस्तु निदर्शना और दृष्टांत में किसी विशेष बात का समर्थन अन्य विशेष बात से किया जाता है। परन्तु इससे विपरीत जब

प्रस्तुत अर्थ का अप्रस्तुत अन्य अर्थ के स्थापन करने से समर्थन किया जाता है तब अर्थान्तरन्यासअलंकार होता है।

अर्थात् कभी किसी विशेष बात को (जो एक ही वस्तु या व्यक्ति से सम्बन्ध रखती है) कहकर उसका समर्थन सामान्य बात (जो साधारणत: बहुत सी वस्तुओं में संबधं रखती हो) से किया जाता है तथा कभी सामान्य बात का विशेष से, तब अर्थान्यासअलंकार होता है[80]।

अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार- जहाँ अप्रासंगिक के निरूपण से प्रासंगिक अर्थ की प्रतीति होती है[81]।

यथा- **हे पपीहे! तू**
श्वेत बादलों में
पानी पाने की
आस मत कर
क्योंकि वे कभी
बरसेंगे नहीं
पानी तो काले
बादल ही बरसाते हैं।

अर्थालंकार

शब्दश्लेषालंकार को शब्दालंकार में देख चुके हैं कि प्रत्येक शब्द के अनेक अर्थ होते हैं। (शब्दानाम ने कहा) तथा पर्यायवाची नाम भी अनेकों होते हैं। अत: एक शब्द के स्थान पर जब दूसरा पर्यायवाचक शब्द रख दिया जाए तो श्लेष नहीं रहेगा।

वह सर नहीं था
फिर भी सर ही था
क्योंकि वह तालाब था।

सर शब्द के दो अर्थ है- 1. तालाब 2. टीचर या मुखिया सुपरोक्त उदाहरण में सर शब्द के दो अर्थ निकलते हैं-

1. वह सर अर्थात् मुखिया नहीं था
2. वह सर अर्थात् तालाब नहीं था

---

80. का.प्र./पृ. 153 81. अंल चि. 4/259

पर जब सर में के स्थान पर तालाब शब्द लिखा जाये तो एक ही अर्थ निकलेगा, दो नहीं, तब श्लेष शब्दालंकार नहीं रहेगा।

इसी प्रकार **अर्थ श्लेषालंकार**- शब्द श्लेष से विपरीत जहाँ वाक्य में एक या उससे अधिक स्वभाव से एकार्थ वाचक शब्द हो जिनके एक से अधिक (कई) पक्षों में अर्थ लगते हों वहाँ अर्थ श्लेषालंकार है।

अर्थात् शब्द श्लेष में एक शब्द के दो अर्थ होते हैं। और उसके स्थान में उसका पर्याय रखने से श्लेष्टता नहीं रहती परन्तु अर्थ स्थान में एक शब्द का एक ही अर्थ दो पक्षों में घटित होता है उसका पर्याय रखने पर भी श्लेष ज्यों का त्यों बना रहता है। (207)

जैसे

रत्नाकर कभी ज्वार के समय
बढ़ता-बढ़ता है कभी घटता था
कभी घटता व कभी बढ़ता था
उसी प्रकार यह रत्नाकर भी था
जिस प्रकार रत्न खानों के दाम
घटते और बढ़ते रहते हैं वैसे ही
सिंधु जल ज्वारभाटा के रूप में
घटता एवं बढ़ता भी जाता था।

यहाँ दो अर्थ नहीं किन्तु दो वस्तु में तुलना की गई है।

इसी प्रकार वहाँ भाग्य के समान
बिजली भी क्षणिक ही चमकी थी

अर्थालंकार के मुख्य भेद-

1. विरोध मूलक 2. अन्य संसर्ग मूलक

---

00. का.प्र./पृ.
00. काव्य आर्दश
00. अंल चि.
00. का.प्र./पृ.

उनके भी उत्तरोत्तर भेद होते हैं

अर्थालंकार

विरोध मूलक	अन्य संसर्ग मूलक
1. गुण विरोध मूलका.	अन्योन्य
2. द्रव्य विरोध मूलका.	सार
3. क्रिया विरोध मूलका.	यथा संख्य या क्रम
4. जाति विरोध मूलका.	पर्याय
अथवा	प्रत्यनीक आदि
विषम, असङ्गति, विशेषोक्ति और विभावना	(209 से 220)

विरोध मूलक अर्थालंकार

जब किसी दो विरोधी जाति, द्रव्य, गुण और क्रिया के द्वारा उनके संयोग से परस्पर विरोध कम होता है तब विरोधालंकार होता है।

जहाँ जल से भरा
विशाल तालाब था
वहाँ भी अनुराग की
आग सुलग रही थी
कामी जन जल रहे थे।

यहाँ आग और जल तलाब ये दो परस्पर विरोधी गुण हैं। अथवा वह नदी गिरकर भी झरने में मानों उछाल भर रही थी यहाँ गिरना और उछलना विरोधी ही शब्द हैं। (209)

महाकवि भूषण ने विरोध तथा विरोधाभास को अलग-अलग माना है। विरोध जगत प्रसिद्ध है 1. गुण विरोध

जैसे **नदी की आँख नहीं थी**
फिर भी वह देख रही थी

जाति विरोध- नदी ने ही दूसरी नदी को
अपने आप में विलीन कर
उसके अस्तित्व को पूर्णत:
समाप्त ही कर दिया था।

क्रिया विरोध- जल बिन्दु भले ही
नदी तालाब अथवा
समुद्र की हो परन्तु
उसकी सफलता तो
प्राणी के हित में ही
पूर्णत: छिपी हुई थी।

द्रव्य विरोध- नदी के गोल-गोल पत्थर
नदी की ही शोभा नहीं पर
मकानों में लगे वे पत्थर
तथा बच्चे के खेलने हेतु
खिलौने के रूप में भी वे
अत्यंत शोभा बढ़ा रहे थे।

इसीप्रकार विषम, असङ्गति तथा विशेषोक्ति की भावना समझनी चाहिए।

(215)

अन्योन्य संसर्गालंकार- जहाँ दो पदार्थों का परस्पर संबंध बताया जाता है वहाँ अन्योन्यालंकार होता है।

जैसे कि जल बिन्दु महाकाव्य ख. 4/ अ.43 चेतावनी /क. 18 में कहा है।

नदी से जल की व जल से नदी की
शोभा हो रही थी तो कहीं कहीं पर
नदी से तटवर्ती वृक्षों की व तटीय
वृक्षों से नदी की शोभा हो रही थी।

---

00. का.प्र./पृ. 221

सारालंकार- जब कहीं पूर्वोक्त वस्तुओं के बढ़ने या घटने को वर्णित किया जाता है तब सारालंकार होता है।

जैसे कि जल बिन्दु महाकाव्य ख. 1/ अ.8 महिमा /क .39 में कहा है।

मिश्री से भी अधिक मिष्ट
जल बिन्दु की कवितों
अमृत समान मनोहारी हैं
वे लोहवत् भारी नहीं पर
अर्कतूल वत् हल्की भी हैं
और वे सरल सुपाच्य तथा
मन हल्का करने वाली हैं

इसी प्रकार यथा संख्य (कम) तथा पर्यायालंकार के समक्ष चाहिए[00]।

तदगुण अलंकार- जहाँ कोई वस्तु अपना गुण त्याग कर अपने पास की किसी अन्य वस्तु का गुण ग्रहण कर लेती है वहाँ तद्गुण अलंकार होता है।

जैसे कि जल बिन्दु महाकाव्य में कहा है।

यथा-1.जलबिन्दु स्वाति नदी में जब
सीप में गिरती तो मोती बनती
सर्प मुख में जाती तो विष और
कदली वृक्ष में जा कपूर तथा
नीम में जाकर कड़वी होती
ईख में जा मीठी हो जाती है।
ख.4/अ.39 संगति /क.3

2. जो जल कभी
ईख में जाकर
मीठा हो जाता

00. का.प्र./पृ. 221

कभी नीम में जा
कड़वा हो जाता
अम्लकेशर में जा
आम्ल हो जाता है
आंवले में जाकर
कसायला होता है
और मिर्ची में जा
चरपरा हो जाता है
संगति का सभी में
ऐसा प्रभाव होता है
जैसी संगति होगी
वैसा प्रभाव पड़ेगा
वैसे ही हो जाओगे।

पूर्वरुपालंकार- जब कोई वस्तु किसी दूसरे के संसर्ग में आकर अपना गुण छोड़ तो दे परन्तु किसी तीसरे के सम्बंध आने पर या अन्य किसी प्रकार अपना पहले का रूप प्राप्त कर ले तब पूर्व रूपालंकार होता है।

जैसे कि जल बिन्दु महाकाव्य ख. 5/ अ.49 ओस /क. 3 में कहा है।

यथा- ओस जब रात्रि में बरसी
बूँद-बूँद घास पर गिरी
प्रातः सूर्योदय के समय
वह मोती सी दिखी थी
परन्तु हाथ लगते ही वह
जलबिन्दु भी नहीं रही।

गुण अलंकार- जब एक वस्तु दूसरी वस्तु का गुण ग्रहण कर लेती है, तब गुण अलंकार होता है।

जैसे कि जल बिन्दु महाकाव्य ख. 4/ अ.43 चेतावनी/क. 19 में कहा है। यथा-

जब तक नदी बह रही थी
तब तक ही वह नदी थी
वह जब सागर से मिली
तब फिर नदी नही
किन्तु वह अपार अथाह
विशाल वह सागर ही हो गई।

अतद्गुण- तद्गुण से विपरीत जब कोई पदार्थ अन्य समीपवर्ती पदार्थ के गुण ग्रहण नहीं करता, ज्यों का त्यों अप्रभावित बना रहता है तब अतद्गुण होता है।

क्षीर सागर का श्वेत जल
कालोदधि में मिलकर भी
यथावत् क्षीरवत् ही रहता है
कालोदधि जल के समान वह
कभी काला नहीं हो जाता है।

इसी प्रकार मीलित, उन्मीलित, मुद्रा, परिसंख्या अलंकारों को जानना चाहिए। 231

उभयालंकार- जहाँ एक ही स्थल पर दो या दो से अधिक अलंकारों का वर्णन होता है वहाँ उभयालंकार होता है।

इसके दो भेद हैं- 1- संसृष्टि 2. सङ्कर 232

संसृष्टि- जब एक से अधिक शब्द या अर्थ संबंधी अलंकार किसी उक्ति में इस प्रकार मिले रहते है जिस प्रकार तिल और चावल अर्थात् जो एक दूसरे के आश्रय बिना स्वतंत्र रूप में अलग-अलग सरलता से पहचाने जा सकते हैं तब संसृष्टि अलंकार होता है। इसके भी तीन भेद होते हैं।

जहाँ तिल तण्डुल न्याय से रूपकादि अलंकारों की श्लिष्ट प्रतीत होती है वहाँ संसृष्टि अलंकार होता है इसके तीन भेद हैं- 1. शब्द 2. अर्थ 3. शब्दार्थ (अ.चि. 4/333)

1.शब्दालङ्कार संसृष्टि- जिसमें कई शब्दालंकारों का मेल होता है।
2. अर्थालङ्कार संसृष्टि- जिसमें कई अर्थालंकारों का मेल होता है।
3. शब्दार्थालङ्कार संसृष्टि- जिसमें शब्द एवं अर्थ दोनों प्रकार के अलङ्कार मिले होते हैं

1. जल बिंदु कहाँ नहीं थी
वह सर सरिताओं में थी
कूप बावड़ी सागर में थी
फिर भी वह जल बिन्दु
प्यासे को अमृत बिन्दु थी
(इसमें दो शब्दों की संसृष्टि है)

2. अहिसम बही जा रही थी
फिर भी वह अही नहीं थी
इसमें उपमा उत्प्रेक्षा दो अलंकारों की संसृष्टि है

3. जल ज्वलन की
जलन मिटाती है
पर वह किसी की
आपस की जलन
नहीं मिटा पाती है

इसमें अनुप्रास शब्दालंकार और व्यतिरेक अर्थालंकारों की संसृष्टि है।

संङ्कर अलंकार- जब दो या दो से अधिक अलंकार एक दूसरे से ऐसे मिले हों कि उनकी पृथकता ना जान पड़ती हो तब संङ्कर अलंकार होता है इसके तीन भेद हैं- 1. अङ्गाङ्गीभाव संङ्कर 2. संदेह संङ्कर 3. एक वाचकानुप्रवेश संङ्कर

जहाँ रूपकादि पूर्व कथित अलंकार दूध और पानी के समान परस्पर एक दूसरे से मिले हुए वर्णित हों वहाँ संकर अलंकार होता है।

इसके तीन भेद होते हैं- (अ.चि. 4/337)

सजातीय विजातीय अंगागिभाव 2. एक शब्द प्रवेश 3. संदेह

(अ.चि. 4/337)

1. अङ्गाङ्गभाव संकर अलंकार- एक अलंकार की सिद्धि जब दूसरे पर अवलम्बित होती है तब अङ्गाङ्गभाव अलंकार होता है अर्थात् दो अलंकारों में एक अंङ्ग तथा दूसरा अङ्गीभाव से होता है। 234

जैसे कि जल बिन्दु महाकाव्य ख.5 अ.51 सरोवर क.8 में कहा है-

झरना का पक्षदह
सर नहीं सरोज था
सर का ओज था
पर वह बेहोश नहीं
पूर्णता होश में था
शिलिमुख तीर्थ पर
शिलिमुख नहीं थे

2. संदेह संकर अलंकार- जहाँ एक ही स्थल पर एक से अधिक अलंकारों के होने का संदेह होता है वहाँ संदेहसंकर अलंकार होता है।

जैसे कि जल बिन्दु महाकाव्य ख.5 अ.51 सरोवर में क.9 कहा है।

ज्योत्सना चन्द्रमा की
तथा फूलते पुष्पों से
इन सबकी परछाईयों से
महा पद्म सरोवर की
शोभा बढ़ा रही थी
हर्ष से भरी वह
सभी को हर्षा रही थी।

यहाँ ज्योत्सना शब्द से वह केवल किसी एक में किसकी शोभा बढ़ा रही थी ध्वनित नहीं होता है।

3. एक वाचकानुप्रवेश संङ्कर अलंकार होता है
अर्थात् एक ही पद में शब्दालंकार और अर्थालंङ्कार
1. शिलिमुख- भ्रमर
2. शिलिमुख- वाण
3. ज्योत्सना- किरण
या दो शब्दालंकार अथवा दो अर्थालंकार होने से एक वाचकानुप्रवेश संङ्कर अलंकार होता है

जैसे कि जल बिन्दु महा. ख.1/ अ.1/क.30 जिन-मंगलाचरण में कहा है।

जलबिन्दु मतङ्ग ने
प्रभुपद/गुरुपद में
सरस सुवास युक्त
गुण पराग लेने हेतु
गुणानुरागी होकर
हृदय से नमन किया।

इस एक वाक्यांश में वृत्यानुप्रास और पारंपरित रूपक अर्थालंकार है। अत: एक वाचकानुप्रवेश संकर है तथा दूसरे चरण में वृत्यनुप्रास भी है अत: पूरी कविता में संसृष्टि भी है।

पूर्वोक्त संसृष्टि में एक से अधिक अलंकार आते हैं वे अलग-अलग पदों में होते हैं किन्तु एकवाचकानुप्रवेश संकर में वे एक ही पद में होते हैं यही दोनों पदों में अन्तर है। (235)

देवता, भद्र या मंगल प्रतिपादक शब्द कवियों द्वारा निंद्य नहीं माने गये हैं। अर्थात् अशुभ वर्ण या गण भी देवता, भद्र और मंगल वाचक होने से त्याज्य नहीं हैं। (अलं. चि. 1/95)

इसप्रकार जन-जन के मन को अनुरंजित करने वाले नवरस एवं अनेकों अलंकारों से ओतप्रोत विभिन्न सामाजिक राजनैतिक, धार्मिक एवं नैतिक शिक्षाओं से भरे जल रक्षा, पर्यावरण, तन, वन रक्षा, वृक्ष रक्षा के साथ

हम अपने जीवन को कैसे जियें, आपसी सौहार्द्र को कैसे बनायें, श्रावक और श्रमण धर्म को कैसे पालन करें इत्यादि शिक्षाओं से भरा हुआ यह जलबिन्दु महाकाव्य 6 खण्डों के 53 अध्यायों में 1300 कविताओं से सम्पन्न है।

इसे लिखने की स्वतंत्र विद्या है क्योंकि इसके लिख जाने के बाद ही अन्य महाकाव्य का अध्ययन और मिलान किया गया है। क्योंकि इसके लिखने के पूर्व अनेकों विद्वानों का सुझाव था कि जब कोई किसी महाकाव्य का पठन करता है तब फिर उसी का अनुसरण करता, फिर उसकी स्वतंत्र विद्या नहीं रह जाती। और लेखन के बाद पठन करता है तो लेखन की सही दिशा का परिज्ञान हो जाता है कि हमारा लेखन सही हुआ है। फिर भी गलतियाँ होना सम्भव है उसे विद्वत गण अवश्य ही परिमार्जित कर हमें अवबोधित करें ताकि अगले संस्करणों में संशोधन किया जा सके इत्यलं विस्तरेण..

उद्दीपन विभाव- जिन भावों से रस उद्दीप्त अर्थात् आस्वादन के योग्य होता है। उसे उद्दीप्त भाव कहते हैं। जैसे- श्रृंगार आदि रसों में उद्यान, चन्द्रिका, सरोवर एकान्त स्थान आदि उद्दीपन होते है। अर्थात् रस के निमित्त कारणों को उद्दीपन भाव कहते है। (अ.चि. 5/8)

उद्दीपन भाव की स्थिति

आलम्बन- नायक, नायिका में स्थित गुण अलंकार, चेष्टा तथा तटस्था ये चार उद्दीपन भाव की स्थिति है।

आलम्बन के गुण- सुन्दर शरीर, युवा अवस्था, शारीरिक विभिन्न सुन्दर चेष्टाएँ, रूप, लावण्य, आदि आलम्बन के गुण हैं

जैसे कि जल बिन्दु महाकाव्य में कहा है-

मोती चमक की भांति
किरणें बिखेरती हुई

जल बिन्दु दर्शकों के
नेत्रों को हरण करके
अनिमेष कर रही थी।

(अ.चि. 5/10)

सञ्चारी या सांखिक भाव के आठ भेद-

1. रोमाञ्च 2. वैस्वर्य 3. स्वेद
4. स्तम्भ (जड़ता) 5. लय 6. अश्रु
7.कम्प 8. वैवर्ण्य

इन सभी के स्वरूप को सोदाहरण अलंकार चिंतामणी ग्रन्थ के पांचवें अध्याय के श्लोक 18 से 25 में समझाया गया है।

संचारी भाव- जिस प्रकार समुद्र में आने को लहरें उत्पन्न होती और नष्ट हो जाती हैं उसी प्रकार आत्मा में अनेक तरह से भाव संचरण करते है उसे ही संचारी या सात्विक भाव कहते है।

(अ.चि. 5/26)

इस प्रकार महाकाव्य में रस और अलंकारों का इतना विस्तृत वर्णन जैनाचार्यो तथा अन्य विद्वानों ने किया है जिसका साङ्गोपाङ्ग प्रयोजन भूत होने से संक्षेप से ही मैंने यहाँ कथन किया है, विस्तृत जानने के लिए जिज्ञासु गण उन ग्रन्थों को पढ़ें।

जल बिन्दु महाकाव्य में आये सभी रस और अनेकों अलंकारों का वर्णन है। प्रस्तावना में केवल उदाहरण ही दिये गये हैं। प्रस्तावना लिखने से हम इस निष्कर्ष तक पहुँचते हैं कि जल बिन्दु महाकाव्य केवल कविताओं से भरा संग्रह या पिटारा ही नहीं है किन्तु काव्य महाकाव्य के नियमों की अग्नि परीक्षा में कसा गया एक निखरित महाकाव्य है। जिसमें जल

बिन्दु तो केवल उपलक्षण है। किन्तु यह मानवोचित आवश्यक विभिन्न शिक्षाओं से भरा हुआ एक महाकाव्य है जो कर्ण प्रिय भी है और शिक्षा प्रिय भी है। यूँ कहें यह मानव से महामानव बनाने का अमोघ ग्रन्थ या शास्त्र भी है। पाठक गण यदि किंचित् भी इससे लाभ ले सके तो मैं अपना श्रम सार्थक समझूँगा।

ॐ नमः

14/1/4/2547

श्री ऋषभ निर्वाण दिवस, भिण्ड (म.प्र.)

मंगलाचरण खण्ड-01

			कविता	
अध्याय	1	जिन-मंगलाचरण	30	88
अध्याय	2	जिनवाणी वन्दना	30	108
अध्याय	3	गुरू वन्दना	30	128
अध्याय	4	मंगलाचरण उद्देश्य	34	148
अध्याय	5	लघुता और प्रभुता	23	172
अध्याय	6	वक्ता की प्रमाणिकता	18	188
अध्याय	7	प्रतिज्ञा	35	202
अध्याय	8	महिमा	40	224
अध्याय	9	जलन	28	251
अध्याय	9	कुल कविता 268-/कुल पेज 185-/		

जीवन खण्ड-02

अध्याय	10	बादल	40	273
अध्याय	11	विवाह	34	299
अध्याय	12	गर्भ	33	325
अध्याय	13	माँ	19	347
अध्याय	14	जन्म	37	362
अध्याय	15	शिष्टाचार	17	387
अध्याय	16	प्रभु दर्शन	18	400
अध्याय	17	भगवान मूर्ति	30	411
अध्याय	18	मैं सिंधु बनूँगी	14	433
अध्याय	19	कलश	16	442
अध्याय	20	प्यास	23	453
अध्याय	21	राह की कठनाईयाँ	31	468
अध्याय	12	कुल कविता 312-/ कुल पेज219-/		

परिवार खण्ड-03

			कविता	पेज
अध्याय	22	शाब्दीक सत्य	23	494
अध्याय	23	परिचय	15	509
अध्याय	24	नाम और अध्यात्म	22	519
अध्याय	25	मूल में भूल	19	532
अध्याय	26	नाम और काम	26	548
अध्याय	27	नाम का कर्ज	09	566
अध्याय	28	मेरे पिता वाष्प	18	573
अध्याय	29	मेरी माँ-जलोधर	29	585
अध्याय	30	अनेकान्त	14	607
अध्याय	31	स्याद्वाद-दृष्टि	24	617
अध्याय	32	ऐसी थी जल बिन्दु	12	631
अध्याय 11		कुल कविता	211-/	कुल पेज148-/

कर्तव्य खण्ड-04

			कविता	पेज
अध्याय	33	जल	18	642
अध्याय	34	जल ही जीवन	11	660
अध्याय	35	जल सुरक्षा	15	668
अध्याय	36	जल जीव रक्षा	22	679
अध्याय	37	जल सिद्धांत	27	687
अध्याय	38	वर्षा	40	703
अध्याय	39	संगति	17	733
अध्याय	40	संगठन	31	746
अध्याय	41	नाली,नाला	12	766
अध्याय	42	नदी	26	775
अध्याय	43	चेतावनी	26	789
अध्याय	44	संगम	16	806
अध्याय	45	दान	34	819
अध्याय13-/		कुल कविता	295-/	कुल पेज200-/

प्रगति खण्ड-05

			कविता	पेज
अध्याय	46	समर्पण	29	843
अध्याय	47	प्रतीक्षा	16	863
अध्याय	48	जल बिंदु सुत	44	878
अध्याय	49	ओस	27	910
अध्याय	50	बर्फ	17	930
अध्याय	51	सरोवर	20	946
अध्याय	52	लहरे	30	965
अध्याय	53	स्वच्छता	18	987
अध्याय	54	रत्नाकर	12	997
अध्याय	55	भंवर	17	1009
अध्याय	56	अपनी अपनी सोच	19	1021
अध्याय	57	मेरी भावना	05	1032
अध्याय12-/कुल			कविता254-/कुल	पेज197-/

जल बिन्दु-महाकाव्य

-प.पू.गणाचार्य विराग सागर जी

मंगलाचरण खण्ड-01

अध्याय 09

कुल कविता 268

कुल पेज 185

खण्ड -1

अध्याय 1:- जिन-मंगलाचरण

अनुक्रमणिका

01 आराधना
02 नमस्कार
03 सिरस: नमस्कार
04 कार नहीं-नमस्कार
05 नाम अनेक
06 पूज्य-अरहन्त
07 अरिहंत देव
08 वीतरागी
09 जिन
10 खलनायक
11 स्वेद रहित अस्वेद
12 जिनवर
13 जिनेन्द्र
14 भक्ति-फल
15 भक्ति के पल
16 श्रद्धा-भक्ति
17 सार्थक-श्रद्धा
18 श्रद्धा-नेत्र
19 निश्चय मंगलाचरण
20 भक्ति सफलता लाती
21 पुण्य-लाभ
22 संस्तुतियाँ गुणों की
23 आत्मिक गुणानुराग
24 मंगल आचरण-मंगलाचरण
25 विशुद्धि-जगाता
26 पुण्य फलों के लिए नहीं
27 सफल होता
28 भक्ति सदा खरी होती है
29 मंगल ऋषि परम्परा
30 पथ पर गमन
अध्यायान्त-मंगलाचरण

गणाचार्य विराग सागर जी विरचित-

जल बिन्दु महाकाव्य

खण्ड -1

अध्याय 1 जिन मंगलाचरण

आराधना -01

परित: अर्थभरी
श्री जिन-जिन की
भक्ति आराधना थी,
मंगलमय प्रार्थना थी,
शब्दातीत साधना थी,
भाव भरी भावना और
पुकार पर पुकार थी।

नमस्कार -02

हे जिनेन्द्र ! आपने
साम्राज्य अवस्था में
अन्याय, अत्याचार,
अनीति, अतिक्रमण,

आक्रमण करने वाले
अरि/शत्रुओं को जीता
व जब योग साधना में
निजात्मा में प्रविष्ट हुए

तब काम, क्रोध, मान,
माया, लोभ जैसे बड़े-बड़े
अरि/शत्रुओं को जीता
अत: आप जिन, जिनेन्द्र

और जिनवर हैं इसलिए
मैं ग्रन्थ के शुभारम्भ में
निर्ग्रन्थ भाव भक्ति से युक्त
सविनय नमस्कार करता हूँ।

सिरसः नमस्कार -03

बाहर के बड़े से बड़े
अरि / शत्रुओं से भी
बढ़कर शत्रु आत्मा के
काम,क्रोध,मान आदि
विकारी भाव हैं,कर्म हैं
उनके हन्त/नाश करने से
जगत् पूज्य आप अरिहन्त हैं
अत: मैं आपको सिरस:
सदा नमस्कार करता हूँ।

♦♦♦

कार नहीं-नमस्कार -04

कार तो बेकार हो सकती है,
आप भी बेकार हो सकते हैं
यह भी सब सम्भव है परन्तु
नमस्कार, बेकार नहीं किन्तु
सबका ही उपकार करता है
और संसार से उद्धार करता है
क्योंकि यह सम्पूर्ण विश्व का
सर्व श्रेष्ठ एक महामंत्र होता है।

♦♦♦

नाम अनेक -05

आराध्य देव सदा
राग-द्वेष से रहित व
मोह से विरहित वे
पूर्ण वीतरागी होते हैं

लोक व अलोक में
होने वाले सभी ही
पदार्थों के वे युगपत्
ज्ञाता सर्वज्ञ होते हैं

वे सभी के लिए ही
सच्चे हितोपदेशक
हितोपदेशी होते हैं
उनके श्रेष्ठ वे नाम

न हजार, न एक पर
असंख्य नाम होते हैं
कोई उन्हें ऋषभ देव
कोई महावीर स्वामी

कोई राम व हनुमान
ब्रह्मा, विष्णु, महेश
कोई पैगम्बर, नानक
कोई ईश्वर कहते हैं।

पूज्य-अरहन्त -06

अर्ह धातु पूजा अर्थ में
संस्कृत में मानी गई है

अत: अर्ह धातु पूजा का
अर्थ रखती पूज्य बनाती

स्वर्ग के सभी देवों द्वारा,
मनुष्यों में चक्रवर्तियों द्वारा,

राजाओं तथा मंत्रियों द्वारा,
सेनापतियों व श्रीमन्तों द्वारा,

मनुष्यों व पशुपतियों द्वारा,
सभी सौ-सौ इन्द्रों के द्वारा,

पूजा योग्य बनाती इसलिए
सभी अर्हन्तों में पूज्यता ला

पुजारियों को भी पूज्य बनाती।

अरिहंत देव -07

अरि यानि शत्रु जो बाहरी नहीं, किन्तु
अन्तरंग के काम, क्रोध,मान आदि
शत्रुओं को नष्ट कर विजय पाने वाले
अरहंत ही अरिहंत देव कहलाते हैं।

वीतरागी -08

हे देवाधिदेव !
आपने मोह कर्म
क्षय किया है, अतः
आप वीतमोही हैं।

द्वेष रहित होने से,
आप वीतद्वेषी हैं।
राग रहित होने से,
आप "वीतरागी" हैं!

♦♦♦

जिन -09

जगत पूज्य हे जिन!
आपने ही तो अपने
अंदर व बाहर के
काम, क्रोध, लोभ
आदि विकारों को
सदा-सदा के लिए
जीता है, इसलिये ही
आप "जिन" कहलाते हैं।

♦♦♦

खलनायक - 10

मंगलाचरण
करते करते
खलनायक
आ ही गई
स्वेद की बूँद
बिना बुलाये
आ तो गई
पर जैसे आई
वैसे ही पुछ गई
उसकी पूंछ न हूई
बिना बुलाये
आने का , सभी का
ऐसा ही हाल होता है ।

स्वेद रहित अस्वेद - 11

हे जिन ! धन्य हैं आप
आपने खलों को
किंचित् भी प्राश्रय नहीं दिया
इसीलिये आप जन्म से ही
अखिल होकर भी
अखल हैं
स्वेद रहित अस्वेद हैं
क्योंकि स्वेद तो
अठारह दोषों में
एक दोष है
आप उससे रहित
निर्दोष हैं
अत: आप वीतरागी हैं।

जिनवर -12

हे जिनवर! प्रभु !!
विकारों के विजय
पथ पर चलने वालों
को ही, जिन कहते हैं!
परन्तु आप उनमें भी
उत्कृष्ट व सर्वश्रेष्ठ हैं,
निजात्मा के विजेता हैं
इसलिये "जिनवर" हैं।

💧💧💧

जिनेन्द्र -13

जिन-पथानुगामी
मुनिराजों को भी
सम्पूर्ण जगत में
जिन कहा जाता है,
पर उन में प्रधान
इन्द्र होने से आप
"जिनेन्द्र" कहलाते हैं।

💧💧💧

भक्ति-फल -14

अविरल श्रद्धा
भक्ति के पल

फल के स्वरूप
निर्मित होकर

फिर फल को भी
अविचल-अचल

सफल कर देते हैं।

♦♦♦

भक्ति के पल -15

तुम मात्र फल ही फल
को मत खाते रहो, किन्तु
भक्ति-पलों में भक्ति के
फल खाना भी सीखो तो

नियम से सफलता तुम्हारे
सदैव पीछे-पीछे ही दौड़ेगी।

♦♦♦

श्रद्धा-भक्ति -16

सच्ची यानि निश्छल,
सच्ची यानि निश्चल,
सच्ची यानि निरालस,
निष्प्रमाद तन से, मन से,
वचन से की गई श्रद्धा,
की गई भक्ति अथवा
की गई स्तुति इसमें भी
इतनी ताकत होती है
कि वह समस्त विघ्न
बाधाओं को खोती है
तथा कार्य को संजोती
सफलता पा-पाकर के
हमेशा आनंदित होती है
स्व- पर को आनंद देती
और देती ही देती रहती है।

♦♦♦

सार्थक-श्रद्धा -17

श्रद्धा हो, पर कभी
अन्ध श्रद्धा न हो,
तब ही तुम्हारी
वो श्रद्धा सार्थक है।

♦♦♦

श्रद्धा-नेत्र -18

श्रद्धा यह एक ऐसा नेत्र है जिससे
लोक या लौकिक पदार्थ नहीं, पर
अलौकिक परमात्मा भी दिखता है।
श्रद्धालु उन्हें श्रद्धा से अपने नयन के
पथगामी बना उनका पथानुगामी बनता
और फिर जग नामी बन जाता है।

♦♦♦

निश्चय मंगलाचरण -19

शुभोपयोगियों का
मात्र शुभोपयोग ही
प्रभु, गुरु गुण भक्ति
शुभ मंगलाचरण है।

शुद्धोपयोगियों का
शुद्धोपयोगमय ही
निर्विकल्प समाधि
निश्चय मंगलाचरण है।

♦♦♦

भक्ति सफलता लाती -20

प्रभु के प्रति,
गुरु के प्रति
सच्ची श्रद्धा,
सच्चा विश्वास
सच्ची भक्ति
जब जगती है,
जगाई जाती है
तब मानो उसके
प्रारंभ किये गये
उत्तम कार्यों में
निर्विघ्नता आती
और उसे पूर्णत:
सफल बनाती है।

♦♦♦

पुण्य-लाभ -21

मंगलाचरण में इष्ट देव,
गुरु व धर्म की श्रद्धा में,
भक्ति में जब मन होता है,
वचन एवं तन होता है तभी
वह पवित्र शुभयोग होता है।
शुभयोग ही पुण्य लाता और
बिगड़े से बिगड़े को सुधारता,
और सुधरने लायक बनाता
तदनुकूल सामग्री भी जुटाता,
सफलता पा सफलता दिलाता।

♦♦♦

संस्तुतियाँ गुणों की -22

स्तुतियाँ महापुरुषों के
गुणों का गुणानुवाद है
गुण तो सभी में होते हैं
पशु-पक्षियों में अथवा
कंकर-पत्थर, पर्वतों में,
दृश्य या अदृश्य सभी
पदार्थों में, भी पाये जाते हैं
सम्पूर्ण विश्व में एक भी
पदार्थ ऐसा नहीं जिसमें
सामान्य-विशेष गुण न हों
पर स्तुति सभी की नहीं,
वह तो मात्र पारमार्थिक
गुणों की ही की जाती है
जो परमार्थ के साधक हैं
और स्वार्थभाव से परे हैं
वे परमार्थ से भरे होते हैं
इसलिये वे पूजा के योग्य
और सभी में पूज्य होते हैं।

आत्मिक गुणानुराग -23

स्तुति गुणों की होती है
वही आत्मिक होती है

जो गुणों के अनुराग से
निस्वार्थत: रंगी होती है

जिन्हें पाकर के आत्मा
परमात्मा भी बन जाती है

उन पारमार्थिक गुणों का
सुस्मरण कर जलबिंदु ने

भाव मंगलाचरण किया
और द्रव्य से भी उनका

मंगल आचरण किया।

♦♦♦

मंगल आचरण-मंगलाचरण -24

मंगल आचरण बिना,
मंगलाचरण भी कहाँ?

मंगलाचरण के बिना,
कार्य प्रारंभ भी कहाँ?

यही आर्य पुरुषों की
महापुरुषों की उत्तम

अर्वाचीन परम्परा है,
प्राचीन आर्ष परंपरा है।

♦♦♦

विशुद्धि-जगाता -25

मंगलाचरण इष्ट के प्रति श्रद्धा,
समर्पण का सही परिचय देता।
आत्म विशुद्धि को भी जगाता,
पुण्य बढ़ाता व पाप घटाता है।

पुण्य फलों के लिए नहीं -26

पुण्य मात्र या पुण्य फलों के लिए
मंगलाचरण नहीं किया जाता, किन्तु
मंगलाचरण से पाप घटता, पुण्य बढ़ता
बिना मांगे, बिना चाहे बढ़ता ही बढ़ता
इसीलिए प्रत्येक कार्य के प्रारम्भ में
सदा शुभ मंगलाचरण किया जाता।

सफल होता -27

पाप विघ्नों को ही लाता,
पुण्य विघ्नों को नशाता,
प्रारम्भ किये ही कर्म को
पूर्ण और सफल बनाता,
सफल होता इसलिए सदा
मंगलाचरण किया जाता।

भक्ति सदा खरी होती है -28

मंगलाचरण एक बार ही नहीं, किन्तु
अनेकों बार भी किया जा सकता है,
भक्ति का परिचय दिया जा सकता है,
शब्द-शब्द व भावों से जो भरी होती है
इसलिए वह भक्ति सदा खरी होती है।

♦♦♦

मंगल ऋषि परम्परा -29

प्रारम्भ, मध्य, अवसान में किये गये
अपने आराध्य के ध्यान/गुणगान से
कार्य की शुरूआत मंगल निर्विघ्नता
और अन्त में उसे सफलता दिलाती है,
मीठे-मीठे रसीले सुगन्धित फल देती है
वनस्पतिक नहीं धार्मिक फल देती है
यह स्व-पर का उद्धार कराने वाली
ऋषि परम्परा प्राचीन आर्ष परम्परा है।

♦♦♦

पथ पर गमन -30

जलबिन्दु मतङ्ग ने
प्रभुपद/गुरुपद में
सरस, सुवास युक्त
गुण पराग लेने हेतु
गुणानुरागी होकर
हृदय से नमन किया,
चरण स्पर्श किया
और फिर उनके
पथ पर गमन किया।

अध्यायान्त-मंगलाचरण

तू देव देवाधिपति है मही का,
तू है विधाता सदा से जमीं का।
सर्वज्ञ तू है तू ही वीतरागी,
हितोपदेशी सदा सौख्यकारी।।1।।

तू दीप है मैं ज्योति हूँ तेरी ,
तू सिंधु है जल-बिन्दु मैं तेरी।
तू नाथ मेरा मैं भक्त तेरा,
सदा भक्ति करता रहूँ नाथ तेरी।।2।।

तू मंगलों में मंगल है सदा से,
अमंगल विनाशीक मंगल जहाँ पे।
प्रारम्भ जल बिन्दु तेरे ही नाम से,
प्रारम्भ सदा हो ऋषभ देव तुमसे।।3।।

हे वीतरागी जिन देव प्यारे,
तुम हो जगत में हमको सहारे।
तेरी कृपा बिन मझधार नैय्या,
तेरी कृपा से भव पार होता।।4।।

(प्रथम खण्ड में- पहला अध्याय समाप्त)

अध्याय 2:-जिनवाणी वन्दना

अनुक्रमणिका

01 जिनवाणी भगवत् वाणी
02 हे माँ! सरस्वती
03 शब्द नहीं, अक्षर दिखते
04 अक्षर लिखे जाते हैं
05 दिव्य शक्ति रूपा
06 सरस्वती के हाथ में
07 सरस्वती प्रसन्न
08 केवली बना देती
09 मस्तिष्क झोली
10 भक्ति की परिभाषा
11 मंगलमय शुभारम्भ
12 जिन सरस्वती
13 आभूषणों की सुन्दरता
14 सभी मचलते हैं
15 सुन्दर प्रबंधन
16 श्रुत देवी
17 अखण्ड श्रुत परम्परा
18 वह ही आगम
19 पुण्य हीन हूँ
20 पुण्य वान होता तो
21 जिनवाणी सुनता
22 रे भाग्य
23 जिनवाणी न सुनी
24 इतना सौभाग्य कहाँ?

25 वीतरागी राम
26 कलि काल में जन्म
27 दोष कर्म का नहीं
28 दोष स्वीकार करूँगा
29 स्वेद न होता
30 मुझे जिनवाणी मिली
अध्यायान्त मंगलाचरण

जिनवाणी भगवत् वाणी -01

जिनोपदिष्ट श्रुत ही आगम है,
आगम ही जिनवाणी है और
जिनवाणी ही सरस्वती है व
सरस्वती ही भगवत् वाणी है।

♦♦♦

हे माँ! सरस्वती -02

हे माँ! सरस्वती तू ही मेरी
सच्ची माँ है संसारी माँ तो
केवल शरीर को जन्म देती
शरीर जन्मता और मरता है

इसलिए वे सभी माँ बदलती
बदल जाती पर तू हर पर्याय में
एक रहती अजर अमरता की
राह दिखाती उस पर चलाती

मृत्यु जयी शाश्वत पद दिलाती
अत: तू ही मेरी सच्ची माँ है।

♦♦♦

शब्द नहीं, अक्षर दिखते -03

हे माँ जिनवाणी!
तू शब्द स्वरूपा है
शब्द पुद्गल है अत:
उसके अन्य रूप हैं
तू रूपी होने पर भी
सामान्यत:सभी को
नहीं दिखती व जो
दिखते हैं वे केवल
शब्द नहीं, अक्षर होते हैं।

♦♦♦

अक्षर लिखे जाते हैं -04

शब्द सुने जाते हैं,
अक्षर लिखे जाते हैं
इसलिए शब्दों का
चर्म चक्षुओं से तो
दर्शन नहीं किन्तु
श्रवण ही होता है
अक्षरों का दर्शन,
पठन और सभी में
पाठन भी होता है।
अत: शब्दाक्षर मय
उभय स्वरुप ही है।

♦♦♦

दिव्य शक्ति रूपा -05

हे शारदे! तू दिव्य है
दिव्य शक्ति तुझमें है
तू शब्द, अक्षरों से भी
अवतीर्ण हो जाती है,
समावित हो जाती है
इसलिए ही जिनवाणी
शास्त्रों के रूप में सदा
सभी में पूजी जाती है।

♦♦♦

सरस्वती के हाथ में -06

हे माँ! जिनवाणी तेरी
महिमा निराली है, तू
सरस्वती होकर भी
सरस्वती के हाथों में
सदा रहती है क्योंकि
सरस्वती को केवल
तू ही हृदय से प्यारी है।
इसलिए वह उसे
अलमारी में या फिर
संदूक में बंद करके नहीं,
किन्तु हाथ में रख सकती है
सत्य तो यह कि वह आपको
मन मन्दिर में स्थापित करती है।

♦♦♦

सरस्वती प्रसन्न -07

हे माँ! तू मात्र पूजा से
प्रसन्न नहीं होती, किन्तु
पठन-पाठन, श्रवण और
धारणा से, ज्ञान दान से
सभी पर प्रसन्न होती है।

♠♠♠

केवली बना देती -08

हे माँ भारती! जब भी
तू प्रसन्न होती है तब
ज्ञान ही ज्ञान से अपने
सच्चे भक्तों की झोली
भरती एवं भरती जाती
और एक दिन उनको
केवलज्ञानी भी बना देती।

♠♠♠

मस्तिष्क झोली -09

हे माँ, मेरे पास वस्त्र की
झोली नहीं, पर मेरे पास
मन मस्तिष्क की झोली है
उसको ही तू पूर्ण भर दे।

♠♠♠

भक्ति की परिभाषा -10

यद्यपि यह बात सत्य है कि
ज्ञान न दिया जा सकता है
और न लिया जा सकता है
क्योंकि पौद्गलिक नहीं किन्तु
चेतन है, चेतना का गुण है
लेना देना भक्त की भाषा है
और भक्ति की परिभाषा है।
सत्य तो वह सबका
अपना-अपना क्षयोपशम है।

♦♦♦

मंगलमय शुभारम्भ -11

हे माँ! तुम्हारे नाम स्मरण की ही
मुझमें क्षमता है स्तुति, भक्ति में तो
मैं निश्चित ही बलहीन हूँ तो भी
आपका नाम स्मरण ही सम्बल देगा
यह मानकर मैं भक्ति भरे हृदय से
आपका शुभ नाम ले लेकर के ही
"जल बिन्दु महाकाव्य" लेखन का
मंगलमय शुभारम्भ करता हूँ।

♦♦♦

जिन सरस्वती -12

हे अम्बे! तू देह रहित है
फिर भी साहित्यकारों ने
तुझे इस प्रकार माना है, कि
तू सहज सुन्दरी, मृगनयनी है,
सौम्यवदनी दीर्घ भौंहवती है,
तू धनुषाकार ऊर्ध्वोष्ठा है,
पुष्पराज सम अधरोष्ठा है,
ललाट पर बिन्दी वाली है,
तू मस्तिष्क पर सिन्दूर, व
माथे पर केयूर धारणी है,
हेममयी मणी जड़ित मौली
जिनबिम्ब सहिता है और
युगल कर्णों में कुण्डलवती
नासिका पर नथ वाली है,
तुम्हारे गले पर हार मालायें
व भुजाओं में भुजबन्ध हैं,
कलाई पर कंगन व वलय
अंगुलियाँ मुद्रिका वाली है,
तू कटि पर कटिबन्धन से,
करधनी व पाद पायलों से,
पादांगुलियाँ नूपुरों वाली हैं,
तू वीणा कमंडल सहिता है,
जिनवाणी, हंसवाहिनी भी है तू
वास्तविक तो तू देवी नहीं
किन्तु दैव स्वरूपा है।

आभूषणों की सुन्दरता -13

हे वाणी! तू आभूषणों से सुन्दर नहीं
किन्तु तेरा अंग-अंग सुन्दर है, असली है
तेरे आभूषणों की सुन्दरता असली नहीं
वह तो पूर्ण नकली है, सत्य यही है कि
आभूषण तेरे कारण ही सुन्दर दिखते हैं।

सभी मचलते हैं -14

तेरे निर्विकारी रूप को नहीं
किन्तु स्वरूप को प्राप्त करने
किसका ही जी नहीं मचलता?
तुझे अपने-अपने मस्तिष्क में
धारण करने सभी मचलते हैं।

सुन्दर प्रबंधन -15

हे माँ! जिनवाणी तुझको
मैं सदा नमस्कार करता हूँ।
भाव भक्ति हर्ष भरी स्तुति
व नम्रकाया से वन्दना कर,
"जलबिन्दु महाकाव्य" का
सुन्दर प्रबंधन कर रहा हूँ,
लिखना प्रारम्भ करता हूँ।

श्रुत देवी -16

जो भगवान ने कही
गणधरों ने समझाई
आचार्यों ने समझी
शिष्यों को सुनाई वही
श्रुत देवी कहलाई।

♦♦♦

अखण्ड श्रुत परम्परा -17

श्रुत परम्परा अखण्ड,
अबाधित चलती रही।
कहीं श्रवण के रूप में,
कहीं लेखन के रूप में।
उसमें किसी ने, अतिरिक्त
कभी कहीं एक भी,
अक्षर जोड़ा, न छोड़ा।
जिन मुखोद्भव से जो
प्राप्त हुआ वही का वही
नदी के प्रवाहवत् आज तक
यथावत् ही चला आया
अत: आगम कहलाया।

♦♦♦

वह ही आगम -18

न जिसमें कोई भी गम है,
न किसी को देता गम है,
सभी के ही गम मिटाता,
निज स्वभाव को दर्शाता,
मुक्ति पथ पर सभी को
चलना सिखाता इसलिए
वह ही आगम कहलाता।

♠♠♠

पुण्य हीन हूँ -19

माना, पुण्य हीन हूँ
अन्यथा कोई देव
विदेह भी ले जाता
और मुझे साक्षात्
तीर्थङ्कर भगवान के
पावन दर्शन कराता।

♠♠♠

पुण्यवान होता तो -20

यदि पुण्यवान होता तो
अवश्य ही मुझे कोई देव
विदेह क्षेत्रस्थ विद्यमान
तीर्थङ्कर के पास ले जाता,

जहाँ पर बैठ मैं उनको
अपलक निहारता एवं
भाव भरी भक्ति करता,
स्तुति और स्तोत्र पढ़ता

सर्वाङ्ग शरीर से निःसृत
दिव्य ध्वनि उनकी सुनता।

♦♦♦

जिनवाणी सुनता -21

तीर्थङ्कर केवलियों,
गणधरों, वीतरागी
श्रुत केवलियों तथा
मुनिराजों की भी

स्व-पर हितकारी
पीयूष वाणी सुनता
यह सब तभी
जब मैं इतना
पुण्यवान होता।

♦♦♦

रे भाग्य -22

रे भाग्य! तू क्यों
मुझसे ही रूठा?

क्यों नहीं आता
भगवत् सानिध्य

क्यों नहीं दिलाया?
तेरा विलम्ब-अविलम्ब

दर्शन तृषा बढ़ाता और
प्रत्येक क्षण को वर्षवत्

बनाता और बनाता ही जाता।

♦♦♦

जिनवाणी न सुनी -23

अरे दुर्भाग्य! तू क्यों आया और
तुझको यहाँ पर किसने बुलाया
कि दुर्लभ मानव पर्याय पाकर भी

साक्षात् जिन दर्शन न कर पाया,
भक्ति, स्तुति, वन्दना न कर पाया
धर्म की सत्य राह दिखाने वाली,

अंगुली पकड़ कर चलाने वाली
जिनवाणी को भी न सुन पाया।

♦♦♦

इतना सौभाग्य कहाँ? -24

हमारा इतना सौभाग्य भी कहाँ? है कि
मैं साक्षात् भगवान को, अरिहंतों को,
जिनवरों को, समवशरण में विराजित
देख सकूँ और दर्शन, भक्ति, कर सकूँ।

अरिहंतो की, केवलियों की, तथा
तीर्थङ्कर भगवान महावीर की या
जिनवर राम, हनुमान भगवन्तों की
साक्षात् जिनवाणी को मैं सुन सकूँ।

♦♦♦

वीतरागी राम - 25

जल बिन्दु ने
तीर्थकर भगवान के
पदस्थ ध्यान में
वर्तमान चौबीसी के
प्रथम तीर्थकर श्री
ऋषभदेव के
आद्याक्षर र से
रा को चुना तथा
अंतिम तीर्थकर श्री
महावीर स्वामी के भी
आद्याक्षर म को चुना
और आदि अंतिम
तीर्थकर का जोड
तद्भव मोक्षगामी
वीतरागी राम को भी
नमस्कार किया
क्योंकि कोई उन्हें
राज्य अवस्था में
तो कोई उन्हें वीतरागी
मुनि या मुक्त अवस्था में
पूजते और पूजा करते हैं ।

कलि काल में जन्म -26

हा हा! धिक् धिक्!!
कितना पुण्य हीन हूँ
सत्य, पुण्य हीन ही हूँ।
अन्यथा भरत क्षेत्र में
प्रवर्त्तमान इस दु:खमा
पंचम काल में कभी
जन्म ही नहीं पाता।
पुण्य हीन ही हूँ मैं
अन्यथा इस विकराल कलि-
काल में जन्म न होता।

दोष कर्म का नहीं -27

मानता हूँ दोष कर्म का ही नहीं
दोष तो मेरा ही है, पूर्व में यदि
मैं कुछ अच्छे कार्य करता तो
स्वर्ग जाता, फिर विदेह क्षेत्र जा
साक्षात् जिनवाणी को सुनकर
फूला-फूला भी न समाता परन्तु
मैंने ऐसा कुछ किया ही नहीं तो
वैसा कुछ मैं पा भी कैसे सकता
यही विचार कर समता रखता।

दोष स्वीकार करूँगा -28

अपना दोष किसी कर्मों पर देना
दोष पर दोष है और महादोष है
मैं कभी भी इसको नहीं करूँगा
अपने दोष को स्वीकार करूँगा।

स्वेद न होता -29

खलनायक ने
जोर जोर से
शोर माचाया
और कहा कि
मैं खल क्यों हूँ ?
जल बिंदु ने कहा
अरे मूर्ख !
तू कुछ
शास्त्र पढ़ता
जिनवाणी का
आश्रय लेता
स्तुति भक्ति करता तो
ऐसा नहीं होता
ज्ञान बिन तू
स्वेद न होता
तुझे देख - देख
मुझे भी कभी
खेद न होता।

मुझे जिनवाणी मिली -30

मानता हूँ कि पुण्य हीन हूँ
पर इतना भी पुण्य हीन नहीं
कि भाग्य में कुछ भी न हो
जिन नहीं, तो कम से कम
जिनवाणी तो मिली साक्षात्
नहीं तो, परम्परा से ही सही
प्रवाह रूप से आई, बही आई
मुझे वह जिनवाणी तो मिली।

अध्यायान्त मंगलाचरण

तू ही सभी को सत्य पथ दिखाती,
तू ही सभी को चलना बताती।
अंगुली सभी को अपनी थमाती,
हे मात! तू ही चलना सिखाती।।1।।

हे मात। तेरे बिना था अंधेरा,
भूले हुए को तू भास्कर है।
तूने ही मुझ पर सम्यक् कृपा की,
तेरे बिना हे मात! मैं था अकेला।।2।।

तेरे बिना मात अंधा रहा हूँ,
तेरे बिना मात भ्रमता रहा हूँ।
तूने ही मुझ को दी दिव्य ज्योति,
तेरी कृपा से ही शिवपथ मिला है।।3।।

अज्ञान ध्वंसी तू शक्ति दे दे
केवली बनूँ तू वह युक्ति दे दे
हूँ पुत्र तेरा हे शारदे माँ
कर्मों का क्षय तू हे माता करना
माता तू मेरी भव पार करना।।4।।

(प्रथम खण्ड में- द्वितीय अध्याय समाप्त)

अध्याय 3:-गुरु वन्दना

अनुक्रमणिका

01 वे गुरु हैं
02 मंगलाचरण
03 गुरु पाये जा सकते हैं
04 धन्य हैं आप
05 उत्तीर्णता पाई
06 स्व कल्याण
07 वे दूर रह जाते
08 गण के ईश गणेश
09 आचार्य कहलाते
10 कर्म बन्धन टूटते
11 निर्विकल्प आराधना
12 परमोपकारी
13 जग हितैषी
14 जिनवाणी-गुरूवाणी
15 गुरु महिमा
16 ग्रीष्म में ही बरसता
17 गुरु बिना जीवन शुरू नहीं
18 साधुओं और पण्डितों
19 चोट और खोट
20 ऋण मुक्ति
21 मंजिल तक पहुँचाते
22 कृतज्ञता व कृतघ्नता
23 सच्चा शिष्य नहीं कहलाता
24 अहंकारी शिष्य

25 समर्पित शिष्य
26 आज्ञा में तर्क नहीं
27 समर्पित सु-शिष्य
28 आत्म लीनता
29 पौंछी जाती है
30 खल व्यथा
अध्यायान्त मंगलाचरण

वे गुरु हैं -01

गुरु गुरु होते हैं क्योंकि
वे गुरुतर रत्नत्रय की ही
साधना करते और कराते
इसलिए वे गुरु कहलाते हैं।
वे भव पार करते कराते
तारण तरण वे नौका हैं

♠♠♠

मंगलाचरण-02

गुरुवर विमल सिंधु,
जो सभी मल रहित हैं,
निर्मल और पवित्र हैं
गुरुवर सन्मति सिंधु,
जो सुमति से सहित हैं
उनका मैं स्मरण कर,
भक्ति से और विनय से
पावन तप:पूत चरणों में
शीश झुका, आशीष पाता
जिनके शीश पर गुरु का प्रभु का,
सदैव आशीष होता है।
निश्चित ही उनका सकल,
सफल सब कार्य होता है।

♠♠♠

गुरु पाये जा सकते हैं - 03

श्रद्धा की दो आँख से
समर्पित हृदय से और
भक्ति भरे भाव से ही,
गुरु देखे जा सकते हैं
समझे/पाये जा सकते हैं।

♦♦♦

धन्य हैं आप - 04

हे आचार्य! आप धन्य हैं
संसार, शरीर व भोगों से
पूर्ण उद्विग्न और रत्नत्रय
साधना में सदा निमग्न हैं।

♦♦♦

उत्तीर्णता पाई - 05

हे महागणनायक! आपने
इच्छा निरोधिनी निर्ग्रंथ
दिगम्बर दीक्षा ले स्वयं
अपने ही मन की सम्यक्
परीक्षा लेकर फिर स्वयं
परीक्षा दे उत्तीर्णता पाई
सत्य धर्म ध्वजा फहराई
आपके दर्शन पा सभी में
खुशियाँ ही खुशियाँ छाई
मैंने भी नित खुशियाँ मनाईं।

♦♦♦

स्व कल्याण - 06

आपने जो मुनि दीक्षा ली
पर कल्याण के लिए नहीं
स्व कल्याण के लिए ही
दिगम्बरी मुनि दीक्षा ली व

सौभाग्य मान-मानकर उसमें
पर कल्याण को नहीं, किन्तु
स्व कल्याण को प्रधानता दी।

💧💧💧

वे दूर रह जाते - 07

स्वयं के कल्याण के बिना
पर का कल्याण करने वाले

कभी भी न स्वयं का और
न कभी दूसरों का भी वे
कल्याण कर पाते हैं तथा
कल्याण से दूर रह जाते हैं
जब ज्ञान जगता तब फिर
नियम से पछताते हैं और

पश्चाताप के आँसू बहाते हैं।

💧💧💧

गण के ईश गणेश -08

हे गणाधिप!आप ही
गण के अधिपति हैं
इसलिए गणाधिप हैं,
गणाधिपति,गणनायक,
गणाचार्य हैं व द्वादश
गण के ईश गणेश हैं
गणों को धारण करते
अत: आप ही गणधर हैं।

♦♦♦

आचार्य कहलाते -09

हे आचार्य! आप दर्शन
ज्ञान, चारित्र, तप व वीर्य
इन पाँचों आचारों का
स्वयं पालन करके ही
पर को पालन कराते हैं
अत:आचार्य कहलाते हैं।

♦♦♦

कर्म बन्धन टूटते -10

जब आप शुद्धात्मा के
ध्यान में डूबते हैं तब
असंख्य कर्म बन्धन
छूटते और टूटते हैं।

♦♦♦

निर्विकल्प आराधना -11

स्व कल्याण ही आपका
परम ध्येय है/शुद्धात्मा ही
प्रमा और प्रमेय है तथा
उभय रत्नत्रय ही साधना है,
कर्मों की विराधना ही
जड़ मूल से विनाशना है,
निज आत्मा की सच्ची
निर्विकल्प आराधना है।

परमोपकारी -12

हे परमोपकारी! आप
मात्र उपकारी ही नहीं,
परमोपकारी भी हैं चूँकि
उपकारी तो शरीर आदि
बाह्य अर्थ के उपकारी हैं
किन्तु आप अपनी ही
आत्मा के उपकारी हैं
इसलिए परमोपकारी हैं।

जग हितैषी -13

हे सर्व जग हितैषी! आप
मोक्ष मार्ग पर चलने का
केवल उपदेश ही नहीं देते,
किन्तु स्वयं उस पर चलते

और चलना भी सिखाते हैं
प्रेरणा देते, सम्बल देते और
मोक्ष मंजिल तक पहुँचाते
अत: सर्व हितैषी कहलाते हैं।

जिनवाणी-गुरुवाणी -14

सम्प्रति अरहंत नहीं,
साक्षात् अरहंतों की

वाणी जिनवाणी नहीं है,
केवल गुरू ही हैं जो

जिनदेव की वाणी को
धारण, पालन कर सभी को

सदैव कहते हैं अत:
गुरुदेव की वाणी ही

मंगलकारी जिनवाणी है।

गुरु महिमा -15

गुरु आदि से अन्त तक,
वर्तमान से भविष्य तक,
भव से भवान्तर तक ही,
जन्म से जन्मांतर तक भी,
अवश्य आवश्यक होते हैं
नियम से वे निर्वाण तक
परमावश्यक ही होते हैं।

ग्रीष्म में ही बरसता - 16

योगियों को देख
रे स्वेद !
मुझे लगता है
तूने सपरिवार
उनके चरणों में
अपना सर्वस्व
समर्पण किया
अर्पण किया
तभी ग्रीष्म में ही
सर्वांग वर्षावत्
झड़ी लगा दी
धार पर धार बहाई
तभी तपस्या की
सही परिभाषा
समझ में आई।

♦♦♦

गुरु बिना जीवन शुरू नहीं -17

गुरु बिना जीवन शुरू
किसका हुआ? कब ?
कहाँ हुआ? कभी भी
किसी का नहीं हुआ।

♦♦♦

साधुओं और पण्डितों -18

साधुओं और पण्डितों में बस
इतना अन्तर होता है कि, ये
आत्मोद्धार के लिए जीते हैं,
वे धनी द्वार के लिए जीते हैं।

ये आचार में जीते हैं और वे
केवल शब्दोच्चार में जीते हैं।
ये चित्त लगा, वे वित्त कमा
अपनी-अपनी शान बनाते हैं।

ये धर्म जीवन में उतारते हैं,
वे धर्म जीवन से उतारते हैं।
इनकी शुभ चर्या ही, चर्चा है
उनकी कोरी चर्चा ही, चर्या है।

इसलिए ये रत्नाकर की तरह
रत्नत्रय गुणों से भरते हैं और
वे उपरोक्त गुणों से पूर्णतः ही
खाली के खाली रह जाते हैं।

चोट और खोट -19

हे धर्मज्ञ ! आप अपने शिष्यों,
भक्तों के सच्चे गुरु हैं अत:
उनकी सभी खोटों को बिना
चोट दिये भी निकाल देते हैं।

न निकले तो, चोट देकर भी
शिल्पी की तरह उसे मूर्ति व
साक्षात् भगवान बना देते हैं
और कभी बदले में किंचित्

कुछ भी दक्षिणा नहीं लेते हैं
अत: हम आपके उपकार को
कैसे चुका सकेंगे और कब
पूर्णत: ऋण मुक्त हो सकेंगे?

ऋण मुक्ति -20

ऋण तो कर्ज है, उसे
चुकाना हमारा फर्ज है
उसका उपाय ऋण को
सदैव ऋण ही मानना
कृतज्ञता को अपनाना
उनकी आज्ञा में रहना,
अनुशासन को पालना,
और केवल उनके पद
चिह्नों पर ही नहीं, किन्तु
उनके बताये पथ पर भी
चलना ऋण मुक्त होना है।

मंजिल तक पहुँचाते -21

उनके पथ चिह्नों पर चलने में
देर हो सकती है परन्तु अंधेर नही
जब वे हमारी योग्यता देखते हैं,
शक्ति अथवा सामर्थ्य देखते हैं
तो उचित उपाय भी खोजते हैं
मार्गदर्शन देते हैं तथा उस पर
चलने की प्रेरणा भी देते हैं और
अपने गंतव्य पथ पर लाकर के
मुक्ति मंजिल तक पहुंचा देते हैं।

♦♦♦

कृतज्ञता व कृतघ्नता -22

उपकारियों के उपकारों को
हृदय से मानना ही, कृतज्ञता है
और नहीं मानना, कृतघ्नता है
स्वेच्छा से चलना, अहंकार है
जो पाँचों पापों का एक बाप है
विपरीत पथ की ओर ले जाये
तब तो वह पाप नहीं, महापाप है।

♦♦♦

सच्चा शिष्य नहीं कहलाता -23

शिष्य की बिडम्बना तब होती है
जब गुरु जो सुनाते वह न सुनता
गुरु जो कहते उसे वैसा न करता
गुरु की राह से वह भिन्न चलता
अन्तर लाता व अहंकार दिखाता,
अपने जैसा दूसरों को भी बनाता
गुरु की मर्यादाएं छोड़ स्वयं ही
गुरुपन दिखाता, जरा भी न शर्माता
स्वयं भ्रमता व दूसरों को भ्रमाता
अपना नाम कमाता, काम बनाता
हित की परवाह किये बिना ऐसा
रूप बनाता, स्वरूप नशाता अत:
वह शिष्य/भक्त नहीं कहलाता।

अहंकारी शिष्य -24

अहंकारी गुरुवत् सम्मान पाने
कर्तव्य भूल, अकर्तव्य अपनाने

गुरु से भी दो कदम आगे बढ़ाने
सदैव वह प्रतिस्पर्धा को अपनाता

कहो ! क्या ऐसा ही गुरु के प्रति
शिष्य का नाता कोई सिखाता

पढ़ा या पढ़ाता, कोई कभी बताता
नहीं-नहीं, ऐसा कोई नहीं पढ़ाता

पढ़ाता तो, वह शिष्य नहीं कहाता।

♦♦♦

समर्पित शिष्य -25

शिष्य वही है, जिसमें शिष्यत्व है
मेरा कुछ नहीं सब गुरु का है
मेरे हर कदम गुरू के कदम हैं
गुरु के कदम से हटकर के मेरा

कोई भी अलग से कदम नहीं है
मेरा सच्चा समर्पण गुरु के लिए है
इसलिए मेरे कदमों में और उनके
कदमों में कोई भी अन्तर नहीं है

उनके बताये पर चलने वाले
कदम ही मेरे सच्चे कदम है
इसलिए उनके कदम ही
हरदम मेरे कदम
उनके ही पथ पर बढ़ने वाले
ये दोनों कदम हैं ।

♦♦♦

आज्ञा में तर्क नहीं -26

उनकी आज्ञा में,
आदेश में कोई
कभी तर्क नहीं,
शर्त नहीं,
पूर्ण विश्वास है
उनका हर कथन
आगमानुसार है।

♦♦♦

समर्पित सु-शिष्य -27

गुरु कहते हैं कि जो मैं करूँ
वह तुम्हें कभी नहीं करना है
चूँकि मेरी शक्ति, पद अलग है
और तुम्हारी शक्ति सामर्थ्य व
पद भी अलग है अत: जो जैसा
मैं करूँ वैसा तुम्हें नहीं करना है
जैसा कहूँ वैसा ही तुम्हें करना है
इसी मर्यादा में रहना तथा कोई
तर्क अथवा शर्त भी नहीं रखना
तभी साधना में, आज्ञा पालने में
सफलता मिलेगी या नहीं मिलेगी
अनुकूलता में पालना हो जायेगी परन्तु
प्रतिकूलता में क्या होगा?
ये सब ज्यादा विचारना नहीं है
यही समर्पित शिष्य का लक्षण है।

♦♦♦

आत्म लीनता -28

हे विज्ञ! सुनो यदि तुम अपने
साहस की सुदृढ़ परीक्षा दोगे,
तो अवश्य उसमें उत्तीर्ण होगे
लोक के अनुसार नहीं, किन्तु
लोक को, निजानुसार ढ़ालकर
मुक्ति की सच राह दिखाओगे
चलाओगे और चलते-चलाते
एक दिन मुक्ति पाओगे, फिर
कभी न तुम लौटकर आओगे
सदा-सदा आत्मानुभव में ही
आत्म लीनता में समय बिताओगे।

पौंछी जाती है - 29

पसीने की बूँद
सीने से हो या
सिर से हो
मस्तिष्क
हाथ पैर के
मूल से हो
या सर्वांग से
हो आ जाती
वह भी
अकेली नहीं
परिवार व
कुटुम्बियों को भी
साथ लाती
पर हाथ या
रूमाल से पौंछी जाती
हवा से सूख जाती ।

खल व्यथा - 30

पसीने ने
अपने सीने पर
बडा पत्थर रखा
बोलने का
बड़ा साहस किया
और फिर कहा
सुनो सुनो
सभी मेरी बात सुनो
मैं आज अपनी
बात कहूँगी
सच्ची बात कहूँगी
मैं अभिमानी नहीं
स्वाभिमानी रही हूँ
इसलिए सिर उठाकर जीती हूँ
मैं स्वेच्छा से कभी
कहीं नहीं जाती न आती
मुझे लाने वाली गर्मी
और ले जाने वाली पवन ही थी
मैं तो व्यर्थ ही बदनाम
और अपमानित हुई
यही मेरी व्यथा
और कथा है।

अध्यायान्त मंगलाचरण

गुरु ही गुणों में गुरु ही रहे हैं,
गुरु ही गुणों में वरिष्ठ रहे हैं।
गुरु ने सुपथ को जाना बताया,
अंगुली पकड़ के चलना सिखाया।।1।।

गुरु की कृपा बिन अधूरा रहा हूँ,
गुरु की कृपा बिन भ्रमता रहा हूँ।
गुरु की कृपा थी मैं उठता रहा हूँ,
गुरु की कृपा थी मैं बढ़ता रहा हूँ।।2।।

न मिलते गुरु तो बिगड़े ही रहते,
न मिलते गुरु तो बिगड़ते ही रहते।
बिगड़ने से मुझ को सुधारा गुरु ने,
गुरु ने ही मुझको पावन बनाया।।3।।

गुरु ने ही मुझ को पहिचान दी है,
गुरु ने ही इंसानियत की जान दी है।
गुरु ने ही भगवत्ता को दिखाया,
गुरु ने ही मुक्ति पथ पर चलाया।।4।।

श्री गुरुदेव है पूज्य विमल सिंधु मेरे ,
श्री गुरुदेव है पूज्य सन्मति सिंधु मेरे ।
वात्सल्य के जो आलय रहे हैं ,
महातपस्वी के चरण नमते रहे हैं।।5।।

(प्रथम खण्ड में- तृतीय अध्याय समाप्त)

अध्याय 4:- मंगलाचरण उद्देश्य

अनुक्रमणिका

01 मंगलाचरण-उद्देश्य
02 कार्य निरुद्देश्य न हो
03 आस्तिकता-नास्तिकता
04 समझाये उतना
05 सौ बार समझाऊँगा
06 समझदारों को ही समझाना
07 रुचिवान ही समझदार है
08 रुचि बिना कुछ नहीं
09 दृश्यमान हो जाती
10 आस्तिकता
11 खाना पर चबाकर
12 पढ़ो- जितना समझो
13 पढ़ना
14 समझो उतना पढ़ो
15 आस्तिक्य/आस्था
16 आस्तिक्य शब्द
17 आस्तिक्य तत्व श्रद्धा
18 अंध विश्वास
19 कर्म बाँटे नहीं जाते
20 ईश्वर भाग्य विधाता नहीं
21 सुख दुःख प्रदाता नहीं
22 ऐसी सामर्थ्य कहाँ
23 ईश्वर सुख की राह बताता
24 ईश्वर कर्ता नहीं
25 ईश्वर कृतकृत्य है
26 ईश्वर कर्ता क्यों नहीं

27 वास्तविकता
28 विराट सत्य
29 सत्य-सत्य होता है
30 शब्द पौरुषेय है
31 जो बोला जाता है
32 ग्रंथ अपौरुषेय नहीं
33 ग्रंथकार बिना, ग्रंथ नहीं
34 जल बिन्दु आस्तिक है
अध्यायान्त मंगलाचरण

मंगलाचरण-उद्देश्य -01

जिसका शुभारंभ
सदा अच्छा होता है
उसका मध्य अथवा
अन्त भी सदा अच्छा
व अच्छा ही होता है
सु-मंगलाचरण सदैव
एक श्रेष्ठ बीज बोता

पाप पृच्छालन करता
नास्तिकता नशाता,
शिष्टाचारी भी बनाता,
कार्य निर्विघ्न कराता,
शुभ पुण्य को लाता,
कार्य को सफल बनाता
ऐसा वह मंगलाचरण कहाता।

♠♠♠

कार्य निरुद्देश्य न हो -02

प्रत्येक कार्य निरुद्देश्य नहीं
किन्तु सोद्देश्ये ही होना चाहिए
तभी वे सार्थक व सफल होते हैं
सभी लोगों में हर्ष लाने वाले तथा
नित-प्रति हर्ष बढ़ाने वाले होते हैं।

♠♠♠

आस्तिकता-नास्तिकता -03

क्या आस्तिकता?
क्या नास्तिकता?
समझ में नहीं आता
फिर भी आप मुझे
समझाते चले जाते
उल्टे ही घड़ों को
भरते ही चले जाते
व्यर्थ पसीना बहाते
पहले देखो तो सही
यह घड़ा तो उल्टा है
उसे सीधा करो फिर
भरो,पर उतना भरो
जितनी उसमें क्षमता है।

समझायें उतना -04

समझाओ, पर उतना
समझ में आये जितना,
जो-जो बात जब तक
समझ में न आये उसे
तब तक तुम समझाओ,
फिर आगे पाठ पढ़ाओ
नियम से दुनिया पढ़ेगी,
रुचि से ही आगे बढ़ेगी
बढ़ती ही बढ़ती रहेगी ।

सौ बार समझाऊँगा -05

मैं तुमको समझाऊँगा
एक बार नहीं, सौ बार
जी हाँ! तुम्हें, समझाऊँगा
क्योंकि मैंने तुम्हें माना
एक समझदार इसलिए
मैं समझाऊँगा बार-बार
और सौ बार समझाऊँगा।
जब तक कि तुमको
समझ में न आ जाये,
समझ न पाओगे
तब तक मैं तुम्हें
समझाता ही रहूँगा
अनेकों उदाहरणों से,
तरह-तरह के दृष्टान्तों से,
विषय को सरल और
सुगम बनाता रहूँगा।

♦♦♦

समझदारों को ही समझाना -06

समझदारों को ही समझाना
प्रथम अपनी समझदारी का
पूर्णतः पवित्र परिचय देना है,
अपना इम्तहान देकर ही तुम
दूसरों का इंतहान ले सकोगे
और निसंकोच लेते भी रहोगे।

♦♦♦

रुचिवान ही, समझदार है -07

समझदार तो वही है,
जो पूर्ण रुचिवान है,
यही तो उसकी
एक मात्र पहचान है,
समझाया तो सदैव
उन्हें ही जा सकता है,
श्रुत-विद्या को घूँट-घूँट
पिलाया जा सकता है,
आपका समझाना भी
उनकी समझ में तभी
पूर्णत: आ सकता है
जिनका घड़ा सीधा है
बूँद-बूँद से, उनका ही
घड़ा भरा जा सकता है।

♦♦♦

रुचि बिना कुछ नहीं -08

रुचि बिना भोजन का
कोई भी स्वाद नहीं होता,
रुचि बिना भक्ति का भी
कोई कभी राग नहीं होता,
रुचि बिना भगवान से भी
कभी भी अनुराग नहीं होता,
रुचि जगे तो भोजन रुचे
रुचि जगे तो भक्ति जगे
रुचि जगे तो भगवान मिलें
अन्यथा हैरान, परेशान होना है।

♦♦♦

दृश्यमान हो जाती - 09

ये रिपटे की तरह
रिपट कर क्यूँ
शीघ्र आ जाती
पसीने की बूँद
अदृश्य थी जो
दृश्यमान हो जाती
पर स्वागत नहीं
सजा पाती
सभा से भगा दी जाती ।

♦♦♦

आस्तिकता -10

समझो, सर्व प्रथम तुम
आस्तिकता को और
उसकी वास्तविकता को
यह सस्ता नाश्ता नहीं कि

जिसे तुम जब चाहो तब
होटल से खरीद भी सको
चट से खा भी सको और
अपने गले उतार भी सको।

♦♦♦

खाना पर चबाकर -11

खाना-खाना परन्तु
चबा-चबाकर खाना,
खाये को पचाना भी है
जिसे तुम पचा सकोगे

वही तुम्हें शक्ति देगा,
सामर्थ्य व ताकत देगा,
जिसे तुमने चबाया है
अच्छे से ही चबाया है

उसे तुम खाना समझो
अन्यथा वह खाना नहीं
खाने का मात्र बहाना है
खाने की ही खानापूर्ति है।

पढ़ो- जितना समझो -12

पाठ पढ़ो पर
उतना पढ़ो
जितना तुम
समझ सको
जो समझ
न सको उसे
समझने का
पुरुषार्थ करो
अपने दिल
दिमाग से,
पुस्तकों से,
या फिर किसी
अध्येताओं से,
वक्ताओं या
प्रवक्ताओं से।

♦♦♦

पढ़ना -13

पढ़ो जरूर पर
आगे बढ़ने के लिए,
अच्छे कुछ श्रेष्ठ
बन जाने के लिए।

♦♦♦

समझो उतना पढ़ो -14

बिना समझे
यदि तुम
आगे बढ़े
तो फिर
बढ़ते ही
जाओगे
पढ़ते ही
जाओगे
पर कभी
कुछ नहीं
पढ़ पाओगे
समझ भी
नहीं पाओगे
सम्हल भी
नहीं पाओगे
केवल समय
ही गवांओगे
तुम कुछ भी
बन नहीं पाओगे।

♦♦♦

आस्तिक्य/आस्था -15

आस्तिक्य
आस्था है,
श्रद्धा है,
विश्वास है।

♦♦♦

आस्तिक्य शब्द -16

आस् धातु से
बना आस्ति है
ठक् प्रत्यय है
सभी का संयोग
आस्तिक शब्द है।
आस्तिक शब्द
से सिद्ध हुआ
आस्तिक्य पद है।

●●●

आस्तिक्य तत्त्व श्रद्धा -17

सात तत्त्व, नौ पदार्थ,
छः द्रव्य, पंचास्तिकाय,
शुद्ध अपनी आत्मा पर
और स्वर्ग-नरक पर
श्रद्धा ही आस्तिक्य है।
संसार और मोक्ष पर,
भाग्य और पुरुषार्थ पर,
पुण्य और पाप कर्म पर,
कर्ता और भोक्ता पर, -
विश्वास ही आस्तिक्य है।

●●●

अंध विश्वास -18

जीव स्वयं पापकर्ता और
उनके फलों को भोक्ता
व्यर्थ ही संदेह करता कि
कभी भी किसी ने मुझ पर

टोटका,मंत्र-तंत्र किया या
जादू-टोना, नजर बंदी की
मूठ भेजी, कभी सुपारी दी,
दुकान बांधी, मेरी जान ली

वास्तविक ये भ्रम ही भ्रम है
यह सभी अंध विश्वास ही है
सम्यक् श्रद्धा का विनाश है
ऐसी सत्य श्रद्धा आस्तिक्य है।

कर्म बाँटे नहीं जाते -19

क्या पाप के फल कभी,
किसी के, किसी को भी
कभी बाँटे जा सकते हैं ?
कोई इसे बाँट सकते हैं?

क्या ऐसा कभी कहीं भी
संभव हुआ? हो सकता है?
यदि हाँ, तो सीता पर दुःख,
और द्रौपदी पर इतना दुःख,

क्यों आने दिया/सहने दिया
क्यों किसी ने दूर नहीं किया?
राम को वन क्यों जाने दिया?
वसुदेव जेल में क्यों डाले गये?

सभी प्रश्नों का एक समाधान,
सारा विश्व होता है कर्म प्रधान
जो जैसा करता उसका फल
वह स्वयं वैसा ही पान करता

न कर सका कोई किसी को
निज कर्मों का दान, न आदान
हे मित्र! तू इस सत्य को जान,
यही है आस्तिकता की पहिचान।

ईश्वर भाग्य विधाता नहीं -20

ईश्वर किसी का, कभी भी
भाग्य का विधाता नहीं होता
यदि भाग्य का विधाता होता,
तो दुर्भागी, अभागी जगत में
कोई भी, कहीं भी नहीं दिखता
यदि वह भाग्य विधाता होता तो
दुर्भागी को दुर्भागी क्यों बनाता?
और उसे अभागी क्यों बनाता?
उस पर इतना क्यों बैर भंजाता?
दया करके दया क्यों नहीं लाता?
नहीं लाता न!अत: वह किसी का
कभी भी भाग्य विधाता नहीं होता
ऐसा मानना ही आस्तिक्यता है।
इसे नहीं मानना ही नास्तिकता है।

♦♦♦

सुख दुःख प्रदाता नहीं -21

सुख-दुःख का कर्ता
ईश्वर कभी नहीं होता
यदि कभी होता भी,
तो उसका धर्मोपदेश
व्यर्थ में ही जाता कि
परमार्थ पथ पर चलो
तुम्हें सदा सुख मिलेगा,
अधर्म का त्याग करो
अधर्म से दुख मिलेगा,
वह पाप क्यों छुड़वाता
छोड़ने की क्यों कहता
पाप से नरक, धर्म से स्वर्ग
प्राप्ति की बात क्यों करता।
सोचो, समझो और समझे तो
उसे मानना ही आस्तिक्य है।

ऐसी सामर्थ्य कहाँ -22

ईश्वर! किसी के दुःख
दूर करने में समर्थ होता
तो फिर वह संसारियों के
दुःख दूर क्यों नहीं करता?

धर्म पथ पर ही चलने की
सभी को क्यों कहता फिर
वह तो अधर्मी को भी स्वर्ग
तथा धर्मी को भी नरक देता

पर ऐसा कभी भी नहीं हुआ
और न कभी भी हो सकेगा
नीम के बीज से क्या कभी
आम के फल उत्पन्न हो सके?

नहीं न! मानना आस्तिक्यता है
और नहीं मानना नास्तिकता है।

♦♦♦

ईश्वर सुख की राह बताता -23

ईश्वर!कभी सुख नहीं देता
किन्तु सुख की राह बताता

इसलिये वह सदा सुख देता,
व्यवहार से ही कहा जाता है
तभी जगत् उसे मानता-पूजता,
और पूजा करता ऐसा मानने को
आस्तिक्य धर्म कहा जाता है।

♦♦♦

ईश्वर कर्ता नहीं -24

जो पर का कर्ता है वह
ईश्वर नहीं या जो ईश्वर है
वह पर का कर्ता नहीं है
इन दोनों में तो पारस्परिक
विरोध है, विरोधाभास है
वास्तविकता तो यही है कि
ईश्वर किसी का कर्ता, धर्ता
भर्ता नहीं, वह तो कृतकृत्य है।

ईश्वर कृतकृत्य है -25

जो-जो करने योग्य
कृत्य थे, कार्य थे
उनको वे कर चुके
अब उन्हें कोई भी
कृत्य शेष नहीं रहा
इसलिये ही तो ईश्वर
नियमत: कृतकृत्य हैं
जो कृतकृत्य है वह
सर्वमान्य ईश्वर है और
जो कृतकृत्य नहीं है
वह ईश्वर ही नहीं है
ऐसा मानना आस्तिकता है
नहीं मानना नास्तिकता है।

ईश्वर कर्ता क्यों नहीं -26

यदि ईश्वर ही जगत् की
प्रत्येक वस्तु का कर्ता है
तो कहो?ईश्वर वस्तु है?
या फिर ईश्वर अवस्तु है?
यदि ईश्वर अवस्तु है तो
अवस्तु वस्तु का कर्ता कैसे?
और यदि ईश्वर वस्तु है तो
वस्तु अवस्तु का कर्ता कैसे?
अर्थात् वस्तु का अवस्तु व
अवस्तु का वस्तु कभी कर्ता
न थी, न है और न कभी रहेगी।

●●●

वास्तविकता -27

ईश्वर जगत् का कर्ता है
तो ईश्वर का कर्ता कौन?
यदि उसके पहले के ईश्वर
तो फिर उनके और उन
उनका भी कर्ता कौन होगा?
ईश्वर को कर्ता मानने में
अनवस्था दोष आयेगा
और सभी को बतायेगा
तुम्हें नास्तिक ही बनायेगा
अत: ईश्वर को कर्ता मानना
नास्तिकता है और कर्ता
नहीं मानना आस्तिकता है
सत्य यही वास्तविकता है।

●●●

विराट सत्य -28

ईश्वर को कर्ता मानना या
न मानना समझ में आना
तभी संभव है जबकि हम
सांप्रदायिकता के पक्ष की
संकीर्णता से ऊपर उठेंगे
और निष्पक्ष दृष्टि से देखेंगे
तो फिर संप्रदाय नहीं, किन्तु
सत्य ही नजर आएगा फिर
संप्रदाय छोटा सा और सत्य
विशाल रूप में नजर आएगा।

♦♦♦

सत्य-सत्य होता है -29

सत्य सदा ही सत्य होता है
जो कभी भी किसी व्यक्ति,
समाज, सम्प्रदाय या धर्म के
पीछे भी कभी नहीं चलता है
न वह कभी शासन-प्रशासन
न अनुशासन के पीछे चलता है
यदि सब के पीछे चलेगा तो
वह सत्य-सत्य ही नहीं रहेगा
सत्य का शासन ही क्या
वीर शासन भी न रहेगा?

♦♦♦

शब्द पौरुषेय है -30

शब्द एक पुद्गल द्रव्य है
पर्याय है, जी हाँ! पर्याय
पर्याय का उत्पाद और
उसका विनाश होता है
ये क्रम शाश्वत होता है
शब्द का कर्ता वक्ता है
वक्ता के बिना शब्दोत्पत्ति
कभी भी नहीं हो सकती,
वो अशब्द-अनक्षर रहेगी
अनक्षर कभी कोई शास्त्र
अथवा ग्रंथ नहीं हो सकता
न उसे कहा जा सकता है
न कभी लिखा जा सकता है
इसलिये शास्त्र, वेद, पुराण
सभी अपौरुषेय नहीं, किन्तु
वे सदा पौरुषेय ही होते हैं।
यह एक सहज सिद्धान्त है।
इसे स्वीकारना आस्तिक्य है
नहीं स्वीकारना नास्तिक्य है।

जो बोला जाता है -31

जो बोला जाता वही लिखा जाता है,
जो बोला न जाता वह लिखा न जाता,
जो बोला जाता है उसे ही पढ़ा जाता है,
जो बोला नहीं जाता उसे पढ़ा नहीं जाता,
बिना बोले लिखना, पढ़ना संभव है
परन्तु जो लिखा है उसे कभी भी
बिना बोले सुनना संभव नहीं है।

♠♠♠

ग्रंथ अपौरुषेय नहीं -32

अक्षर की उत्पत्ति कंठ,
तालू, मूर्धा, दन्त और
औंठ से ही होती है वह
किसी पुरुष के होते हैं

इसके बिना अक्षर की
उत्पत्ति नहीं हो सकती
अक्षर बिना कभी कोई
ग्रंथ भी नहीं बन सकते

इसलिए कभी कोई ग्रंथ
अपौरुषेय नहीं हो सकते।

ग्रंथकार बिना ग्रंथ नहीं -33

जो-जो कार्य होते हैं वे किसी
कर्ता के बिना भी नहीं होते हैं
उनका कोई न कोई कर्ता भी
अवश्य ही होता है इसलिए वे
कार्य कहलाते हैं आश्चर्य तो
तब होता है जब विधाता को ही
कोई सबका कर्ता माने किन्तु
ग्रंथों व वेदों का कर्ता न माने।

जल बिन्दु आस्तिक है -34

जल बिन्दु नास्तिक नहीं,
किन्तु वह आस्तिक है
उसके मंगलाचरण में ही
आराध्य देव, इष्ट देव हैं,
सच्चे परम वीतरागी देव हैं,
सर्वज्ञ और हितोपदेशी हैं
वे ही परमब्रह्म व ब्रह्मा हैं,
त्रिलोकी, त्रिकालवर्ती हैं
समस्त वस्तुओं के और
उनकी समस्त पर्यायों के
युगपद त्रिकालदर्शी भी हैं
व युगपद त्रिकालज्ञ भी हैं
अनंतज्ञ, सर्वज्ञ, आप्त हैं,
नाथ हैं, जिन हैं, जिनेन्द्र हैं,
ईश्वर, विष्णु तथा शिव हैं।

अध्यायान्त मंगलाचरण

आस्था से ही आस्तिक्यता बनी है,
अस्ति से ही आस्था बनी है।
प्रभु का जग में अस्तित्व रहा है,
रहा था रहा है सदा ही रहेगा।।1।।

जो भी प्रभु पद चिह्नों पर चलेंगे,
नियम से ही वे कभी प्रभु भी बनेंगे।
अटल सत्य है यह इसे तुम समझो,
वहाँ पर सदा तक प्रभु तुम बनोगो।।2।।

प्रभु ही प्रभुता का पथ ही दिखाता,
प्रभु ही प्रभुता को चलकर बनाता।
चलना तुमको स्वयं ही पड़ेगा1,
प्रभुता के दृढ कदम उठाना पड़ेगा।।3।।

हर आत्मा में परमात्मा छिपा है,
पुरुषार्थियों को ही परमात्मा दिखा है।
बिन पुरुषार्थ के न परमात्मा बना है,
मानो तो आस्तिक नहीं तो नास्तिक रहोगे।।4।।

जगत पूज्य तुम हो अरहनाथ प्रभु जी,
स्वामी हमारे लिये पूज्य तुम हो।
मन से वचन से तन से सदा ही,
मैं पूजता ही रहूँगा तुमको।।5।।

(प्रथम खण्ड में- चतुर्थ अध्याय समाप्त)

अध्याय 5-: लघुता और प्रभुता

अनुक्रमणिका

01 लघुता बिन प्रभुता नहीं
02 खलनायक मंगल नहीं
03 प्रभुता से प्रभु नहीं
04 लघु और लघुता में अंतर
05 भोला बनना या होना?
06 स्वप्न के प्रभु-प्रभुता नहीं..
07 तुम भी प्रभु बन जाओगे
08 हृदय की लघुता
09 अवसर चूको नहीं
10 लघु भी प्रभु बने
11 छोटे पत्थर भी महत्वपूर्ण
12 छोटे पत्थरों का योगदान
13 पथरिया की कीमत
14 कार्य ही पूजा है
15 कार्य ही पूज्य बनाती
16 भूल समझ में आती
17 पथरिया
18 लघुता ही रखते
19 लघुता का महत्व
20 वैसे नहीं बन पाये
21 भक्त ने भगवान बनाया
22 अंहकार तज
23 लघुता से गुरुता
अध्यायान्त मंगलाचरण

लघुता बिन प्रभुता नहीं -01

सुनो-सुनो एक बात,
अच्छी तरह से तुम
सुनो और उसे गुनो
लघुता के आये बिना
प्रभुता भी आती नहीं
लघुता बिन प्रभुता भी
स्थायी टिक पाती नहीं
अत: वह लघुता ही
प्रभुता की जननी है
जो सदा लघु से भी
लघु को प्रभु बनाती है
बात समझ में आती है
इसलिये लघुता का
आचरण सच्चा, सही
प्रथम मंगलाचरण है।

खलनायक मंगल नहीं - 02

खलनायक
मंगल नहीं
अमंगल करते हैं
चाहे जहाँ और
चाहे जब वे
बिना सोचे समझे
आ टपकते हैं
इसलिये ही तो
सभी को वे सदा
खटकते ही खटकते हैं ।

💧💧💧

प्रभुता से प्रभु नहीं -03

सुनो! प्रभुता से
कोई प्रभु नहीं बने
जो भी प्रभु बने वे
लघु ही लघुता से
अपना सु-सम्यक्
पुरुषार्थ कर प्रभु बने।

💧💧💧

लघु और लघुता में अंतर -04

लघु और लघुता में
थोड़ा ही नहीं परन्तु
बहुत अंतर होता है
लघुता के बिना प्राणी
कभी लघु नहीं किन्तु
वह लघु होकर के भी
प्रभु के स्वप्न देखता है
इसलिये वह स्वप्न ही
देखता रहता पर कभी
वह प्रभु नहीं बन पाता है।

♠♠♠

भोला बनना या होना?-05

भोला बनना और भोला होना
दोनों में बहुत-बहुत अन्तर है
भोला होना बुरा नहीं अच्छा है
वह तो अन्दर बाहर से एक है
इसलिए वह सदा नेक है किन्तु
भोला बनना केवल भोलेपन का
एक बाना है, जो अन्दर से नहीं
बाहर से ही दिखता है परन्तु
जैसा दिखता है वैसा होता नहीं
इसे समझना आसान नहीं किन्तु
किन्हीं समझदारों की ही बात है।

♠♠♠

स्वप्न के प्रभु-प्रभुता नहीं -06

यथार्थ लघुता केवल
प्रभुता के स्वप्नों को ही
नहीं देखा करती है
क्योंकि वह जानती है
कि स्वप्न की प्रभुता तो
स्वप्न के समाप्त होने पर
स्वप्न के साथ ही मिटती
और पूर्णत: मिट जाती है
केवल स्मृति ही सभी में
उसकी शेष रह जाती है
स्वप्न की प्रभुता को सत्य
मानने वाला कभी वास्तविक
प्रभुता को नहीं पा पाता है।

♠♠♠

तुम भी प्रभु बन जाओगे -07

प्रभु कौन नहीं बनना चाहता
सभी तो प्रभु बनना चाहते हैं
तुम भी अवश्य प्रभु बनो पर
लघुता पूर्वक ही प्रभु बनो तो
अवश्य ही प्रभुता को पाकर
नियम से तुम प्रभु बन जाओगे।

♠♠♠

हृदय की लघुता -08

बाहर से कोई
लघु हो या दीर्घ,
छोटा हो या बड़ा
फर्क नहीं पड़ता
बड़े कद वाले भी
संसार से तरे हैं व
लघु कद वाले भी,
पर जो भी तरे हैं
वे सभी नियम से
हृदय की लघुता
से ही तरे हैं इसलिए
वे ही प्रभु, बने हैं।

♦♦♦

अवसर चूको नहीं -09

हृदय की लघुता कोई
घाटे का सौदा नहीं है
पर प्रभुता का सौदा है
अरे बाबा! अवसर को
चूको नहीं, अन्यथा तुम
हाथ मलते रह जाओगे
हृदय को लघु बनाये बिना
कभी प्रभु नहीं बन पाओगे।

♦♦♦

लघु भी प्रभु बने -10

यह मत सोचो कि
बड़े ही कीमत पाते हैं
छोटे तो पीछे ही पीछे
लड़खड़ाते ही रह जाते हैं
नहीं-नहीं ऐसा नहीं है
बिल्कुल भी नहीं है
छोटों ने भी स्वयं की
श्रेष्ठ पहिचान बनाई है
काँटे निकालने में या
कपड़ों के सिलने में
कभी भी तलवार नहीं
सुई ही काम आई है
लघुता की उसने भी
यश पताका फहराई है
यह बात सच्ची है मुझे
आज समझ में आई है।

छोटे पत्थर भी महत्वपूर्ण -11

ऊँचे-ऊँचे महल बनते
पत्थर पर पत्थर लगते
लगते व लगते ही जाते
पर कहीं कोई ऊँचे और
कोई कहीं नीचे भी होते
तो उन्हें सम्हालने छोटे से
पत्थर/पथरिया काम आते
महल बनने में संतुलन बनाते
तभी तो वे पूर्ण महानता पाते।

♦♦♦

छोटे पत्थरों का योगदान -12

महल बनाने में छोटे
पत्थरों का भी अपना
महत्वपूर्ण योगदान है
वही उनकी महानता है
और सच्ची पहिचान है
भले ही कद छोटा था
परन्तु कार्य छोटा नहीं,
किन्तु बड़े से बड़ा था
यह बात तब सभी को
समझ में आई जब उसने
अपना पूर्ण फर्ज निभाया
तभी ऊँचा महल बन पाया।

♦♦♦

पथरिया की कीमत -13

पथरिया की कीमत है
बड़ा योगदान है भले ही
उसका नाम मानचित्र में
अथवा मानव-चित्त में
हो,या न हो पर उसका
महत्वपूर्ण ही काम था
काम करने वाले नाम की
और नाम चाहने वाले
कभी भी काम की
कीमत नहीं समझते हैं
यदि समझते तो फिर क्यों वे
काम बिना अपना नाम चाहते
नाम के लिए काम चाहते।

♦♦♦

कार्य ही पूजा है -14

काम करने वाले केवल
काम ही काम को अपना
महत्वपूर्ण काम समझते हैं
वे केवल"कार्य ही पूजा है"
यह मान काम ही चाहते और
काम करके सफलता पाते
इसी में वे सदा हर्षित होते
और सभी को हर्षाते रहते

♦♦♦

कार्य ही पूज्य बनाती -15

पथरिया की गिनती नहीं होती
न नाम होता किन्तु कीमत होती
वह गिनती या नाम की कभी भी
कीमत न देखती/करती/सोचती

भले ही कोई मेरी कीमत समझे
या न समझे पर मुझे काम करना है
कार्य ही पूजा है, कार्य की पूजा होती,
कार्य ही पूजा देती पूज्य बनाती फिर

नाम की या गणना की क्यों योजना
क्यों आयोजना तथा क्या प्रयोजना
महल बनना/बनाना और बनने के
काम आना इसी में मेरी सफलता है।

💧💧💧

भूल समझ में आती -16

छोटी सी पथरिया की कीमत
तब समझ में आती जब वह
खिसकती ऊँचे महल को भी
हिला देती संकट में डाल देती
ऊँची-ऊँची नक्काशियों को
समय व अर्थ को गिराती और
भूसात करके धूल में मिलाती
छोटों की कीमत न की यह
भूल की बात समझ में आती।

💧💧💧

पथरिया -17

ऊँचे-ऊँचे महल बनते
पत्थर पर पत्थर लगते
लगते-लगते जब कभी
वे छोटे या बड़े या फिर
ऊँचे नीचे होते तब एक
छोटी सी पथरिया ही
काम आती और अपना
अमूल्य योगदान भी देती
जी हाँ सन्तुलन बनाती
ऊँच नीच का भेद मिटा
सुन्दर सा महल बनाती
सभी में सफलता पाती
हर्षित हो सभी को हर्षाती।

लघुता ही रखते -18

भगवान को ही भक्त
गुरू को सदा शिष्य
स्वामी को भी सेवक
सब कुछ ही समझते
अपने लिये वे कभी
कुछ भी न समझते
यानि-कुछ भी नहीं
ऐसा भी नहीं किन्तु
सब कुछ होने पर भी
अंहकार नहीं रखते
वे लघुता ही रखते हैं।

♦♦♦

लघुता का महत्व -19

लघुता से बिन्दु सिन्धु व,
कंकड़ पर्वत, भक्त भगवान,
शिष्य गुरू व सेवक स्वामी
नियम से वह बन जाता है
तब कहीं समझ में आता है
एक मात्र लघुता का महत्व
जो ऐसी प्रभुता दिला देता है
देर है पर अन्धेर नहीं होता
धैर्यशाली ही सफलता पाता
सभी को सफलता दिलाता।

♦♦♦

वैसे नहीं बन पाये -20

जिसने अंहकार किया
उसने सदा कंकड़ को
शंकर मान लिया तभी
वह शंकर नहीं बन पाया
बिन्दु ने स्वयं को सिन्धु,
भक्त ने स्वयं को भगवान,
शिष्य ने अपने आपको गुरु,
सेवक ने स्वयं को स्वामी
यदि कहीं ऐसा मान लिया
तो वह कभी भी वैसा न
बन पाया न बन पायेगा।

भक्त ने भगवान बनाया -21

भक्त ने ही भगवान को
शिष्य ने ही गुरु को और
सेवक ने ही स्वामी को
जन्म दिया या बनाया है
यदि वे न होते तो फिर
वो भी कहाँ से हो पाते
कैसे वे ऐसे बन पाते।

अंहकार तज -22

लघुता ही शिष्य धर्म है
पहुँचाती प्रभु के द्वार है
वही तो उद्धार करती है
ध्यान रखो लघुता बिन
तेरी नाव मझधार में है
नदी की तेज धार में है
अंहकार के वजन से
वजनदार ही बना देती
पता नहीं ये किसे कब
भव सागर में डुबा देगी
रुलायेगी अत: तू तज
सदा-सदा अंहकार को
और तू पाल शिष्टाचार को।

लघुता से गुरुता -23

लघुता आये बिना गुरुता पाना
फूल आये बिना फल को पाना
या मूल बिना वृक्ष को पाना
तथा नींव बिना महल बनाना
तत्काल ही विफलता लाता
कमाया अर्थ भी व्यर्थ जाता
श्रम-परिश्रम सब व्यर्थ जाता
पश्चाताप ही शेष रह जाता
आँसू ही बहाता रह जाता
यदि लघुता न आ सकी तो
वह सदा सोते-सोते रह जाता
और फिर रोते-रोते रह जाता।

अध्यायान्त मंगलाचरण

लघु ही लघुता से प्रभु जी बने हैं,
लघु ही लघुता से गुरु जी बने हैं।
लघुता को तुम छोटा न समझो,
लघु ही लघुता से श्री जी बने हैं।।1।।

लघुता ने छात्रों को आगे बिठाया,
लघुता ने छात्रों को ऊपर उठाया।
लघुता यह शब्द सबसे निराला,
लघुता ने बिंदु को सिंधु बनाया।।2।।

लघुता ने मेरु को सुमेरु बनाया,
लघुता यानि अहंकार तजना।
लघुता ने ही ईंटों से महल बनाया,
लघुता ने सभी को ऊँचा उठाया ।।3।।

लघुता सभी को उच्च बनाती रही है,
तनाव मुक्ति का पाठ पढ़ाती रही है ।
लघुता से सिद्ध लोकाग्र पर बसे हैं,
नमस्कार उनको मन हदय में बसे है ।।4।।

(प्रथम खण्ड में- पंचम अध्याय समाप्त)

अध्याय 6-:वक्ता की प्रामाणिकता

अनुक्रमणिका

01 केवल शब्द प्रमाण नहीं
02 वक्ता-प्रमाण
03 पूर्ण प्रवक्ता
04 केवली ही प्रवक्ता होते हैं
05 उनके वचन ही जिनवाणी है
06 रागी पूर्णतः प्रवक्ता नहीं
07 वीतरागी
08 मोह की दो सन्तान
09 मोह मद
10 वीतरागी असत्य नहीं
11 वस्तु का स्वभाव
12 ठग-विद्या
13 निर्ग्रंथ गुरु सत्य महाव्रती हैं
14 कथनी-करनी में एकता
15 आगम
16 लेखन उचित या अनुचित
17 ग्रंथ लेखन परम्परा
18 प्रामाणिकता पाई
अध्यायान्त-मंगलाचरण

केवल शब्द प्रमाण नहीं -01

वक्ता की प्रामाणिकता ही
उसकी सत्यता कही जाती है
सत्यता की प्रामाणिकता भी
उसकी पूर्ण वीतरागता कहाती

बिना वीतरागता के सत्यता
सत्यता के बिना उसकी पूर्ण
प्रामाणिकता नहीं हो सकती
इसलिये सर्वप्रथम शब्द की

प्रामाणिकता नहीं, वक्ता की
प्रामाणिकता ही होना चाहिये,
शब्द तो बालक के भी होते हैं
पर वे कभी प्रामाणिक नहीं होते हैं

शब्द की प्रामाणिकता पाने
प्रथम स्वयं प्रामाणिक बनो
तभी तुम और तुम्हारा शब्द ,
बिना प्रमाण पत्र के भी सदा

प्रामाणिक होते रहेंगे और
सदा प्रामाणिक बनाते रहेंगे ।

वक्ता-प्रमाण -02

शब्द तो एक उन्मादी व
पागल पुरुष के भी होते हैं
पर वे प्रामाणित नहीं होते हैं
अत: ध्यान से सुनो, समझो,
और सदैव ध्यान रखो कि
केवल शब्द ही प्रमाण नहीं,
किन्तु वक्ता प्रमाण होता है
उसकी प्रामाणिकता पर ही
उसके वचन प्रामाणिक होते हैं
तथा मान्य व सर्वमान्य होते हैं
(वक्तृ प्रमाण्यात् वचन प्रमाणं)

पूर्ण प्रवक्ता -03

प्रमुख वक्ता तो वे ही होते हैं
जो पूर्ण ज्ञान, केवलज्ञान से ही
सदैव सम्पन्न होते हैं इसलिए वे
पूर्ण वक्ता और प्रवक्ता होते हैं
बाकि सब वक्त के वक्ता होते हैं।
बहुत से तो कमवक्त के वक्ता होते हैं
या फिर वक्तृत्व में कमवक्त होते हैं।

केवली ही प्रवक्ता होते हैं -04

श्री वीतरागी जिनवर ही
केवलज्ञान को पाकर के
सर्वज्ञ व सर्वदर्शी होते हैं
इसलिये सम्पूर्ण विश्व को
वे पूर्ण प्रामाणित होते हैं
क्योंकि वे समस्त पदार्थ
उनको तथा उनके सभी
गुणों, उनकी त्रिकालवर्ती
पर्यायों के युगपद ज्ञाता होते हैं
इसलिये वे सर्वश्रेष्ठ वक्ता
और सर्वश्रेष्ठ प्रवक्ता होते हैं।

♦♦♦

उनके वचन ही जिनवाणी है -05

जिनवर के वचन ही
जिनवाणी के रूप में
प्रामाणित होते क्योंकि
वे पूर्वापर विरोध रहित
सदा अनुलंघनीय होते व
सारभूत तत्व के उपदेशी
और सत्योपदेशी होते हैं
अत: वे अक्षरश: सभी में
प्रामाणित व प्रामाणिक होते हैं।

♦♦♦

रागी पूर्णतः प्रवक्ता नहीं -06

राागी नियमतः सत्य का
पूर्ण वक्ता नहीं हो सकता
क्योंकि, उसके चश्मे पर
राग का रंगीन काँच होता

जब तक रंगीन काँच होगा
तब तक वस्तु जैसी है वैसी
नहीं परन्तु रंगीन काँच का
रंग जैसा है वैसी ही दिखेगी

यदि लाल काँच है तो लाल
और नीला काँच है तो नीली
तथा हरा है तो हरी दिखेगी
इसलिये कभी राग-द्वेष का

मोह अथवा मिथ्यात्व का
काँच हटे बिना सत्य का भी
सम्यग्ज्ञान नहीं हो सकता है
जिसे सत्य का ज्ञान नहीं हुआ

तो वह सत्य का प्रवक्ता भी
कभी नहीं हो सकेगा इसलिए
उनके वचन भी प्रामाणिक
कैसे हो सकेंगे? नहीं हो सकेंगे।

वीतरागी -07

जो वित्तरागी नहीं
और न चित्तरागी हैं
वे केवल चेतन और
अचेतन वस्तुओं में
राग-द्वेष रहित और
मोह रहित वीतरागी हैं।

♦♦♦

मोह की दो सन्तान -08

राग-द्वेष, मोह की
दो सन्तान हैं जो
इंसानियत रहित
इंसानवत् होती हैं
करती वे हैरान हैं
परेशान करके भी
बनाती शैतान हैं
कभी हँस करके
कभी हँसा करके
कभी रोकर और
कभी रुलाकर के
सत्य को खोती व
सत्य को न समझती
और न किसी को वे
कभी भी समझा पाती।

♦♦♦

मोह मद -09

मोह-मदहोशता को लाती
फिर नशे की बेहोशी में वो
जो-जो वस्तु दिखने में आती
वह कुछ की कुछ दिखती है
जैसी दिखती वैसी नहीं होती
जैसी होती वैसी नहीं दिखती
तब फिर जो-जो बोला जाता
या बोलने को मजबूर करती
सत्य से वह बहुत दूर करती
इसलिये वे प्रामाणिकता को
कभी कहीं भी नहीं पा पाती।

वीतरागी असत्य नहीं -10

जो वीतरागी होंगे
वे असत्य क्यों कहेंगे
असत्य कहने के फिर
कारण भी कहाँ रहेंगे

असत्य की दौड़ सदा
राग-द्वेष अथवा मोह
तक ही रहा करती है
जब दिशा बदलती है

तब नियम से उसकी
दशा भी बदल जाती है
राग द्वेष मोह की फिर
तमःपूर्ण निशा का भी

अवसान हो जाता है
तब ही वीतरागता पूर्ण
ज्ञान-भानु का पूर्ण उदय
और सुप्रभात हो जाता है।

वस्तु का स्वभाव -11

वस्तु का वस्तुत्व ही
वास्तविक स्वभाव है
वही सर्वज्ञ के वचन हैं
इसलिये उनका कथन
प्रामाणित ही होता है
जैसा होता उन्हें स्पष्टत:
वैसा का वैसा दिखता है
जैसा दिखता वैसा ही
उनके कथन में आता
इसलिये प्रमाणता पाता
और प्रमाण बन जाता।

ठग-विद्या -12

प्रमाण के अनुसार सदा चलना
अपनी ही प्रामाणिकता है और
अपनी प्रामाणिकता ही तो सदा
दूसरे को प्रामाणिक बनाती है
तुम दूसरों से प्रमाण चाहते हो
पर स्वयं प्रमाण से दूर रहते हो
एक भी प्रमाण नहीं दे पाते हो
केवल तर्कों में ही उलझते और
दूसरों को भी उलझाते रहते हो
यही एक साक्षात् ठग विद्या है।

निर्ग्रंथ गुरू सत्य महाव्रती हैं -13

निर्ग्रंथ गुरु आचार्य
उपाध्याय व मुनिराज
श्रेष्ठ पंच महाव्रतों में
सत्य महाव्रत के धारी

जो-जो जब बोलते हैं
वह-वह सत्य बोलते हैं
अन्यथा वे मौन रहते हैं
उन्हें किसी से कभी भी

राग तथा द्वेष नहीं होता
लगाव तथा जुगुप्सा का
कभी भी भाव नहीं होता
उनके ऊपर तो एक मात्र

जिन का ही प्रभाव होता
कालुष्यता खोता इसलिये
उनके वचन प्रामाणित होते है
व सभी से प्रामाणिकता पाते है ।

कथनी-करनी में एकता -14

उनकी कथनी,करनी में
कभी अंतर नहीं होता
वे जो कहते उसे करते
जो करते उसे कहते पर
शब्दशः जिनागमानुसार
ही कहते इसमें जरा भी
कहीं कोई अंतर नही होता
इसलिये जब वे जो कहते,
और जब जो-जो लिखते
वे कभी अपनी ओर से नहीं
और न ही अपने विचारों से
किन्तु वे जिन वचनों को ही
लखते, कहते और लिखते
इसलिये उनके वचन अथवा
प्रवचन भी सदा प्रामाणित होते हैं।

आगम -15

भले ही कभी भी हमारा
जिनवरों से कहीं सीधा
साक्षात्कार न हुआ हो
फिर भी नदी प्रवाहवत्
आचार्यों की परंपरा से
यथावत जो जैसा आता
उसमें कभी भी कुछ भी
मिलावट,परिवर्तन नहीं होता
इसलिये वह आगम कहाता है।

लेखन उचित या अनुचित -16

जब जिनवाणी श्रुत और
आगम स्वरूप ही रही तब
उसका शुभ लेखन करना
उचित नहीं माना जाता था।

♦♦♦

ग्रंथ लेखन परम्परा -17

हीन होते ज्ञान को देख
विस्मृति की वृद्धि तथा
विचार भेद देख आचार्य
धरसेन ने ग्रंथ लेखन व
लिखाने की परम्परा को
सातवीं वीर निर्वाण सदी के
पश्चात् ही प्रारम्भ किया था।

♦♦♦

प्रामाणिकता पाई -18

सत्य महाव्रती
आचार्यों ने ही
प्रामाणिकता पाई
ग्रंथों की सत्यता
निर्ग्रन्थों से आई
व निर्ग्रन्थों का
योगदान पाकर
जनता हर्षायी
उपकारियों के
उपकार को मान
कृतज्ञ कहलाई।

अध्यायान्त-मंगलाचरण

सत्य को प्रमाण की जरूरत नहीं है,
सत्य की स्वयं प्रामाणिकता रही है।
सत्य तो सत्य है अटल ही रहेगा,
सत्य तो किसी का मुहताज नहीं है।।1।।

सत्य का मात्र बाना सत्य नहीं है,
ऊपर से ओढ़ना सत्य सत्य नहीं है।
सत्य तो अंदर से सदा से ही जन्मा,
सत्य का दिखावा भी सत्य नहीं है।।2।।

जब सत्य आता परिवर्तन को लाता,
अंतर और बाहर को एक बनाता।
चर्चा और चर्या का फर्क मिटाता,
सत्य आता नई अनुभूति को लाता।।3।।

सत्य को जिन्होंने हृदय में उतारा,
सत्य को जिन्होंने चर्चा में धारा।
सत्य की अनुभूति उन्हें ही मिली है,
सत्य को जिन्होंने चर्या में लाया।।4।।

सत्य जब आता है मन में कभी भी,
अनुभूति पर उमंग लाता तभी ही।
तभी निर्भीकता वचनों में आती,
कथनी वक्ता की सबको सुहाती।।5।।

(प्रथम खण्ड में- छठवाँ अध्याय समाप्त)

अध्याय 7-: प्रतिज्ञा

अनुक्रमणिका

01 ग्रंथ लेखन की प्रतिज्ञा
02 प्रतिज्ञा
03 आखड़ी
04 दृढ़प्रतिज्ञा
05 इच्छा-प्रतिज्ञा
06 प्रतिज्ञा ऊँचा उठायेगी
07 प्रतिज्ञा निभाई -सिद्धियाँ पाईं
08 प्रतिज्ञा की परीक्षा
09 प्रतिज्ञा की समीक्षा
10 प्रतिज्ञा निभाना
11 जलबिन्दु की परिभाषा
12 बंधन मुक्त कविताएँ
13 कठोर प्रतिज्ञा
14 कायरों की नहीं
15 वीर पुरुषों की
16 वीर-प्रतिज्ञा
17 शुभारम्भ
18 सभी कार्य शुभारम्भ नहीं
19 प्रतिज्ञा-फल
20 अवहेलना मत करो
21 चाह है तो राह है
22 तू सफल होगा
23 महाकाव्य बनाऊँगा

24 रास्ता दिया
25 प्रतिज्ञा आत्माज्ञा है
26 प्रतिज्ञा में विकल्प नहीं
27 प्रतिज्ञा की एक ही राह
28 प्रतिज्ञा विश्वास दिलाती
29 लिखता रहूँगा
30 सत्याग्राही बनूँगा
31 सारभूत कहूँगा
32 स्वहितार्थ लिखूँगा
33 कविताओं के फूल
34 चिंतन की राह
35 जल बिंदु से स्वेद बिंदु
अध्यायान्त-मंगलाचरण

ग्रंथ लेखन की प्रतिज्ञा -01

मंगलाचरण कर
योग-उपयोग को
एकाग्र करने हेतु
शब्द, अर्थ, रस,
छन्द, न्याय, नीति,
व्याकरण, अलंकार,
आगम, सिद्धांत के
सूत्र संजो-संजोकर
सदैव धर्म बोध से
व बोधि से भरकर
तथा आत्महितकारी
जगत कल्याणकारी
"जलबिन्दु-महाकाव्य"
लिखने की प्रतिज्ञा की।

प्रतिज्ञा -02

प्रतिज्ञा कथनीय विषय पर
अपनी सम्यक् दृष्टि रखती
उसको अपना लक्ष्य बनाती
सदा साध्य को ही अपनाती
न वह भटकती न भटकाती
पाठकों अथवा श्रोताओं की
नित-प्रति आकुलता मिटाती
सदा धैर्य दिलाती हर्ष बढ़ाती
विषयान्तरण से उसे बचाती
अपना व्यर्थ समय न गवाती
कार्य को ही वह पूर्णता दिलाती
हर्षित होकर सभी को हर्षाती
इसलिए वह प्रतिज्ञा नाम पाती।

आखड़ी -03

प्रतिज्ञा को आखड़ी भी कहते हैं
जो जब जहाँ कमजोरी देखती तभी
स्मृति पटल पर आ खड़ी होती और
डगमगाती प्रतिज्ञा को वह सम्बल देती
मजबूत करती और टूटने से बचाती है।

दृढ़ प्रतिज्ञा -04

प्रतिज्ञा ही
ग्रंथ लेखन में
गति दिलाती
प्रमाद हटाती
विषयांतर से
सदा बचाती
अपने मुख्य
उद्देश्य की
सदुपयोगिता
बढ़ाती और
वह लक्ष्य तक
पहुँचाती अत:
ग्रंथ लेखन के
प्रारम्भ में दृढ़
प्रतिज्ञा की जाती है।

💧💧💧

इच्छा-प्रतिज्ञा -05

प्रतिज्ञा तुम्हारी इच्छा है
विचारों की ही समीक्षा है
अपनी दृढ़ता की परीक्षा है
और सफलता की प्रतीक्षा है।

💧💧💧

प्रतिज्ञा ऊँचा उठायेगी 06

भो भव्यात्मन्!
सच्ची प्रतिज्ञा तुम्हें
ऊँचा उठायेगी
ऊँचाई दिलायेगी
ऊँचा भी बनायेगी
इज्जत दिलायेगी
सम्मान दिलायेगी
प्रतिष्ठा दे सबका
विश्वसनीय बना
तुम्हें सफलता का
शिखर भी बनायेगी।

♦♦♦

प्रतिज्ञा निभाई -सिद्धियाँ पाईं -07

प्रतिज्ञा निभाई ऋषभ देव ने
विधि बिना आहार न लिया,
पारसनाथ ने उपसर्ग में भी
अपनी समता को नहीं छोड़ा
राम ने सत्य को नहीं छोड़ा
सीता ने शील को नहीं छोड़ा
सेठसुदर्शन, वारिषेण, यशोधर,
मुनिसुकमाल, सुकौशल ने भी
प्रतिज्ञा निभाई और सिद्धियाँ पाईं।

♦♦♦

प्रतिज्ञा की परीक्षा -08

प्रतिज्ञा की भी
समीक्षा होती है
कठोर उसकी
परीक्षा होती है
उस पर तो फिर
ठण्डे ओले व
आग के गोले
बरसा करते हैं
मजबूत रहे तो
उसे देख-देख
देवता गण भी
हर्षा करते हैं और
सहायता के लिए
वे सदा तरसा करते हैं।

प्रतिज्ञा की समीक्षा -09

न लेने की इच्छा न देने की इच्छा
सफलता का निर्णय कराती है परीक्षा
वैराग्य हुआ तो दीक्षा अन्यथा समीक्षा
समीक्षा पर समीक्षा अपनी-अपनी इच्छा।

प्रतिज्ञा निभाना -10

प्रतिज्ञा लेना सरल है
पर निभाना कठिन है
मन की अस्थिरता को
बाँधने, चंचलता को
रोकने के लिए ही तो
प्रतिज्ञायें की जाती हैं
और वह प्राण पन से
सदा पूर्ण की जाती हैं।

♦♦♦

जलबिन्दु की परिभाषा -11

मेरी भाषा सरल होगी
मेरा मन सरल होगा
जीवन शैली से बंधी
जलबिन्दु महाकाव्य की
प्रत्येक कविताएँ भी
सरल से सरल होगी
इसमें कठोरता नहीं
कठोर भाषा भी नहीं
वाग्जाल भी नहीं होगा
यही तो जलबिन्दु की
एक शुद्ध और परिपूर्ण
महा परिभाषा होगी।

♦♦♦

बंधन मुक्त कविताएँ -12

कविताएँ केवल ग्रंथ विस्तार नहीं है
कविताएँ केवल अर्थ विस्तार नहीं है
कविताएँ भावों से परिपूर्णत: भरी हैं
कविताएँ केवल समय बर्बादी नहीं है
कविताएँ किसी धर्म से भी नहीं बंधी
कविताएँ किसी पुस्तक से नहीं बंधी
कविताएँ किसी जाति से नहीं बंधी
वे सभी धर्म, पुस्तक व जाति की हैं
ये कविताएँ किसी खास व्यक्ति से
अथवा ये किसी खास व्यक्ति को
बांधकर या बंधकर नहीं चलेगी
या किसी सीमाओं से बंधकर नहीं
वे बंधन से मुक्त मुक्ति के लिये होगी।

♦♦♦

कठोर प्रतिज्ञा -13

प्रतिज्ञा प्रतिज्ञा होती है
जो पुष्पलता की तरह
लचीली, शर्मीली नहीं
परन्तु वह तो सदा ही
लोह-खण्ड की तरह
ठोस व कठोर होती है।

♦♦♦

क़ायरों की नहीं -14

प्रतिज्ञा कभी कायर या
कमजोर दिल वाले न
ले पाते, न निभा पाते हैं
अत: उनमें या उनकी
कभी प्रतिज्ञा नहीं होती
न ही कभी उनके प्रतिज्ञा
लेने के ही भाव अथवा
साहस भी कभी नहीं होता
वे कदाचित् प्रतिज्ञा लें भी
तो लेकर उसे तोड़ देते या
उनकी प्रतिज्ञायें टूट जाती
इसलिए वे किसी कार्य में
कभी भी सफल नहीं होते
और न ही वे कभी किसी के
पूर्ण विश्वास को पा पाते हैं।

♦♦♦

वीर पुरुषों की -15

प्रतिज्ञायें सदा ही
सच्चे वीर पुरुष ही
लिया करते हैं व
हर परिस्थिति में
प्राणपन से निभाते
इसलिए वे प्रारम्भ
किये गये कार्य को
पूर्ण कर पाते और
उसमें सफलता पाते
इसलिए वे वीर पुरुष
महापुरुष ही कहलाते।

♦♦♦

वीर-प्रतिज्ञा -16

तुम तो वीर हो क्योंकि
महावीर की सन्तान हो
महावीर सन्तान कभी भी
कायर नहीं होती है, किन्तु
वह सदैव वीर ही होती है
जब-जब भी जो प्रतिज्ञा लेती
उसे कभी भी तोड़ती नहीं है
किन्तु प्राणपन से पूर्ण निभाती है।

♦♦♦

शुभारम्भ -17

श्रावणी प्रतिपदा आई
युगारंभ की तिथि लाई
वीरशासन स्मृति भाई
श्रावण माह श्रमणों के
वर्षायोग की तिथि पाई
श्रमण देशना सुनने की,
पावन पवित्र घड़ी आई
तभी वर्षों से रुके हुए
"जल बिंदु महाकाव्य"
लिखने की मति बनाई
प्रसन्न मन से अर्थ हुआ
जलबिंदु महाकाव्य का
सृजनात्मक प्रारम्भ हुआ।

♦♦♦

सभी कार्य शुभारम्भ नहीं -18

केवल आरम्भ ही नहीं किन्तु
कार्य प्रारम्भ भी होना चाहिए
प्रारम्भ किये गए सभी कार्य
शुभ ही हों यह अनिवार्य नहीं
इसलिए उनके प्रारम्भ को हम
शुभारम्भ भी नहीं कह सकते
क्योंकि शुभारम्भ तो शुभ कार्य
के प्रारम्भ को ही कहते हैं।

♦♦♦

प्रतिज्ञा-फल -19

प्रतिज्ञा का वास्तविक
सु-स्वादिष्ट, सुगन्धित
मन मोहक श्रेष्ठ फल
उन्हें ही तब मिलता है
जब वह पूर्ण हो जाती
तभी वह सफल होती
इसकी सही रसानुभूति
उन्हें ही होती है जिनको
सम्यक् स्वानुभूति होती है।

अवहेलना मत करो -20

तुम अज्ञानता वश आगम तथा
आचार्य वचनों को संघ एवं पंथ
भेद की सीमा में खड़ा करते हो
पर तुम यह भूल जाते हो कि वे
न भेद की सीमा में खड़े थे और
न उन्होंने भेद की सीमाएँ खींची
सीमा में बांधने की चतुराई तो
उन्होंने नहीं किन्तु तुमने ही की है
भो भव्यो! समझो इस रहस्य को
और प्रतिज्ञा करो कि कभी भी
हम अपने आगम व आचार्यों के
वचनों की अवहेलना, नहीं करेंगे।

चाह है तो राह है -21

यदि उत्साह है तो चाह है
और चाह है तो राह भी है

सही राह पर चलोगे तो
तुमसे मंजिल दूर नहीं है

निश्चित ही तुम उसको
पाकर ही रहोगे और उसे

तुम एक दिन पा भी लोगे।

तू सफल होगा -22

यदि शुभ उत्साह है
और सही दिशा में
प्रयास है व प्यास है
तो समझो आस है

परीक्षा में तू पास है
सफलता तेरे पास है
ऐसा मेरा एक अटल
परिपूर्ण विश्वास है।

महाकाव्य बनाऊँगा -23

देर हुई है हो रही है
ये मेरी परिस्थिति है
परन्तु मैं जल बिन्दु
महाकाव्य बनाऊँगा,
अवश्य ही बनाऊँगा
और बनाकर रहूँगा
यह मेरी प्रतिज्ञा है।

रास्ता दिया -24

बनना तो कब से प्रारम्भ किया था
बनता पर बीच-बीच में अन्य-अन्य
ग्रन्थों के काम आये वे आगे बढ़े व
बढ़ते गए जल बिन्दु ने रास्ता दिया
तुम आगे बढ़ो मैं पीछे ही सही पर
बढ़ती रहूँगी प्रतिज्ञा पूरी करूँगी।

प्रतिज्ञा आत्माज्ञा है -25

प्रतिज्ञा आत्माज्ञा है जो
अपने आप में अटल
और निश्चल होती है
विघ्न बाधाओं से वह
सामना करती है उन्हें
हरा कर विजय पाती है
लक्ष्य में सफलता पाती
अतः प्रतिज्ञा कहलाती है।

प्रतिज्ञा में विकल्प नहीं -26

प्रतिज्ञा, एक मजबूत संकल्प है
पर वह विकल्प नहीं क्योंकि
विकल्प में भिन्न रास्ते होते हैं
जो भटकाने के वास्ते होते हैं
जिसमें प्राय: व्यक्ति भटकते हैं
राहों में अटकते व उलझते हैं
जाऊँ तो किधर जाऊँ सोच में
समय व परिश्रम व्यर्थ बिताते हैं
पर वे सफलता नहीं पा पाते हैं
मात्र पछताते पश्चाताप करके
सन्ताप बढ़ाते व आँसू बहाते हैं।

प्रतिज्ञा की एक ही राह -27

प्रतिज्ञा एक ही राह दिखाती
सदा सभी विकल्प मिटाती
सही-सही राह पर चलाती
जो सभी को अल्प समय में
व अल्प ही परिश्रम कराती
सफलता दिलाकर हर्ष लाती
और वह हर्षित होकर हर्षाती
संकल्प को वह सफल बनाती।

प्रतिज्ञा विश्वास दिलाती -28

प्रतिज्ञा कौन नहीं लेता? सभी तो लेते
जल बिंदु ने भी स्वेच्छा से प्रतिज्ञा ली
प्रतिज्ञा श्रोताओं और पाठकों को सदा
आस दिलाती विश्वास भी दिलाती कि
मैं यहाँ वहाँ की व्यर्थ बातें नहीं करूँगी
और न कोई बात कभी अधूरी कहूँगी
पर जो कहूँगी वो निराधार नहीं साधार
सप्रमाण कहूँगी स्व पर के हित कहूँगी।

लिखता रहूँगा -29

जल बिन्दु महाकाव्य को
लिखने की मैंने प्रतिज्ञा की
लिखूँगा और लिखता रहूँगा
तब तक मैं लिखता रहूँगा
जब तक कि यह पूर्णता को
सम्पूर्णता को प्राप्त न हो जाये
मैं सदैव लिखता ही रहूँगा।

सत्याग्राही बनूँगा -30

मैं सभी से सुझाव लूँगा
त्रुटि मिले सुधार लूँगा
अच्छे विचार मिले तो
उसे भी उर में धार लूँगा

न दुराग्रह करूँगा
न दुराग्रही बनूँगा
दुराग्रह को तज मैं
सत्याग्राही बनूँगा।

सारभूत कहूँगा -31

यद्यपि मैं यह भी जानता हूँ
समझता हूँ जल बिन्दु एक
ऐसा महाकाव्य है कि इसे
जीवन पर्यन्त व जीवन के

अन्त तक लिखता रहूँगा
मेरा लेखन और लेखनी
विराम नहीं पायेगी तो भी
मैं उसे अधिक विस्तृत नहीं

किन्तु उसे संक्षेप में कहूँगा
सार-सार व सारभूत कहूँगा।

स्वहितार्थ लिखूँगा -32

जो भी लिखूँगा सर्वप्रथम
वह स्वहितार्थ लिखूँगा
अपने योग व उपयोग के
सदुपयोग के हेतु लिखूँगा

सर्वप्रथम अपने हित और
कल्याण के लिए लिखूँगा।
मुझे विश्वास है कि
जो बात स्वकल्याणी होगी

वह नियम से पर कल्याण भी
करेगी और करती ही रहेगी।

कविताओं के फूल -33

मात्र मेरी भावनाओं ने ही
ये रंग-बिरंगे सुगंध से भरे
कविताओं के फूल उगाये
महाकाव्य को लिखने की
कला में, मैं अबला ही हूँ
फिर भी तबला की तरह
मैं जोरदार तान लगाऊँगा
जल बिन्दुकाव्य बनाऊँगा।

♦♦♦

चिंतन की राह -34

ये कविताएँ किसी औरों की नहीं
और न ही किसी की उधारी की है
वे निराधारी भी नहीं हैं परन्तु
वे आधार की नींव पर खड़ी हैं
चिंतन हमारा मुख्य आधार है
चिंतन आगम का आधार है
चिंतन ही तो करता उद्धार है
चिंतन ही करेगा भव पार है
चिंतन से चित्त की एकाग्रता
चिंतन से ही गति प्रगति आती
चिंतन शुभ मन से किया तो
निश्चित आत्मा का कल्याण है।

♦♦♦

जल बिंदु से स्वेद बिंदु - 35

स्वेद की बूँद
जलबिंदु को भी आई
और जलबिंदु में भी आई
कभी - कभी एक - एक
कविताएँ आ आकर
खूब नची और
टप टप कविताओं पर गिरी
पर फिर भी
कोई भी कविताएँ
उससे न रुकी
आगे बढ़ी और बढ़ती गई।

अध्यायन्त-मंगलाचरण

मैं वीर सुत हूँ व्रत वीर धारी,
मैं वीर पथ का हृदयानुरागी।
जल बिन्दु मैं महाकाव्य लिखूँगा,
प्रतिज्ञा ये लेता न उससे हटूँगा।।1।।

नायक रहेगा जल बिन्दु मेरा,
हर बिन्दुओं पर कविता लिखूँगा।
सामान्य से महा मानव बनाना,
उद्देश्य मेरा अडिग ही रहूँगा।।2।।

हर विघ्न की मैं परीक्षा भी दूँगा,
प्रत्येक बाधाओं को मैं सहूँगा।
अभ्यास मेरा है ये पुराना
लिखूँगा लिखूँगा लिखता रहूँगा।।3।।

न पराजित कभी तुम हुए हो जहाँ पे,
अजितनाथ! हे नाथ! तुम मेरे यहाँ पे।
तुम्हारे ही आशीष पाकर के मैं ये,
जल बिन्दु महाकाव्य लिखूँगा प्रतिज्ञा।।4।।

(प्रथम खण्ड में- सातवाँ अध्याय समाप्त)

अध्याय 8-:महिमा

अनुक्रमणिका

जीवित शास्त्र है ये
01 वास्तविक महिमा
02 बोध भरा महाकाव्य
03 शास्त्रों का सार है ये
04 जल बिन्दु रत्नाकर है
05 रत्नाकर के रत्न
06 जल बिन्दु के रत्न
07 नकल नहीं
08 शकल ही रहती
09 काव्य तपस्या
10 शब्दों का जाल नहीं
11 शान्ति प्रदाता महाकाव्य
12 सीढ़ी चढ़ाने वाला महाकाव्य
13 स्व पर हितकारी महाकाव्य
14 वाद रहित महाकाव्य
15 माँ समान महाकाव्य
16 शाश्वत इतिहास
17 अमिट स्वरूपा
18 स्वहित बिना
19 स्व पर हितकारी
20 जीने की कला सिखाने वाला
21 क्या है जल बिन्दु महाकाव्य
22 शिक्षा देता महाकाव्य
23 ऐसा है महाकाव्य
24

25 महाकाव्य महिमा
26 एकता का शंखनाद
27 संकीर्णता से परे
28 उदारता से भरा
29 सूत्र-सिद्धांत-गाथा-श्लोक
30 स्लोगन
31 सीख जल बिन्दु का
32 जल बिन्दु मोतीवत्
33 खलों में भी खल
34 जल बिन्दु महाकाव्य
35 अंग-अंग ऐसा था
36 दृष्टि-दृष्टि में फेर था
37 जो रंग-बिरंगी मीठी थी
38 वैराग्य
39 ऐसी हैं कविताएँ
40 राष्ट्रीय भाषा में
अध्यायान्त-मंगलाचरण

जीवित शास्त्र है ये -01

जल बिन्दु महाकाव्य
धर्म का सु-सार है
मुक्ति का भी द्वार है
और भगवान से ही
पवित्र भावनात्मक
सीधा साक्षात्कार है
जलबिन्दु में समाहित
महापुराण, गोम्मटसार,
श्रावकाचार, मूलाचार,
नीतिसार, समयसार है
जो सुख-शान्ति तथा
आनंद का भण्डार है
जिसने भी इसको जाना
सुना, सुनाया, पढ़ाया
अनुसरण किया, समझो
उसका बेड़ा पार हुआ।

♦♦♦

वास्तविक महिमा -02

महिमा केवल ऊपर से
थोपी हुई ही नहीं, किन्तु
वास्तविक होनी चाहिए
तभी वह सत्य होती और
सत्य को सिद्ध करती है।

♦♦♦

बोध भरा महाकाव्य -03

यह जल बिन्दु महाकाव्य
सुसंस्कार जगाने/पाने का
कुसंस्कारों को मिटाने का
सदाचार,नैतिक-शिष्टाचार
जीवन विकास का सार है
गणित,पर्यावरण,व्याकरण,
जीव-भौतिक विज्ञान, हिंदी,
साहित्य,काव्य के अंग,रस,
छंद और अलंकारों से भरा
जल बिन्दु एक महाकाव्य है
संतवाद, पंथवाद, जातिवाद,
समाजवाद, मत-सम्प्रदायवाद
ईश्वरवाद,राष्ट्रवाद तथा सभी
परवाद की संकीर्णताओं से व
वाद-विवाद, विसंवादों से परे
जन-जन ने एक स्वर में कहा
उत्तम बोध और बोधि से भरा
यह "जल बिन्दु महाकाव्य" है।

शास्त्रों का सार है ये -04

जल बिन्दु श्रेष्ठ महाकाव्य है
जीवन से जीवनी तक की
जन्म से तथा मरण तक की
बहत्तर कलाओं का शास्त्र है
समाज, धर्म, अर्थ, काम और
मोक्ष मार्ग का भी शास्त्र है ये
बाल, युवा, वृद्ध अवस्था का
बाला, युवती, वृद्धा का एवं
सौभाग्यवती व विधवाओं का
जीवन विधाता शुभ शास्त्र है ये
माता-पिता, बेटा-बेटी अथवा
भाई-बहनों का जाग्रत शास्त्र है ये
शासन और प्रशासन के लिए भी
सामाजिक, राजनैतिक व धार्मिक
लोगों का समाजनीति, राजनीति
तथा धर्मनीति का भी शास्त्र है ये।

♦♦♦

जल बिन्दु रत्नाकर है -05

सागर एक रत्नाकर है
जिसमें तरह-तरह के भी
अनेकों ही रत्न होते हैं
जल बिन्दु भी रत्नाकर है
चूंकि इस महाकाव्य में भी
अनेकों तरह के बहुमूल्य
रत्न-महारत्न प्राप्त होते हैं
इसलिये यह भी
शिक्षाओं से भरा रत्नाकर है।

♦♦♦

रत्नाकर के रत्न -06

रत्नाकर में तो अनेकों मणियाँ,
बहुमूल्यवान रत्न पाये जाते हैं
जैसे- स्फटिक, पारस, मसार,
लाजावर्त, उपलक आदि मणि,
तथा मूंगा, मोती, पन्ना, पुखराज,
नीलम, मरगज, फिरोज, माणिक्य,
वैडूर्य आदि रत्न भी पाये जाते हैं
अत: वह रत्नाकर कहा जाता है।
परन्तु वे सब अचेतन ही होते हैं
चेतना से परिपूर्ण शून्य होते हैं
यह सत्य है कि वे अचेतन भी
चैतन्य की चेतना बन जाते हैं।

♦♦♦

जल बिन्दु के रत्न -07

रत्नाकरवत् ही जल बिन्दु

महाकाव्य एक रत्नाकर है
इसमें भी अनेकों मूल्यवान
मणियाँ रत्न समाविष्ट हैं जैसे
नागरिकों को नागरिक-शास्त्र,
सामाजिकों को समाज-शास्त्र,
अर्थ वादियों को अर्थ-शास्त्र
धार्मिकों के लिए धर्म-शास्त्र,
नीतिकारों को नीति-शास्त्र,
न्यायाधीशों को न्याय-शास्त्र,
राजाओं को राज नैतिक-शास्त्र,
योगियों को अध्यात्म-शास्त्र
सांस्कृतिकों को संस्कृत-शास्त्र
आदि सभी शास्त्र ही तो इसके
बहुमूल्य रत्न अथवा मणियाँ हैं
इसलिए जल बिन्दु महाकाव्य भी
नियमत: एक महा रत्नाकर का आकार है।

नकल नहीं -08

जल बिन्दु
महाकाव्य
किसी भी
काव्य या
महाकाव्य की
नकल नहीं है
ना वह कल थी
न आज है और
न कल रहेगी
इस निर्युक्ति से
नकल होते हुए भी
वह नकल नहीं है।

♦♦♦

शकल ही रहती -09

नकल बे-अकल होती है
इसलिए वह कभी सकल[1]
नहीं बन पाती किन्तु सदैव
शकल[2] ही बनी रहती है वह
कभी भी आगे नहीं बढ़ पाती
और न किसी को बढ़ने देती।
झूठे अहंकार में वह
अकड़कर खड़ी रह जाती
कभी भी आगे बढ नहीं पाती ।

♦♦♦

1- सकल = सम्पूर्ण। 2- शकल = टुकड़ा।

काव्य तपस्या -10

जल बिन्दु-महाकाव्य की ही
शुभ महिमा को मैं बता रहा हूँ।
राई को पर्वत नहीं और न ही
कंकर को शंकर बना रहा हूँ।।

किन्तु बिन्दु सिंधु कैसे बनती है
बनने की पूर्ण विधि बता रहा हूँ।
काव्य से मैं महाकाव्य बनाने की
तपस्या व कला को सुना रहा हूँ।।

काव्य केवल दूसरों के द्वारा नहीं,
किन्तु स्वयं उसको बना रहा हूँ।
काव्य लेखन में मन लगा रहा हूँ
सफलता पा हर्षित हो हर्षा रहा हूँ।।

शब्दों का जाल नहीं -11

जल बिन्दु महाकाव्य मात्र
शब्दों का जाल नहीं और
न जाली है, चूंकि जाल तो
दूसरों को फंसाता /उलझाता
या फिर उधारी के शब्दों से
उधारी बढ़ाता अथवा जाली
नकली, नकलची बनाता है।

शान्ति प्रदाता महाकाव्य -12

यह जल बिन्दु महाकाव्य
जन-जन को समझाता व
समझा-समझा कर यह
राष्ट्रीय भाषा में ही सीधी
सुगम राह दिखाता और
हितकारी बात समझाता
दुख मिटाता शान्ति का
पथ दिखा शान्ति दिलाता
तभी तो नीतियों से भरा ये
शान्ति प्रदाता भी कहाता।

सीढ़ी चढ़ाने वाला महाकाव्य -13

यह जल बिन्दु महाकाव्य कोई ऐसा
अनपढ़ या अनगढ़ पत्थर नहीं कि
उसे कहीं से भी पढ़ा या गढ़ा जाये
पर सुयोग्य शिल्पी की तरह देखा
परखा व तरासा गया यह पत्थर है
जिसमें यथास्थान ही हाथ, पैर, आँख
नाक, कान व पैर बनाये कोई भी
पाठ कहीं से नहीं लिखवाये
किन्तु क्रमश: ही इसलिए
सीढ़ी दर सीढ़ी चढ़ाने वाला
ऊँचाई दिलाने वाला यह महाकाव्य है।

●●●

स्व पर हितकारी महाकाव्य -14

जल बिन्दु महाकाव्य
किसी की नकल नहीं
न स्पर्धा न प्रतिस्पर्धा से
अपितु सहज भावों से
लिखा गया यह स्व पर
हितकारी महाकाव्य है।
मान न सम्मान के लिये
प्रशंसा न प्रतिष्ठा के लिये
केवल उपयोग स्थिरता के लिये
लिखा गया महाकाव्य है ये ।

●●●

वाद रहित महाकाव्य -15

जल बिन्दु महाकाव्य में
जातिवाद, सम्प्रदायवाद,
समाजवाद, सन्तवाद,
पंथवाद, संघवाद या
फिर परम्परावाद नहीं
पर समस्त वाद-विवाद,
संवादों को जड़मूल से
समाप्त करने वाला ये
सुन्दर सा महाकाव्य है।

💧💧💧

माँ समान महाकाव्य -16

जल बिन्दु महाकाव्य में
बालहित है, युवाहित है,
नारीहित है, वृद्धहित है
जाति, समाज, धर्म और
व्यक्तिहित है ग्राम, नगर,
देश व राष्ट्र का हित है
अत: स्व पर हितकारी
माँ की तरह महाकाव्य है ये।

💧💧💧

शाश्वत इतिहास -17

जल बिन्दु महाकाव्य ध्रुववत् शाश्वती है
उसका कभी भी ह्रास
अथवा अभाव न हुआ
और न कभी होगा ही
उपहास भी नहीं होगा
यही एक मात्र उसका
शाश्वत पूर्ण इतिहास है।

♦♦♦

अमिट स्वरूपा -18

बिन्दु मिट भी सकती है
परिवर्तित हो सकती है
परन्तु बिन्दु का बिन्दुत्व,
कभी नहीं मिट सकेगा
कूप, बावड़ी, सर, सरिता
सिंधु में भी शाश्वत रहेगा
इसलिए ही तो वह सदा
अमिट स्वरूपा शाश्वता है।

♦♦♦

स्वहित बिना -19

पर कल्याण यदि स्वहित से
वंचित है विरहित है तो वह
बाहर से भले ही हँसी लायेगा
तालियाँ बजवायेगा, रुपया व
नाम, प्रशंसा को भी पायेगा/कमायेगा
परन्तु वह कभी भी अपना, स्व
आत्म कल्याण नहीं कर पायेगा।

♦♦♦

स्व पर हितकारी -20

यह जल बिन्दु महाकाव्य
स्व पर कल्याणकारी है
सर्वप्रथम स्वयं का फिर
दूसरे का भी हितकारी है
इसीलिये ये प्रभाव शाली
आत्म हितकारी है ये।

♦♦♦

जीने की कला सिखाने वाला -21

जल बिन्दु महाकाव्य केवल
कविताओं का भंडार ही नहीं,
किन्तु जगत को सम्यक् जीवन
जीने की कला सिखाने वाला
महत्वपूर्ण सुगम सरल भाषा में
लिखा गया एक महाकाव्य है।

♦♦♦

क्या है जल बिन्दु महाकाव्य -22

जल बिन्दु महाकाव्य सम्यक्
जीवन राह दिखाता भानु है
थकान मिटाता पूर्णिम चाँद है
तनाव मिटाता तारा मण्डल है।

जल बिन्दु महाकाव्य! एक
जिन अथवा निज दर्शन है
मिथ्यात्व नाशक सुदर्शन है
गुरू के पूज्यनीय चरण है।

यह जल बिन्दु महाकाव्य ही
कदम-कदम चलना सिखाता
जिनवाणी माँ का आचरण है
सभी का सम्यक्त्वाचरण है।

यह जल बिन्दु महाकाव्य!
मुनिराजों का जीवन दर्शन है
सद्गृहस्थों का मार्गदर्शक व
सरस्वती वीणा की झंकार है।

यह काव्य! प्राकृतिक सौन्दर्य
प्रसन्नता से भरा एक उपवन है
शुद्ध पर्यावरण मंगल वातावरण
सभी के लिए पवित्र आचरण है।

शिक्षा देता महाकाव्य -23

जल बिन्दु तत्त्व, द्रव्य, पदार्थ
और विश्व को समझाती तो
कभी कर्म सिद्धान्त अथवा
कभी अध्यात्म पथ बताती।

शलाका पुरुषों के गीत गाती
तो कभी उनके वृतान्त सुनाती
कभी माँ बन अंगुली पकड़कर
चलकर मुझे चलना भी सिखाती।

कभी वह शासक की तरह
शासन करती कभी प्रजा बन
सभी पर अनुशासन को जताती
तभी सभी से वह सम्मान पाती।

ऐसा है महाकाव्य -24

जल बिन्दु महाकाव्य!

पिता का काव्य रस है

माँ के अलंकार और

अंग-अंग से बरसते

नव रसों का भंडार है

जल बिन्दु महाकाव्य!

हम सबकी व्यथा है

भटकने की कथा है

राह बताने वाले तरीके

सिखाने वाली श्रुत की

जीती जागती रिचा है

जल बिन्दु महाकाव्य!

बाल वृद्धों का आधार है

जीने की कला सिखाता

कैसे उठें? बैठें? चलें?

सोयें?बोलें?और खायें?

सिखाने वाला महाकाव्य है।

महाकाव्य महिमा -25

जल बिन्दु महाकाव्य!

आगम,न्याय,दर्शन है,

साहित्य है,व्याकरण है,

अध्यात्म व नीतियों से

भरा हुआ महाशास्त्र है।

♦♦♦

एकता का शंखनाद -26

जल बिन्दु महाकाव्य!

व्यक्ति को व्यक्ति से

परिवार को परिवार से

समाज को समाज से

तथा राष्ट्र को राष्ट्र से

जोड़ने वाला काव्य है।

♦♦♦

संकीर्णता से परे -27

जल बिन्दु महाकाव्य!

मन, मत,पंथ, परम्परा,

जाति और सम्प्रदाय की

संकीर्णता नहीं, किन्तु

आकाशवत् हृदय की

विशालता व उदारता है।

♦♦♦

उदारता से भरा -28

यह जल बिन्दु महाकाव्य!
जिनवाणी, वेद, पुराण है,
बाईबिल, कुरान बोलती
गीता, भागवत, गुरुग्रंथ है
शब्द शास्त्र अर्थ शास्त्र है
भूगोल व खगोल शास्त्र है।

●●●

सूत्र-सिद्धांत-गाथा-श्लोक -29

यह जल बिन्दु महाकाव्य!
"परस्परोपग्रहो जीवानाम्" सूत्र
"जियो और जीने दो" सिद्धांत
"अहमिक्को खलु शुद्धो" गाथा
"सर्वे भवन्तु सुखिन:" श्लोक है।

●●●

स्लोगन 30 Slogan

राईट इज माईट	Right is might
नो पेन नो गेन	No pain no gain
ट्रुथ इज गॉड	Truth is god
कैरेक्टर इज स्वीट	Character is sweet

सिखाने वाला शास्त्र है।

●●●

सीख जल बिन्दु की -31

यह जल बिन्दु महाकाव्य!

पेट को श्मशान / कब्रिस्तान

गन्दगी से भरा कचरा घर या

गटर का गड्ढा मत बनाओ

सिखाने वाला महाकाव्य है।

♦♦♦

जल बिन्दु मोतीवत् -32

शुभ मंगल मयी बेला में
घने काले-काले मेघों में
चमकती बिजली में,
गरजते बादलों में,
बरसते पानी में,
शुद्ध जल बिन्दु है ये
तो कभी शिशिर ऋतु में,
निरभ्र आकाश मंडल में,
रात्रि के अंतिम पहर में,
हरी-हरी घास पत्तों में,
प्राय: बरसती है ये।
स्वेत मोतीवत् चमकता
जल बिन्दु महाकाव्य है।

♦♦♦

खलों में भी खल - 33

पर वे स्वेत थी
स्वेद कभी नहीं थी
स्वेद तो खेद लाती
जल बिंदु उसे समझाती
रे स्वेद !
तू खल ही नहीं
खलों में भी खल
महाखल है
भक्तों की भक्ति
आराधना में
आ जाता
और खलबली
मचा जाता ।

जलबिन्दु महाकाव्य -34

ज - जनम-जनम के सभी पातक
ज- जन्म-मरणादि दोषों के विजेता
ज- जन-जन नायक हे जिन आपकी
ज- जय हो, जय हो सदैव जय हो
ल- ललाट पर तिलक स्वरूप हो
ल- लवंगवत् चिट पिटे नहीं, तथा
ल- लवणवत् खारे नहीं आप तो
ल- लब्धि हो हमारे लिए लभ्य हो
बि- बिम्ब हो मूर्तिक, अमूर्तिक हो
बि- बिंदी सौभाग्य के आभूषण हो
बिन्- बिन्दु से सिंधु तक के यात्री हो
दु- दुश्मनों पर विजय पाने वाले हो
मा- मान, माया मर्दक महावीर हो
हा- हारी, कर्मों को हराने वाले हो
का- काव्य के प्रणेता तो आप ही हो
व्य- व्यय शक्ति का तेरी भक्ति में हो।

अंग-अंग ऐसा था -35

जल बिन्दु का बचपन बीता ही था
नवयौवन का शुभारम्भ हुआ था
सुन्दर आंगोपांगों में निखार हुआ था
जिसे देखने को संसार निहारता था
कोई चन्द्र सम उसका वदन देखता
मृगनयनों को नयनों से मिलाता तो
कोई शुक-नासिका देख हर्षाता
कोई कपोलों पर दृष्टि पात करता
धनुषाकार ऊर्ध्व ओष्ठ को देखता
तो कोई बिम्बवत् अधरोष्ठ देखता
वार्ता करते हुए कोई पुष्पदन्त देखता
कोई शंखसम उसका कंठ देखता
किसी ने माथे का सिन्दूर देखा तो
किसी ने जल बिन्दु की बिन्दी देखी
कोई उसकी लम्बी भौंह देखता तो
कोई मंद मुस्कान भरे नेत्र देखता
बस-बस बहुत तो देखते न अघाते
निहारते-निहारते टक टकी लगाते।
और लगाते-लगाते ही रह जाते
पर उससे कोई दृष्टि न हटाते।

दृष्टि-दृष्टि में फेर था -36

लाल और दीर्घ जिसके कर्ण थे
पल्लू के खिसकने से जो सभी को
क्षणिक सहज ही दिख जाते थे व
भिन्न आकृति के स्वर्णाभूषण

अलग ही अपनी शोभा बढ़ाते थे
कुम्भ कर्ण मात्र नाम का ही था
पर उसके कर्ण काम के भी थे
रत्न आभूषणों से जो संयुक्त थे

स्वर्ण आभूषणों से सजे हुए थे
जो रागियों के लिए दम हारी थे
और वेद वेदनाकारी भी थे पर
वीतरागियों के लिए सदा ही ये

सभी ओर से वैराग्य लिए हुए थे
और विकृत दृष्टि से ओझल थे ।

जो रंग-बिरंगी मीठी थी -37

ये सभी नवयौवना जल बिन्दुएँ
एक नहीं, संख्या में अनेक थीं
सभी की अपनी आकृतियाँ थीं
जो सभी को आकर्षित करती थीं
कभी कोई उसमें रंगों को भरता
नारंगी समान रंग बिरंगी करता
कोई-कोई भिन्न-भिन्न सुगन्धित
द्रव्यों से उसे सुगन्धित करता
जिसकी गन्ध दूर तक जाकर
लोगों को आकर्षित करती तो
कुछ ऐसे भी लोग थे जो उसमें
मिश्री घोलते व घोल-घोल कर
उसको मीठा स्वादिष्ट बनाते थे
न चाहतों में भी चाहत लाते थे।

वैराग्य -38

ये सब रागियों का ही राग रंग था
रागियों ने ही उसे रागी बनाया था
स्व रुचि से ही रोचक बनाया था
पर वह वास्तविक अनासक्त थी
न उसका पूर्व से कोई राग था
न उसने कोई राग स्वीकारा था
न वह कभी रागान्ध दिखी थी
सत्य वह राग को बन्ध मानती थी।

ऐसी हैं कविताएँ -39

मिश्री से भी अधिक मिष्ट
जल बिन्दु की कविताएँ
अमृत समान मनोहारी हैं
वे लोहवत् भारी नहीं पर
अर्कतूल वत् हलकी भी हैं
और वे सरल सुपाच्य तथा
मन हल्का करने वाली हैं।

♦♦♦

राष्ट्रीय भाषा में -40

इसमें शब्दों का जाल नहीं
कर्कश और कठोरता नहीं
कठिन-कठिन शब्द नहीं
उलझाने का कोई अर्थ नहीं
राष्ट्रीय भाषा है इसकी
भारतीय भाषा है इसकी
हिन्दी हिन्दुस्तानी भाषा है
सरलता की ये परिभाषा है
जब-जब इसको पढ़ते
पढ़ते ही पढ़ते चले जाते
केवल पृष्ठों को नहीं पलटते
पवित्र ध्यान से पढ़ते
पढ़कर रसपान करते।

♦♦♦

अध्यायान्त-मंगलाचरण

शूलों में जैसे गुलाब खिलता,
फूलों से जैसे मकरन्द झरता।
सुन्दर भी होगा, सुगन्धित भी होगा,
जल बिन्दु महाकाव्य ऐसा ही होगा।।1।।

दीपक की जैसे जाज्वल्य ज्योति,
स्व-पर प्रकाशी अन्धकार हरती।
स्व-पर प्रकाशी ये हितकारी होगा,
जल बिन्दु महाकाव्य ऐसा ही होगा।।2।।

यथा प्राण दायी है प्राण वायु
यथा प्राणियों की परिपूर्ण आयु
तथा ग्रन्थ मेरा सदा ही रहेगा
जल बिन्दु महाकाव्य ऐसा ही होगा।।3।।

ताराओं के मध्य चन्दा रहा है
परिपूर्ण पूनम निशा में दिखा है
बरसा सुधा की जहाँ पर करेगा
जल बिन्दु महाकाव्य ऐसा ही होगा।।4।।

सम्भव नाथ जब हैं हृदय में मेरे
असम्भव फिर क्यों होंगे अन्धेरे।
देवताओं द्वारा नमस्कृत भी होगा
जल बिन्दु महाकाव्य ऐसा ही होगा।।5।।

(प्रथम खण्ड में- आठवाँ अध्याय समाप्त)

अध्याय 9-: जलन

अनुक्रमणिका

01 जलन लघुहृदय को
02 वरनाल
03 जल बिन जलता
04 जलन खाक कर देती
05 जलन की दवा नहीं
06 आश्चर्य है!
07 जीते जी जलाती
08 जलन सोच बदलती
09 राई को पहाड़ बनाती
10 जलन की दृष्टि
11 काँच हटे भ्रम मिटे
12 जलन मिटे तो जलो
13 काँच धोती की नहीं
14 अज्ञानी ही जलते हैं
15 काँच को काँच समझो
16 विशाल हृदया जल बिन्दु
17 विशालता
18 मौन के सम्मुख मौन
19 जबान
20 सुधारने लायक को सुधारती
21 ज्वलन
22 लाईन मिटाओ नहीं, खींचो
23 ईर्ष्या खटकती रहेगी
24 समझ ही सोच बदल देती

25 गज गति
26 मैं स्वीकार करूँगा
27 ऐसे नहीं बनना
28 तरीका भी सीखो
अध्यायान्त-मंगलाचरण

जलन लघु हृदय को -01

"जल बिन्दु महाकाव्य" को पढ़
सुनकर सभी को प्रसन्नता होगी
निश्चित ही प्रसंग पा खुशी होगी
पर कतिपय लघु-वय,लघु-हृदय,
बाल-बुद्धियों को पीड़ा भी होगी
द्वेष, ईर्षा और जलन भी होगी, पर
जल बिन्दु उनके लिए जलाशय व
जलोदधि बनकर जलन मिटायेगी
और सदा मिटाने का प्रयास करेगी
यदि जलन मिटी तो प्रसन्न होगी
अन्यथा भाव भरी साम्यता रखेगी।

♦♦♦

वरनाल -02

जलन जल से ही नहीं मिटती
किन्तु उसको मिटाने के लिए
विवेक वरनाल भी चाहिए।

♦♦♦

जल बिन जलता -03

प्राणी ईर्षा कर
व्यर्थ ही जलता
जल बिन जलता
सब कुछ खोता
यदि विवेक जल
उसको मिलता तो
कभी भी न जलता
न ही जलन करता
मात्र शीतल-शीतल
जल ही जल वह होता।

●●●

जलन खाक करती -04

जलन एक ऐसी आग है
जो बाहर से नहीं दिखती
किन्तु अन्दर ही अन्दर
सब कुछ जला देती है
सब-खाक कर देती है
कुछ भी तो नहीं बचाती
और न कभी बचने देती।

●●●

जलन की दवा नहीं -05

हम आग से जलते हैं पर दुनियां
बिना आग के जला करती है
आग की जलन मिटाने वाली
बहुत सी दवायें हुआ करती हैं
जो बाजार में या मेडिकल में
निश्चित रूप से मिला करती हैं
परन्तु बिना आग के जलन की
कोई दवायें नहीं हुआ करती हैं
और न ही वे किसी बाजार में,
या मेडिकल में मिला करती हैं।

♦♦♦

आश्चर्य है ! -06

तुम्हारी जलन से किसी का
कुछ भी नहीं बिगड़ता
आश्चर्य है फिर भी तुम
जलते जा रहे हो और
अपना ही तो सब कुछ
स्वयं जलाते जा रहे हो
भो भव्यो! कब मिटेगी
तुम्हारी यह अज्ञानता
जलाने वाली तेरी ये
भीषण जाज्वल्यता।

♦♦♦

जीते जी जलाती -07

आग की जलन तो सदा
शीघ्र ही मिट सकती है
पर बिन आग की जलन
इतनी शीघ्र नहीं मिटती है
आग की जलन प्राणी की
थोड़ी ही क्षति करती है पर
बिना आग की जलन तो
बहुत-बहुत क्षति करती है
जलने वाले को सुखाती है
चिंता में, नींद-भूख नशाती
कमजोरी लाती,रोगी बनाती,
प्राणी को जीते जी जलाती है
और नियम से वह एक दिन
उसे श्मशान की ज्वलन तक
शीघ्रातिशीघ्र ही पहुँचाती है।

जलन सोच बदलती -08

जलन मन, मस्तिष्क में जाती
क्षोभ मचाती, सोच बदलती
रोश से भर, बेहोश करती
वदन की, प्रसन्नता नशाती
रूक्षता ला, चेहरा बिगाड़ती
स्वरूप और रूप में विद्रूपता
ला-लाकर भरती ही जाती
एक मात्र केवल एक जलन
सब कुछ बिगाड़ती-बिगाड़ती
अन्त में स्वयं ही विनश जाती।

♦♦♦

राई को पहाड़ बनाती -09

जलन जब भी पैर फैलाती,
मुख और भाषा बिगाड़ती,
व्यवहार में रूखापन लाती,
शब्दों के कर्कश बाणों का
तरकश बनाती, दृष्टि मोड़ती,
दोषों को खोजती, दिखे-मिले
तो उन्हें राई का पहाड़ बनाती
फैलती-फैलती नियम से और
वह एक दिन फेल हो जाती।

♦♦♦

जलन की दृष्टि -10

जलन की दृष्टि
रंगीन चश्मेवत्
नारंगी को भी
रंगीन देखकर
रंगीन बनाती
सच-सच कहती
मुझे हर वस्तु
ऐसी ही दिखती
और दिखेगी भी
दिखती ही रहेगी
पर वह तभी तक
जब तक आँखों पर
रंगीन काँच होगा
तभी तक ही तो,
वस्तु रंगीन दिखेगी।

♦♦♦

काँच हटे,भ्रम मिटे -11

सुनो!दोष चश्मे का नहीं
किन्तु रंगीन काँच का है
जो प्राणी को बेहोश कर
सत्य को असत्य दर्शाता
व असत्य को सत्य तथा
दर्शकों को झूठा बनाता
जब काँच हटेगा तो फिर
सत्य, सत्य ही दिखेगा व
असत्य,असत्य ही दिखेगा
और असत्य में सत्य का
तथा सत्य में असत्य का
पूर्ण रूप से भ्रम मिटेगा।

♦♦♦

जलन मिटे तो जलो -12

जलो तो इतना जलो कि
जलना शेष न रहे और
वह उस जलन को ही
सदा-सदा के लिए जला दे।

♦♦♦

काँच, धोती की नहीं -13

काँच हटाओ, काँच हटाओ पर
आप धोती की काँच हटाते हो
धोती से लुंगी पर आ जाते हो
उत्तर भारत से दक्षिण भारत में
बेरोक बढ़ते ही चले जाते हो पर
आप कहीं भी चले जाओ
तुम अपनी प्राचीन संस्कृति को
देश की संस्कृति को मत गवाओ
अन्यथा तुम बदलते-बदलते रहे
तो फिर बहुरूपिया कहलाओगे
नहीं तो दलबदलू कहलाओगे
न यहाँ से न वहाँ से कहीं से भी
विश्वास को कभी भी न पा पाओगे।

अज्ञानी ही जलते हैं -14

अज्ञानी ही जलते हैं क्योंकि
अज्ञान से ही तो वे जलन व
ज्वलन को उत्पन्न करते और
फिर उसी में वे जलते-जलते
पर कर्मी को नहीं जलाते
प्रतिक्षण बांधते और बांध बांध कर
उष्ण नरक जाते रहते हैं और वहाँ पर फिर
जीवन भर जलते ही रहते हैं।

काँच को काँच समझो -15

काँच को काँच समझे बिना
उपहास ही पाओगे इसलिये
धोती की काँच नहीं, अपितु
चश्मे का रंगीन काँच बदलो
बदलने की कोशिश भी करो
बदलो पर कभी बदला मत लो,
बदलो प्रथम स्वयं को बदलो
कभी भी स्वयं को बदले बिना
किसी दूसरे को भी बदलने की
तुम कदापि कोशिश मत करो
अन्यथा तुम उसके हितैषी नहीं
किन्तु उसे गहरे गर्त में गिराओगे
और गिराने वाले ही कहलाओगे
पत्थर की नाव की तरह स्वयं भी
डूबोगे और,औरों को भी डुबाओगे।

विशाल ह्दया जल बिन्दु -16

जल बिन्दु छोटी बहुत छोटी है
परन्तु उसका ह्दय छोटा नहीं है
अपितु विशाल बड़ा विशाल है
इसलिए वह कभी भी विकराल
काल के गाल में नहीं जायेगी
काल और काल समान प्राणी
ईर्षालु प्राणी भी उसके सम्मुख
नतमस्तक होंगे और मौन होंगे
जिसके मन, वचन व व्यवहार
विशाल होते उसके लिये सभी
अपने ही अपने सगे लाल होते
फिर कोई भी विकराल नहीं होते।

♦♦♦

विशालता -17

विशालता मात्र कद की नहीं
न ही कदमों की होनी चाहिए
वह व्यक्ति कि नहीं, किन्तु
व्यक्तित्व की होना चाहिए।

♦♦♦

मौन के सम्मुख मौन -18

मौन के सम्मुख
यह मौन रहती
अपने आप में
मौन साधती व
साधना बढ़ाती,
पर यदि कभी
किसी ने कुछ
बोला तो यह
मौन खोलकर
बोलती और
उसकी बोलती
बंद कर देती।

♦♦♦

जबान -19

जबान मिलाना अच्छी बात नहीं पर
जब किसी की जबान बन्द न हो तो
बेबस जबान खुलती ही है और उसे
खुलना भी चाहिए ताकि सामने वाला
तुम्हें वृद्ध न समझे जबान ही समझे।

♦♦♦

सुधारने लायक को सुधारती -20

जल बिन्दु !
इतनी अहंकारी भी नहीं है
कि किसी की एक भी न सुनती हो,
नहीं-नहीं ऐसा भी नहीं है, किन्तु
वह शांत रहकर सभी की सुनती
गुनती, अच्छी बात स्वीकारती
यदि सुधारने लायक कुछ हो तो
उसे प्रथम सोचती, ग्रहण करती
और वह बिगड़ी को सुधारती,
व्यर्थ बात एक कान से सुनकर
दूसरे कान से बाहर निकालती,
स्वयं समझदारी का परिचय देती
इसलिए वह समझदार कहलाती।

♦♦♦

ज्वलन -21

जलन से जलते ही न रहो किन्तु
तुम ऐसी भी ज्वलन पैदा करो कि
जिसमें कूड़ा-कचरा ही न जले पर
आत्मा में लगे हुए अनादि कालीन
दोष अपराध तथा कर्म भी जलें तो
जलना और जलाना भी सार्थक है।

♦♦♦

लाईन मिटाओ नहीं-खींचो -22

किसी की भी वृद्धि
यह उसका पुण्य है
जो उसके ही द्वारा
पूर्व में किये गये शुभ
कर्मों का ही फल है
वह उसको मिलेगा
नियम से ही मिलेगा
हमारे जलने मात्र से
न ही किसी का पुण्य
घट सकता है और न
हमारा बढ़ सकता है
तो फिर जलन क्यों
किसी बड़ी लाईन को
मिटाना क्यों? उसको
मिटाने की अपेक्षा तुम
अपनी ही बड़ी व सही
लाईन खींचते क्यों नहीं।

ईर्ष्या खटकती रहेगी -23

जल बिन्दु महाकाव्य देखकर,
पढ़कर, सुनकर ईर्षालुओं को
ईर्ष्या होगी ये लाईन मेरी लाईन को
छोटी क्यों कर रही है इसलिए
उसे मिटाने की दोष खोजने की
छोटे पन की हरकत भी होगी
परन्तु इस हरकत से यह लाईन
छोटी हो या न हो सके परन्तु
छोटी हरकत करने वालों का
छोटापन जरूर लोगों के मन में
सदैव-सदैव खटकता ही रहेगा।
और मुस्कुराकर कहेगा कि
किसी की छोटी हरकतों से भी
कभी भी कोई फर्क नहीं पड़ेगा ।

समझ ही सोच बदल देती -24

मुझे विश्वास है छोटे पन की
सोच या फिर किये गये कार्य
अधिक समय तक नहीं चलते
ज्ञान होने पर या फिर किसी भी
ज्ञानी को पा तिरोभूत हो जाते
होश आते ही समझ में आता है
वो पुरानी सोच बदल जाता है।

गज गति -25

मेरे इस महाकाव्य को देखकर
मति मंदों की मती में हँसी रूप
ईर्ष्या स्पर्धा भी जागेगी जगायेगी
इसकी महिमा देखी न सुहायेगी
मुख भी फुलायेगी या उपहास की
तालियाँ बजवायेंगे और बजवायेगी
पर वे मेरे कोई काम न आयेगी
कौन कब कहाँ क्या कहता है
हाथी इसकी परवाह कहाँ रखता
वह अपने गति से चलता ही चलता जाता है
आगे आगे बढ़ करके
निज गंतव्य तक पहुँच जाता है।

मैं स्वीकार करूँगा -26

ईर्षालु यदि इस महाकाव्य को देख
स्वयं अपनी आग से जलेगा तो मैं
उसे बुझाने पानी लेकर खड़ा रहूँगा
कोई दोष दृष्टि यदि दोष निकालेगा
दुनियाँ भर को नहीं, मुझे बतायेगा
तो भी मैं खुशियाँ मनाऊँगा और
उन दोषों को शीघ्र ही निकालूँगा
और महाकाव्य को निर्दोष बनाऊँगा
यदि कोई इसमें दोष निकालेगा भी
तो दोष उसका नहीं, अपितु अपने ही
प्रमाद व अज्ञान का मानूँगा उसका
मैं अहसान मान दोष सुधार करूँगा
मैं मानूँगा उसका ये विशाल चित्त है
मत्त, उन्मत्त नहीं उदार व उपकारी है
मैं मानूँगा कि अल्प धी से गलती होती
निश्चित ही होती /होना स्वाभाविक है
जो बतायेगा उसका मैं उपकार मानूँगा
बिना किसी को कुछ कहे सुधार देगा
उसे मैं सदैव अपना हितकारी मानूँगा।

ऐसे नहीं बनना -27

जब तुम कभी क्रोध में होते हो
तब यही कहते हो कि मैं तुम्हें
बिना कहे ही सुधार दूँगा और
जब तुम अभिमान में होते हो
तब दुनिया भर को कहते हो
कि मैं कभी तुम्हें सुधार दूँगा
स्वयं कभी, दूसरों से वाट्सअप
शंका समाधानों के माध्यम से
फेसबुक, चैनल के माध्यम से
शंकायें दूसरों की कम और
अपनी अधिक दे-दे ले करके
भड़ास पर भड़ास निकालकर
समाधानों से सुधारने की बात
आज की आम बात है पर उसे
कौन सुनेगा और कौन मानेगा
प्रथम तुम ही कैसे हो सारा संसार
तुम्हें जानेगा और पहचानेगा कि
तुम कैसे हो और दिखते कैसे हो

तरीका भी सीखो -28

मनाना है तो सर्व प्रथम मनाने का
तरीका भी सीखना चाहिए और
यदि बताना है तो बताने का तरीका
तुम्हें सर्व प्रथम सीखना चाहिए
तरीका सही है तो दुनिया सीखेगी
और उसे मानेगी भी सत्य समझो
मैं इतना अभिमानी भी नहीं हूँ कि
किसी की भी बात नहीं मानूँ परन्तु
मैं मानूँगा जिसका तरीका सही है
उसे ही मानूँगा जो मानने लायक है
सुधारूँगा भी उसे जो सुधारने लायक है ।

अध्यायान्त-मंगलाचरण

भले ही जलो तुम इसे देखकर,
जलते रहो तुम इसी रेख पर।
जल जाओगे राख तुम्हारी बनेगी,
जल जाओगे साख हमारी बनेगी।।

यदि दोष तुमने इसमें चुना है,
तो दोषदृष्टि का परिचय दिया है।
चुनते रहोगे यदि दोष इसके,
तो निर्दोष होगा महाकाव्य मेरा।।

चुनो दोष इसके चुनौती है मेरी,
खुली छूट तुझे क्यों करते हो देरी।
यदि ऐसी आदत रही जो तुम्हारी,
सुधारो इसे तुम बन परोपकारी।।

शत्रु नहीं हो तुम मीत मेरे,
बनके रहो तुम सदा मीत मेरे।
दिखने में आये कमी कोई मेरी,
आकर बताना मानूँगा तेरी।।

क्या दोष इसमें मेरा रहा है,
तुमने ही अपना परिचय दिया है।
यदि दोष संचय करते रहोगे,
भववन में तुम भटकते रहोगे।।

अभिनन्दन तुम हो आनन्द कारी,
नन्दन हूँ तेरा पाद पंकज पुजारी।
तो परवाह मुझको रहेगी भी कैसे,
मिटेगी जलन उनकी जल बिन्दु पा के।।

(प्रथम खण्ड में- नौवा अध्याय समाप्त)

प्रथम खण्ड समाप्त

❁❁❁

जल बिन्दु-महाकाव्य

-प.पू.गणाचार्य विराग सागर जी

जीवन खण्ड-02

अध्याय 12

कुल कविता 312

कुल पेज 219

द्वितीय खण्ड

अध्याय 10-बादल

अनुक्रमणिका

01 बादल
02 न फल न दल-बादल
03 कीमत फल की नहीं बादल की
04 दल-दल न बदल
05 कहाँ तक बदलोगे
06 सम्मान न पाती
07 बुराईयाँ ही गिराती
08 अच्छाईयाँ ही उठाती
09 अटल रहता बादल
10 मजबूत-बादल
11 बुराई से नहीं भलाई से बदलो
12 बदला न लो किन्तु बदलो
13 पुरुषार्थ से उठो
14 प्रशंसनीय कार्य करो
15 बड़ा बनाता-बादल
16 हल्का बनाता बादल
17 प्रशंसनीयता की प्रशंसा
18 सत्कार करना सीखो
19 कीमत गुण-जल की
20 स्वयं को बदलो
21 प्रमाणित होना
22 इनाम नहीं ईमान पा
23 दिखने वाले बरसते नहीं
24 काले बादल बरसते हैं

25 जो गरजते हैं वे, बरसते नहीं
26 गरजो नहीं पर बरसो
27 बिन गरजे क्यों न वर्षा
28 बिना गर्जे वर्षा
29 लम्बी उड़ाने भरते हैं
30 बूँद-बूँद से सागर भरता
31 रंग-बिरंगे बादल
32 बादल जनक वाष्प
33 तपन भाप बनाती
34 तर नही पाता
35 मिटना पड़ेगा
36 तपन तपस्या है
37 जल चक्र
38 संसार चक्र
39 पर्यावरण
40 आस मत कर
अध्यायान्त-मंगलाचरण

बादल -01

जो सदा एक जैसे नहीं रहते
निरन्तर वे अपना रूप बदलते
जो सदा एक जगह भी न रहते
जगह बदलते-बदलते ही रहते
जगह-जगह बरसते वर्षा करते
भू और भूतों की वे प्यास बुझाते
पवन के साथ उड़ते खेलते रहते
पवन बिना वे विलीन हो जाते हैं
पंचभूतों में लवलीन हो जाते हैं
वे ही सदैव बादल कहलाते हैं।

💧💧💧

न फल न दल-बादल -02

वाह रे बादल!
न फल, न दल
फिर भी बना है
तू ऊँचा बादल
बिना फल का
व बिना दल का
बना है तू बादल।

💧💧💧

कीमत फल की नहीं बादल की -03

आम फल हो या
फिर रामफल हो,
अथवा सीताफल
परन्तु ध्यान रखो
यहाँ पर आम की
राम या सीता की
नहीं, किन्तु कीमत
फल के दल की है
जिसमें जितना दल
उसकी उतनी कीमत
अधिक की अधिक
और कम की कम
जो फल जैसा होगा
दल भी वैसा ही होगा
परन्तु कभी-कभी तो
छोटे फलों में भी दल
सर्वाधिक होता है और
बड़े-बड़े फलों में दल
कम ही होता है परन्तु
यहाँ तो बिना फल व
बिना दल का बादल है।

दल-दल न बदल -04

सम्मान पाने के लिये,
प्रशंसा पाने के लिये,
प्रतिष्ठा पाने के लिये,
वोट पाने के लिये, अर्थ
या स्वार्थ पाने के लिये,
और कभी भी कहीं भी
तू दल-दल न बदल
एक ही दल में तू रह
अटल, कहता ये बादल।

♦♦♦

कहाँ तक बदलोगे -05

तुम दल-दल क्यों बदलते हो
अर्थ, लोभ या प्रशंसा के लिए
अपने सत्य ईमान को बेचकर
अथवा क्षणिक स्वार्थ के लिए
सत्य पर अंगुली उठा कर के
स्वयं अपनी सफाई देते जाते हो
गिरगिटवत् रंग बदलते जाते हो
बगुले की तरह क्यों बनते हो
कागसम क्यों नहीं बन जाते हो।

♦♦♦

सम्मान न पाती - 06

श्वेत बिंदु
फिर से आई
जल बिंदु से मिली
और फिर कहा
तू जहाँ जाती
बदल जाती
दल बदलू कहाती
पर मैं जहाँ भी जाती
एक सदृश रहती
फिर भी दुतकारी जाती
सम्मान न पाती ।

♦♦♦

बुराईयाँ ही गिराती -07

वादा जिसका अटल होता
वह उठता और उठते-उठते
बहुत-बहुत ही ऊँचे उठ जाता
उड़ता और उड़ता ही उड़ता
बहुत ऊँचे-ऊँचे आकाश की
ऊँचाईयों को एक दिन छू लेता
बनकर के अच्छे-अच्छे बादल
हे प्राज्ञ! वादा में तू रह अटल,
तो तेरी झोपड़ी भी स्वर्ग बनेगी
तेरा परिवार भी देवतावत् होगा
कब जब बादल की तरह होगा
सम्पूर्ण बुराईयों से हल्का होगा
क्योंकि बुराईयाँ ही तो वजन हैं
बुराईयाँ ही करती सदा पतन हैं
नीचे-नीचे और नीचे से भी नीचे
नरक तक वे उन्हें पहुँचा देती हैं।

अच्छाईयाँ ही उठाती -08

अच्छाईयाँ ही हलकापन है
दुनिया के हाथों पर आना है
दुनिया को हाथों पर लाना है
और फिर ऊँचाईयों को पाकर
ऊँचे-ऊँचे, व ऊँचे से भी ऊँचे
स्वर्ग व सिद्धालय तक जाना है
यही तो हमने धर्म शास्त्रों में पढ़ा
तथा निर्ग्रन्थ मुनियौं से जाना है
अत: मुझे बुराईयों को नसाना है
और सदा अच्छाईयों को पाना है।

♠♠♠

अटल रहता बादल -09

दल-दल को
बदलने का नहीं,
किन्तु अपने ही
दल में हमेशा
अटल रहने का
पाठ सिखाते हैं,
ये उड़ते बादल।

♠♠♠

मजबूत-बादल -10

दल-दल को
बदलने का नहीं,
किन्तु अपने ही
दल को मजबूत
बनाने का पाठ
पढ़ाते हैं बादल।

♦♦♦

बुराई से नहीं भलाई से बदलो -11

दल की बुराई करने से
कभी बुराई नहीं जाती
किन्तु अपने ही दल की
ऊँची और उत्तम सोच से
सभी बुराईयाँ निकलकर
दूर से दूर चली जाती हैं
ऐसा पाठ पढ़ाते हैं बादल।

♦♦♦

बदला न लो किन्तु बदलो -12

बदला लेने का नहीं
किन्तु बुराई को
अच्छाई में बदल देने का
पाठ सिखाते हैं बादल।

♦♦♦

पुरुषार्थ से उठो -13

किसी को गिरा कर
स्वयं उठना या जीतना
उठना या जीतना नहीं है
किन्तु स्वपुरुषार्थ से ही
उठने अथवा जीतने का
पाठ सिखाता है बादल।

प्रशंसनीय कार्य करो -14

किसी की बुराई कर
प्रशंसा पाने का नहीं
किन्तु प्रशंसनीय कार्य
करने का ही तो सदा
पाठ सिखाता है बादल।

बड़ा बनाता-बादल -15

किसी को गिरा कर के
कभी भी आगे बढ़ने की
कोशिश नहीं करना
किन्तु अपने साहसी कदम
बढ़ाने से ही बड़े बन सकते हो
ऐसा पाठ पढ़ाता है बादल।

हल्का बनाता बादल -16

क्रोध,मान,माया,लोभ
कषायों के वजन से
वजनदार होने का नहीं,
परन्तु इनके वजन से
हल्का होने का भी पाठ
सिखाता है बादल।

♦♦♦

प्रशंसनीयता की प्रशंसा -17

किसी की
निंदा करके
प्रशंसा पाना
वास्तविक
प्रशंसा नहीं
पर निंदनीय
कार्य छोड़
प्रशंसनीय ही
कार्य करना
सच्ची प्रसन्नता
और प्रशंसा
पाने का ऐसा
पाठ पढ़ाते हैं
ये बादल।

♦♦♦

सत्कार करना सीखो -18

तिरस्कार से
तिरस्कार और
सत्कार से
सत्कार ही
मिलता है
इसलिये तू
सदा सत्कार
करना सीख
ऐसे ही पाठ
पढ़ाते हैं बादल।

●●●

कीमत गुण-जल की -19

काले हो या गोरे
मूल्य इसका नहीं
परन्तु गुण रूपी
शुद्ध जल से तुम
कितने भरे हो
मूल्य इसका है
ऐसा पाठ पढ़ाते
रहा करते हैं बादल।

●●●

स्वयं को बदलो -20

कभी किसी को
बदलने की अपेक्षा
सर्वप्रथम अपने
आपको बदलना
सच्चा बदलना है
ऐसा पाठ पढ़ाता है बादल।

प्रमाणित होना -21

प्रमाण पत्र को
पाने की अपेक्षा
स्वयं प्रमाणित
होने का पाठ
पढ़ाता है बादल।

इनाम नहीं ईमान पा -22

बाहर की इनाम तो
नष्ट हो जाती है अत:
इनाम के लिये नहीं,
किन्तु ईमान के लिये
पुरुषार्थ करना भी तो
एक सच्चा पुरुषार्थ है।

दिखने वाले बरसते नहीं -23

जो बादल केवल
सुन्दर दिखते हैं वे
बाहर से ही सुन्दर
होते और दिखते हैं
पर वास्तविकता में
वे सुन्दर नहीं होते हैं
क्योंकि वे बरसते नहीं
दुनिया को वे केवल
तरसाते ही तरसाते हैं
आस में बैठाकर ठगते
और ठगाते ही रहते हैं।

♦♦♦

काले बादल बरसते हैं -24

रूप भले ही काला हो
पर स्वरूप काला न हो
उसे गोरा होना चाहिये
काले बादल गरजते नहीं
किन्तु हमेशा बरसते हैं
अतः उन्हें पाने के लिये
लोग तरसते हैं क्योंकि
वे जल से सदा भरे होते हैं।

♦♦♦

जो गरजते हैं, वे बरसते नहीं -25

जो-जो केवल
ऊँची से भी ऊँची
और ऊँची हवाई
बात ही करते हैं
वे गरजा करते
और गरजते ही
तो सदा रहते हैं
पर बरसते नहीं
न बरसा करते हैं।

♦♦♦

गरजो नहीं पर बरसो -26

गरजो या
न गरजो,
पर बरसो
क्योंकि
गरजना
नहीं, किन्तु
बरसना ही
महत्वपूर्ण
होता है।
पर किसी पर
क्रोध में न बरसो
स्वेद रुप में भी
कभी न बरसो

♦♦♦

बिना गर्जे क्यों न वर्षा - 27

कौन है वो जो
बिना गरजे बरसता
सोच ही रहा था
तभी खलनायक
सिर पर आ गया
तभी मैं सोचने लगा
दो में से ही कोई एक
आया होगा जल या खल
पर मुझे ख्याल आया
जल, वर्षा ऋतु में पर
खल सभी ऋतुओं में
आता और आकर
अपना परिचय देता है ।

बिना गरजे वर्षा - 28

खल स्वेद को
इतना ज्ञान कहाँ
वह तो अवसर पा
चाहे जहाँ आ जाती

बिना बादल के
बिना गरजे भी
धमाधम वह , अनवरत
श्रमिकों के
सूक्ष्म - सूक्ष्म
रोम कूपों से
आ आकर , बरस जाती ,
बरसती और फिर
बरसती ही रही ।

लम्बी उड़ाने भरते हैं -29

बादल हलके हैं
अत: वे उड़ते हैं
क्षण-क्षण में भी
लम्बी से लम्बी
उड़ान भरते हैं।

♦♦♦

बूँद-बूँद से सागर भरता -30

उड़ने की अपेक्षा प्रथम
उड़ने का तरीका सीखो
जल की बूँद-बूँद से ही
गागर को भरना सीखो फिर
सागर को भी भरना सिखो
पर सागर भरने के पहले
गागर को भरना होता है
तभी तो सागर भर पाता है।

♦♦♦

रंग-बिरंगे बादल -31

बादल सदा एक ही
रंग के नहीं, किन्तु वे
भिन्न-भिन्न रंग के भी
रंग-बिरंगे होते हैं और
जब जल से भरे होते हैं
तब ठोस/काले होते हैं
और जब खाली होते हैं
तब वे सदा श्वेत होते हैं
जब उन पर सविता की
सीधी किरणें पड़ती हैं
तब वे लाल-लाल होते हैं।

♦♦♦

बादल जनक वाष्प -32

बादल तो सुत ही है
उसका जनक वाष्प है
वाष्प ही तो ये भाप है
उबलते पानी अथवा
मचलते सागर, नदी,
कूप, बावड़ी वृक्ष व
पृथ्वी की आर्द्रता है
स्वेद है, जो तपन पा
ऊपर उठती-उठती सदा
बादल का रूप ले लेती है।

♦♦♦

तपन भाप बनाती -33

तपन तपस्या कराती
जल को बहुत तपाती
भाप बना-बना कर के
बादल बनाती फिर पुनः
उसे जल बना-बना के
सभी जगह वह बरसाती
व जल को जल से पुनः
लाकर के सदा मिलाती।

तर नहीं पाता - 34

मैं ही तपस्वी सी
ग्रीष्म कालीन
साधना में
स्वेद बिंदु को
जल बिंदु समझाती
रे मूर्ख
तू श्रमणों के
रत्नत्रय के
सच्चे श्रम पर
तर्र तर्र टपक रहा है
पर तर नहीं रहा है
वे तर रहे हैं
भव पार हो रहे हैं
और तू टप टप
टपक रहा है
भूसात हो रहा है ।

मिटना पड़ेगा -35

आप भाप को देखो पर
भाप की तरह उड़ो मत
अन्यथा बादल की तरह
तुमको बनना पड़ेगा और
अधर ही लटकना पड़ेगा
फिर तुम कितने भी बरसो
अन्त में मिटना ही पड़ेगा।

तपन तपस्या है -36

तपन एक ताप है, तपस्या है
जो सदा फसल को पकाती
भोजन बनाती, भूख मिटाती
भोजन को पका कर के और
उसे पाचन के सुयोग्य बनाती
कच्चे फलों को सदा पकाती
पका-पका कर स्वादिष्ट बनाती
कच्चे घड़े को पका-पका कर
जल भरने योग्य पक्का बनाती
जो कभी जल से गलता था उसे
जल भरने के ही लायक बनाती
कच्चे स्वर्ण को वह शुद्ध करती
साधकों की भी कर्म कालिमा को
जला-जला कर उन्हें शुद्ध बनाती
और साधना के द्वारा सच्चिदानंद
शाश्वत सिद्ध बनाती।

जल चक्र -37

गर्म जल से
बनती भाप,
भाप से बनते
सुन्दर बादल
काले बादल
जब बनकर
बरसा करते
तो जल बनता
जल जब पुनः
गर्म होता तो
वाष्प, बादल,
वर्षा फिर जल
यही तो जल चक्र है।

संसार चक्र -38

जन्म के बाद मरण
मरण के बाद जन्म
संसार चक्र की तरह
भाप से जल, जल से
भाप, एक जल चक्र है।

पर्यावरण -39

हरे-भरे वृक्षों की नमी
सूर्य की किरणें पाकर
वाष्प को निर्मित करती
और उसे बादल बनाती,
वृक्ष ही तो बादलों को
अपनी ओर आकर्षित कर
उड़ने से रोक-रोक करके
जल वृष्टि को मजबूर करते
और जल वर्षा कर कर
पर्यावरण की ही रक्षा करते
पर तुम उन्हें काट-काटकर
पर्यावरण को समूल नष्ट कर
वृक्षों से भी अपनी मानवता का
मूल्य क्रमशः कम से कम करते।

आस मत कर -40

अरे पपीहे! तू
श्वेत बादल में
पानी पाने की
आस मत कर
चूंकि वे कभी
बरसेंगे भी नहीं
पानी तो केवल
काले बादल ही
नियमत: बरसाते हैं।
श्वेत बादल तो
केवल गरजते हैं
जो गरजते हैं
वे बरसते नहीं
बरसने वाले
कभी गरजते नहीं।

अध्यायान्त-मंगलाचरण

रहो तुम खुशी से सदा एक दल में,
उठाओ उसे तुम रहो जिस भी दल में।
उठाओगे उसको तो समर्पण रहेगा,
बदलता रहा मन तो बादल बनेगा।।1।।

कमियाँ सदा से भरी हैं सभी में,
यहाँ हो या फिर देखो कहीं पे।
कमी दूर से कभी भी है दिखती,
कमी कोई निकट से भी है दिखती।।2।।

होगी कमी तो निश्चित दिखेगी,
उपेक्षाओं से क्या कमी दूर होगी।
मिटाना ही तुमको पड़ेगा यहाँ पे,
आकर मिटाओ जिन दास बन के ।।3।।

न दल कोई कभी भी है बदले,
बदले तो कोई स्वीकार न ले।
इससे बदलने की आदत मिटेगी,
हर दल की निजी मजबूती रहेगी।।4।।

तेरे ही दल का रहा हूँ सदा से,
तेरे ही दल में रहूँगा सदा मैं।
न बदलूँगा हे सुमति नाथ तुमको,
सुमति दो हे नाथ ऐसी ही मुझको।।5।।

(द्वितीय खण्ड में- दसवाँ अध्याय समाप्त)

अध्याय 11-: विवाह

अनुक्रमणिका

01 माँ-बेटी
02 सृष्टि निर्माता-माँ
03 कन्या पुनीता है
04 कन्या की यात्रा
05 कन्या से गृहणी
06 सौभाग्यवती ही सृजक है
07 सौभाग्य क्या?
08 संरक्षित रहती
09 सुरक्षा
10 वर-दान
11 माँ के संस्कार
12 शादी शादगी में
13 विवाह
14 आह-आह लाता-विवाह
15 शादी
16 शादी बरसाती नहीं
17 किमिच्छित शादी नहीं
18 स्वयंवर
19 माता-पिता की इच्छा से हो
20 स्वयंवर प्रथा नहीं है
21 सभी का सहयोग
22 सहयोग बिना जीवन
23 विवाह-सम्बंध
24 विवाह को तैयार
25 सगे सम्बंध
26 स्वजातीय-विवाह

27 जाति-प्रजाति
28 परजातीय-विवाह
29 श्रेष्ठ है विवाह नहीं करना
30 पुनर्विवाह मत करो
31 भगाया जाता
32 पुरुषार्थ ही पुरुष है
33 सुसंतान
34 कु-सन्तान
अध्यायान्त-मंगलाचरण

माँ-बेटी -01

माँ का प्रारंभ बेटी है
बेटी बिन माँ बनना
कभी संभव नहीं
बेटी गर्भ से आती है
परन्तु माँ गर्भ से नहीं
किन्तु बाद में आती है
अर्थात् जो-जो गर्भ में है
वह नियम से बेटी है पर
जो गर्भ से बाहर है वे सभी
केवल बेटी ही नहीं किन्तु
कोई बेटी, कोई बहिन
बुआ, मौसी, चाची, मामी,
पत्नी, सास, दादी मानी है
बेटी कुदरत की देन है
माँ पुरुषार्थ की देन है
बेटी कभी बनती नहीं
वह बनी बनाई होती है
पर माँ बनी बनाई नहीं
वह तो बाद में बनती है।

सृष्टि निर्माता-माँ -02

सृष्टि के निर्माता केवल ब्रह्मा नहीं
किन्तु बेटी का ही रूप माँ है, जो
सृष्टि का सदैव निर्माण करती है
सृष्टि का निरन्तर श्रृंगार करती है
सृष्टि को सदा सजाती है तथा उसे
उर्वरा उन्नत भी बनाती है इसलिए
माँ ब्रह्म ही नहीं किन्तु परम ब्रह्म है।

कन्या पुनीता है -03

बेटी मंगल है, पुनीता है पर
माँ मंगल तो है, पुनीता नहीं
बेटी सरस्वती है लक्ष्मी है
माँ, न सरस्वती है न लक्ष्मी
क्योंकि सरस्वती व लक्ष्मी
निर्विकारी, ब्रह्मचारिणी है
तथा मंगल और पुनीता है
इसलिये कन्या भी सुनीता है
लक्ष्मी और सरस्वती स्वरूपा है।
कन्या ही कुमारी भारती है
सरस्वती की ही ये संज्ञायें है
बदलती ये प्रतिभायें है

♦♦♦

कन्या की यात्रा - 04

माता - पिता कन्या दान
वर के लिये प्रदान
वर के द्वारा आदान
सुयोग्य युवती की प्रधान
रीति ही तो विवाह है
वर द्वारा गृहणी के रूप में
वरण का वातावरण
धर्मपत्नी का अवतरण
पद्धति ही तो विवाह है
सन्तति की शुभ भावना
सम्यक् रीति से अपने
कुल संचालन हेतु
माँ बनने की परम्परा है
माँ बनकर ममता भरी
सुसंस्कारों को जन्म देती
वृद्धावस्था आने पर
पुत्राश्रित होने की परम्परा है ।

♦♦♦

कन्या से गृहणी -05

कन्या का ही वरण होता है
माता-पिता करते कन्यादान
वर के द्वारा ही उसे आदान
ग्रहण किया जाता है और
सम्यक् गृहणी के रूप में
सम्यक् वरण किया जाता।
कन्या ही रूप बदलती,
पत्नी का रूप धरती
तो फिर बूढ़ी होने पर भी वह
कन्या ही रहेगी सम्मान पाती रहेगी
और फिर वह भी माँ का रूप लेती
स्वेच्छा से शादी न करती अन्यथा
जीवन पर्यन्त के लिए ब्रह्चारिणी रहती।

सौभाग्यवती ही सृजक है -06

सृष्टि के सृजक ब्रह्मा नहीं
और न कोई ब्रह्म विद्या होती
किन्तु सौभाग्यवती ही तो
सृष्टि की सच्ची सृजक होती
इसलिये सौभाग्यवती
व साक्षात् ब्रह्मा ही नहीं
वह ब्रह्मस्वरूपा व ब्रह्माणी व
परम ब्राह्मी भी वह होती।

सौभाग्य क्या? -07

सौभाग्य केवल भाग्य ही नहीं
किन्तु असली सौ -भाग्य तो
नारी के माथे की बिंदी ही है
वह केवल सिन्दूर की नहीं
किन्तु यदि सच मानो तो वह
उसका केवल बन्ना/पति ही है
पति बिना सिन्दूर व श्रृंगार की
कोई भी शोभा नहीं होती है
सच्ची व असली शोभा
सिंदूर की केवल पति ही है।

संरक्षित रहती -08

जिसे प्रारंभ में
माता-पिता का
संरक्षण मिला
फिर पति का
और अंत में
अपने बेटे का
सोचो, जरा

वह कितनी ही
अमूल्यनिधि है,
मूल्यवान वस्तु
की सुरक्षा पर
सुरक्षा होती है
निश्चित ही वह
अविचल और
अचल संपत्ति है।

💧💧💧

सुरक्षा -09

सम्पूर्ण जीवों की
रक्षा करने से ही
सदैव रक्षा होती है
और अपनी सहज
सुरक्षा भी होती है।

💧💧💧

वर-दान -10

एक वर का
एक ही बार
नियमत: वरण
मरण पर्यन्त,
जीवन पर्यन्त
सबसे बड़ा
एक ही व्रत
सुशील व्रत,
ही होता है

इसके बिना
बस मरण ही
मरण होता है
फिर मरण ही
श्रेष्ठ होता है
पर दूसरी बार
न कभी वरण,
न दूषितशील
कभी होता है
एक वर-दान
वर का दान
वरदान होता है ।

माँ के संस्कार -11

माँ प्रदत्त सुसंस्कार
कन्या जीवन के भी
कुल परंपरा के भी
सुसंस्कार हो जाते हैं,
केवल आकार ही नहीं
सम्पूर्ण जीवन के लिए
भी एक आधार हो जाते हैं।

शादी शादगी में -12

शादी सदा शादगी में होना चाहिए
प्रदर्शन, अन्तर-दर्शन को खो देता है
दिखावा मात्र बाहर से ही दिखता है
पर जो दिखता , वो वैसा होता नहीं है
बाहर से तो दिखता कुछ और ही है
परन्तु अन्दर से होता कुछ और ही है
इसलिए वह धोखा और भ्रम पैदा कर
सम्पूर्ण मिठास को खटास में बदल देता है
जो प्राणी अर्थ दिखावा में गंवाते हैं
यदि उसका उपयोग अपने ही
परिवार या पारिवारिक लोगों में हो
तब तो निश्चित ही वह दीर्घ कालीन
उपयोग में आयेगा उपयोगी बन जायेगा।

विवाह -13

वि- विवेक पूर्ण जीवन ही
वाह- वाह-वाह लाता/ देता है
तो विवाह कहलाता है।
पर केवल वाह-वाह के
लिए ही नहीं, अन्यथा वह
आह-आह में बदल कर
अन्त में सब तबाह कर देता है।

♦♦♦

आह-आह लाता-विवाह -14

विवाह सर्वप्रथम तो
वि-विवि कर आता
फिर वाह-वाह में भी
तबदील हो जाता और
अन्त में वा भी हटता
आह-आह करता व
आह से अ भी हटता
हा-हा में बदल जाता
रो-रो कर के रुलाता
सम्पूर्ण जीवन दुःख में
बीतता और बिताता जाता
वही विवाह कहलाता।

♦♦♦

शादी -15

यदि तुमने शादी की है
एक बार माँग भरी है
तो उसे जीवन भर तक
अथवा समय सीमा तक
माँग भरते रहना पड़ेगा
रोटी,कपड़ा,परिवार व
मकान-दुकान के लिये
दो कान देना ही पड़ेगा
अन्यथा तुम्हें हर काम
महंगे, बड़े महंगे पड़ेंगे
व्यवधान पर व्यवधान
ला-लाकर खड़ा करेंगे।

♦♦♦

शादी बरसाती नहीं -16

शादी कभी भी बरसाती नहीं
किन्तु सहराती ही होना चाहिए
अन्यथा वह सम्पूर्ण नाते-रिश्ते
प्रेम-मर्यादा, इज्जत व सम्मान,
धन-दौलत, कुटुम्ब-परिवार की
केवल सिरदर्दी ही सिरदर्दी है
जो लाती, जाती और देती जाती
जीवन भर बर्बादी ही बर्बादी है।

♦♦♦

किमिच्छित शादी नहीं -17

शादी कभी किमिच्छित
नहीं होना चाहिए क्योंकि
ऐसे सम्बंध क्षणिक और
प्रायःकर दुःख प्रद होते हैं,
माता-पिता को दूर करते हैं
या पश्चाताप से भर देते हैं
वे वेदना को न सह पाते हैं,
न किसी से कुछ कह पाते हैं,
तड़पते-तड़पते ही रह जाते हैं या,
सदमे में परलोक सिधार जाते हैं।

स्वयंवर -18

प्राचीन काल में स्वयंवर की प्रथा थी
स्वयं -वर को वरने की भी विधा थी
उसमें स्व-जातीय राजकुमारों को ही
निमंत्रण दे आमंत्रित किया जाता था
उन्हीं में से कन्या किसी एक वर को
स्वयं अपनी इच्छा से वरण करती थी
जिसे सम्पूर्ण सभा उसे मान्य करती थी
और सदैव उसको मानती भी रहती थी।

माता-पिता की इच्छा से हो -19

शादी सदा माता-पिता की
इच्छा से होनी चाहिए क्योंकि
वे स्वयं उस रास्ते से गुजरे हैं
उन्होंने जितना देखा है उतना
बेटा अभी नहीं देख पाया तथा
वे दीर्घ अनुभव शील होते हैं
उनका निर्णय बेटे के हित में
उन्नति तथा उत्थान में होता है
प्राचीन संस्कृति ऐसी ही रही है
माता-पिता ही वर या वधु का
निर्णय स्वयं ही अथवा स्वयंवर
विधि से करते रहे हैं इसलिए
सम्बंध सदा सफल होते रहे हैं।

♦♦♦

स्वयंवर प्रथा नहीं है -20

वर्तमान में स्वजातीय स्वयंवर प्रथा नहीं है
स्वजातीय वर खोजने की विधा भी नहीं है
आयोजन-समायोजन की व्यथा भी नहीं है
हो भी जाए तो उसकी मान्यता भी नहीं है
तो मनमानी क्यों? परजातियों में दौड़ क्यों?
धर्म विरुद्ध व समाज विरुद्ध कार्य भी क्यों?

♦♦♦

सभी का सहयोग -21

विवाह जीवन का निर्णय है,
समस्त परिवार का निर्णय है,
समस्त कुटुम्ब का निर्णय है,
समस्त समाज का निर्णय है,
धर्म गुरुओं का भी निर्णय है,

उक्त निर्णयों में एकता होगी,
तो सम्बंधों में भी मजबूती होगी
जीवन में तभी, सभी का साथ
और सभी का सहयोग भी होता।

♦♦♦

सहयोग बिना जीवन -22

जीवन छोटा नहीं, पर बहुत बड़ा होता है
कभी एकला नहीं, एकता का ही होता है
योग व संयोग भले ही कुछ भी हो परन्तु
सबसे-सबके सहयोग के लिए ही होता है
एकल जीवन बिताना तो मुश्किल होता है
जब कभी भी किसी को कोई नहीं मिलता
तो पशु-पक्षियों के साथ ही समय बिताता
पछताता कि यदि घर का कोई सदस्य होता तो
जीवन का आनन्द भी कुछ और ही होता
हमने किसी को सहयोग ही नहीं दिया तो
हमको भी किसी का कैसे सहयोग मिलता?

♦♦♦

विवाह-सम्बंध -23

विवाह का सम्बंध
हमेशा अपने ही
पूर्वजों से अथवा
भावी सन्ततियों से
जड़ की तरह ही
जुड़ा होता है और
जुड़ कर चलता है
हमारी थोड़ी सी भूल
वंश परम्परा की पूर्ण
प्रतिष्ठा मिटा देती है
और सावधानियाँ उसे
मिटने से पूर्णत: बचा भी देती हैं।

विवाह को तैयार - 24

बादल सुंदर सी रानी
कभी भी एक रूप में नहीं
एक आकार में नहीं
अनेकानेक रूपो में
अनेकों आकारों में
बदलती बदलती ही रहती
स्वामी के सन्मुख
सौभाग्यवती सुहागिन
ऐसा ही तो करती
पर यह सब अलग ही था
वह स्वंय तो शर्मीली शान्त
अबोध बालवत् थी
उसने रूप स्वयं नहीं
किन्तु वाष्प व वायु ने
ही उसके रूप बदले
उसने तो केवल
अपनीप्रस्तुति दी
और वाष्प की संगनी
सजनी बनने के लिये
विवाह को तैयार हुई ।

सगे सम्बंध -25

सगे सम्बंधों को कच्चा धागा मत समझो,
कि चाहे जब तोड़ो और चाहे जब जोड़ो,
सगे सम्बंध कभी भी कच्चे नहीं किन्तु
दोनों ओर से सदा मजबूत होना चाहिए
जो टूटने से न टूटे और तोड़ने से न टूटे
इसके लिए दोनों तरफ से सहनशीलता,
गम्भीरता व हार्दिक प्रेम भी होना चाहिए
तभी वे सगे सम्बंध आनन्द से भरे होते हैं।
पारस्परिक विश्वास से वे पूर्ण हरे भरे होते हैं।

स्वजातीय-विवाह -26

विवाह जब
स्वजातीय में
होता है तो
पारिवारिक,
स्वजातीय,
सामाजिक,
धार्मिक एवं
सम्बंधों की
आत्मीय चेन
बनी बनाई ही
मिलती रहती है
सम्मान, सहयोग
भी मिलता है।
हर्ष में हर्ष बाँटते
दुःख में दुःख बाँटते
वे सदा बाटते-बाँटते रहते हैं।

जाति-प्रजाति -27

जब पशु-पक्षी अपनी-अपनी जाति और
प्रजाति में उठते बैठते, चलते व रहते हैं
कभी भी विजातियों मे नहीं तब तो फिर
तुम एक समझदार मनुष्य हो पशुओं से
छोटे नहीं किन्तु बड़े और बढ़कर हो।

परजातीय-विवाह -28

पर-परजातियों में
हुए विवाह से वह
सब कहाँ मिलता?
फिर वर हो या वधु
घर व ससुराल पक्ष में
केवल अँगुलियाँ उठती
जो शल्यवत् चुभती हैं,
धार्मिक अनुष्ठानों से भी
वंचित कर दूर रखती हैं,
शर्मिंदगी दिलाती हैं और
सिर को ऊँचा उठने नहीं देती।

♦♦♦

श्रेष्ठ है विवाह नहीं करना -29

भगवान महावीर स्वामी ने
कभी भी विवाह नहीं किया
उसे विकार का मार्ग कहा
संयम पथ पर त्याज्य कहा
शादी-शुदा तीर्थंकरों ने भी
दीक्षा-समय विवाह का सम्बंध
तोड़, मुक्ति वधु से सम्बंध जोड़ा
अत:विवाह न करना ही श्रेष्ठ कहा।

♦♦♦

पुनर्विवाह मत करो -30

तुम विकृतियों को जीत सको
तो विवाह करना श्रेष्ठ नहीं है
विवाह तो एक मात्र फैलती हुई
विकृतियों को खूँटे से बांधना है

यदि विकृतियाँ नहीं जीत सको तो
विवाह कर उसे सीमा में रखो पर
एक बात अवश्य ही ध्यान रखो
कभी भी तुम पुनर्विवाह मत करो।

भगाया जाता - 31

खल आया तो
जल बिंदु ने
उसे समझाया
बिना बुलाये आओगे तो
बिना बताये ही
भगा दिये जाओगे
पहले व्यक्ति उसे
स्वंय अपने हाथ से
रूमाल ,कपड़ा, पुट्ठे
कागज से भगाता था
पर अब दिन बदले
वेतन वाले वे - तन
तन भले ही था उसका
पर अदृश्य रूप में
नौकरी करता
बिजली, डीजल या
बैटरी के रूप में
वह वेतन ले लेता
और खलों को
केवल भगाता ही नहीं
हवा देता और
पूर्ण सुखा देता ।

पुरुषार्थ ही पुरुष है -32

पुरुष पुरुषार्थ प्रधान ही होता है
पर अबलायें अबला ही होती हैं
वे मोक्ष पुरुषार्थी नहीं हो पाती हैं
मोक्ष पुरुषार्थ को नहीं पा पाती हैं
इसलिए वे पुरुष नहीं किन्तु कन्या
अबला, महिला व नारी कहलाती हैं
वे सदैव एक ही वर प्रधान होती हैं
वर ही तो उनका सौभाग्य होता है
वर के त्याज्य या मृत हो जाने पर
वे कभी भी पुनर्विवाह नहीं करती हैं
अत: वे जीती जागती सती कहलाती हैं
यही तो प्राचीन संस्कृति कही जाती है ।

सुसंतान -33

सुसंतान कभी
माँ के तो कभी
अपने पिता के
आशीर्वाद की
कृति लिखती,
लिख-लिखकर
पाठ को पढ़ती,
सभी को पढ़ाती,
एहसान मानती,
सेवा कर अपना
सौभाग्य मानती,
कभी फोटो को
तो कभी वीडियो
बनाती व बनवाती,
देखती व दिखाती,
याद में आँसू बहाती,
वर्षगांठ/पुण्यतिथि मनाती।

कु-सन्तान -34

जब कभी अपने माता-पिता पर कोई
कहीं आँच आती तब वीर सु-सन्तान
उसका प्रतिकार कर, सम्मान पाती
और उन्हें व आने वाली पीढ़ी को भी

सम्मान दिलाती और दिलाती जाती
आतताईयों को सबक सिखाती जाती
जब कभी कोई सन्तान स्वार्थी अथवा
आलसी होती तो वह निजी सम्मान

प्रतिष्ठा के लिए सब कुछ भूल जाती
उसका स्वयं प्रतिकार किये बिना ही
अपने माता-पिता, सन्तान परम्परा और
वंश को दुःख देती और दुःखित करती

सभी के द्वारा कोसी जाती कि ये ऐसा
नहीं होता, तो नाम ही कुछ और होता।

अध्यायान्त-मंगलाचरण

तबाही मचाता रहा जो सदा से,
गिराता रहा मोह मद में सदा से।
फँसाया है फंदे में जिसने सभी को,
विवाह न करना सिखाया सभी को।।1।।

यदि तुमने शादी की है तो सुन लो,
बर्बादी स्वयं तुमने की है ये सुन लो।
आजीवन कारावास बीस वर्ष का होगा,
न निकले तो मरण इसी में ही होगा।।2।।

अहा-अहा करता विवाह जब आता,
आह-आह फिर वह तुमको कराता।
यह जान वर्धमान ने शादी न की थी,
मुक्ति वधु को सदा को वरी थी।।3।।

संसारी वधुएँ परीक्षों ये लेतीं,
यदि राग हो तो फँसा ही वे लेतीं।
यदि वीत रागी बने तुम कदापि,
मुक्ति वधु तब तुमको वरेगी।।4।।

जब राग जागा तब विवाह भाया,
जब वैराग्य जागा तब विवाह भागा।
चन्द्र प्रभ तुमने अनुभव करके देखा,
विवाह में न रस त्याग करके ही देखा।।5।।

(द्वितीय खण्ड में- ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त)

अध्याय 12-:गर्भ

अनुक्रमणिका

01 गर्भ
02 बेटी बचाओ
03 भ्रूण हत्या नहीं करेंगे
04 अहिंसा परमो धर्म:
05 वीर संदेश
06 सन्देश
07 भ्रूण हत्या कानूनी अपराध
08 तुम स्वतन्त्र हो
09 धर्मापराध
10 रक्षक कौन रहेगा
11 नरक /पशु गति में जायेगा
12 मनुष्य हो दु:ख पायेगा
13 शक्तिपुंज नारी
14 अरि और आरी
15 सौभाग्यवती
16 पतिव्रता-नारी
17 गर्भवती माँ दौड़ती नहीं
18 सौभाग्या
19 वह चिप्स नहीं खाती
20 आईसक्रीम नहीं खाती
21 ममता
22 गरमा गरम नहीं खाती
23 ममता शब्द
24 विचारों में डूबी माँ
25 डूबो पर, चिन्तन में

26 ध्यान में डूबी माँ

27 ध्यान जरूर करो

28 सदा ख्याल रखूँगी

29 माँ की कल्पना

30 उसकी बातें कौतुक बढ़ाती

31 कोई-कोई बातें

32 माँ की ऊँची सोच

33 सबसे बड़ी है माँ

अध्यायान्त-मंगलाचरण

गर्भ -01

गर्भ अमंगल नहीं
किन्तु वह मंगल है
मंगल कलश है और
जल से भरा कलश है।

बेटी बचाओ -02

बादल के गर्भ में
एक भ्रूण की तरह
जल बिंदु समायी थी
पर बादल ने उसकी
हत्या नहीं की न उसे
असमय में गिरवाया
एबॉर्शन नहीं करवाया
बादल ने सदा अपनी
बेटी को बचाया और
"बेटी बचाओ" का
जोर से नारा लगाया
दुनियाँ को यह शुभ
सन्देश सुनाया, पाठ पढ़ाया।

भ्रूण हत्या नहीं करेंगे -03

हमने भ्रूण हत्या जैसे
तुच्छ कार्य को
न कभी किया है
न कभी करते हैं
न कभी भी करेंगे
और न करवायेंगे
प्रतिज्ञा को पूर्णत:
प्राणपन से निभायेंगे।

♦♦♦

अहिंसा परमो धर्म: -04

अपनी हो या पर की
बेटी के भी भ्रूण को
बेटे के भी भ्रूण को
बचाया है व बचायेंगे
"अहिंसा परमो धर्म:"
के केवल नारे ही नहीं
पर महावीर स्वामी के
नारे को हम अपनायेंगे
उसे सहर्ष सदा पालेंगे
नभ में गुंजायमान करेंगे
जन-जन में स्फुरायमान करेंगे।

♦♦♦

वीर संदेश -05

प्रभु वीर ने केवल नारे
लगाना ही नहीं, किन्तु उसे
अपनाना और अपनाकर
आत्मसात् भी करना तथा
उसका सही आचरण कर
हर्ष मनाना ऐसा सभी को
सदा से पाठ पढ़ाया-समझाया
उसको आप सभी लोग भी
पढ़ना-पढ़ाना, समझाना व
निज आचरण में भी लाना
ऐसा था परमेश्वर तीर्थंकर
भगवान महावीर स्वामी का
सर्वश्रेष्ठ उपदेश तथा संदेश।

सन्देश -06

सन्देश तो सभी देते हैं
पर साकार करने वाले
विरले ही लोग होते हैं
लोग कहते हैं कि आप
कोई नया सन्देश दो, पर
मैं कहता हूँ कि पहले
पुराने सन्देशों पर तुम
आचरण करो तब ही
नये सन्देश की बात करो।

भ्रूण हत्या कानूनी अपराध -07

भ्रूण हत्या तो एक
इंसान की हत्या है
दण्डनीय अपराध है,
कानूनी अपराध है,
भ्रूण हत्या के समान
जघन्य अपराधों को
करने व कराने वाला
तथा प्रेरणा देकर के
प्रोत्साहन देने वाले भी
योजनाबद्ध हत्यारे हैं।

♦♦♦

तुम स्वतन्त्र हो -08

दया और हत्या में विरोधाभास है
दया धर्म है और हत्या अधर्म है
दया भगवान की वाणी है पर हत्या
शैतान की वाणी है अब तुम किसे
अपनाना चाहते हो इसमें स्वतन्त्र हो
जिसे अपनाना चाहो अपना सकते हो
पर इस बात का सदैव ध्यान रखो
धर्म से सुख होता है अधर्म से दुःख।

♦♦♦

धर्मापराध -09

भ्रूण हत्या को करने
कराने,प्रेरणा देने वाले
कभी जिनाभिषेक करने,
गुरु पाद पृछालन करने
सत्-पात्र को दान देने वाले
पंचकल्याणक में प्रमुख पात्र
बनने के अधिकारी नहीं
यदि कोई कभी धोखे से
या पंडितों को घूस देकर
या उसे डरा धमका कर
पात्र बन भी जायेगा तो भी
पाप पर पाप को ही कमायेगा
महा अपराधी ही कहलायेगा।

♠♠♠

रक्षक कौन रहेगा -10

यदि जब माँ ही भक्षक बन जाए
तब फिर रक्षक भी कौन रहेगा
रक्षकों पर कौन विश्वास करेगा
रक्षकों का कहाँ विश्वास रहेगा
रक्षक शब्द ही समाप्त हो जायेगा
यह मनुष्य भी सर्वभक्षी हो जायेगा।

♠♠♠

नरक /पशु गति में जायेगा -11

भ्रूण हत्या करने वाला
करान व प्रेरणा देने वाला
नरक जा दीर्घ काल तक
दुःख उठायेगा और सदा
पश्चाताप के आँसू बहा
परस्पर मार-काट करेगा
भूखा-प्यासा चिल्लायेगा
फिर कभी वहाँ से बड़ी
मुश्किल से निकल पायेगा
व कीड़ा बन बिलबिलायेगा
मूक-पशु पर्याय को पायेगा
वहाँ किसी का ग्रास बनेगा
तो किसी को ग्रास बनायेगा
सबलों द्वारा सताया जायेगा
व जीवन भर आँसू बहायेगा
इसलिए तू समझ और सम्हल
कभी भी भ्रूण हत्या मत कर।

मनुष्य हो दुख पायेगा -12

यदि मनुष्य भी हुआ तो
विवाह नहीं कर पायेगा
तबाही-तबाही मचायेगा
यदि विवाह हो भी गया
तो संतान भी न पा पायेगा
नि:संतान जीवन बितायेगा
अथवा विकलांग संतान
या बिगड़ी संतान पायेगा
भ्रूण हत्या की इतनी बड़ी
अनेक भव तक सजा में
दुख पूर्ण जीवन बितायेगा
यदि कभी निर्ग्रंथ दिगंबर
संत पुण्य योग से मिले तो
उनके समक्ष किये कृत्य की
पश्चाताप के साथ सत्य,निश्चल
आलोचना कर प्रायश्चित पायेगा
तभी उस पाप से मुक्त हो पायेगा।

शक्तिपुंज नारी -13

अहो! गर्भवती
माता का कष्ट
न सही तरह से
वह चल सकती,
न वह बैठ सकती,
न कुछ खा सकती
और न सो सकती
मात्र अपने भ्रूण को
सम्हालती ही रहती
यही उसकी अपूर्व
महाशक्ति है अत:
वह अबला होकर भी
एक शक्तिपुँज नारी है।

अरि और आरी-14

नारी अरि ही नहीं,
किन्तु आरी भी है
पर सभी ऐसी नहीं
बाकी तो न अरि है
और न वह आरी है।

सौभाग्यवती -15

बच्चे को जन्म देना
बच्चों का खेल नहीं
जन्म की असह्य पीड़ा
जच्चा और बच्चा को
दोनों को हुआ करती
मरण से भी बड़ी होती
कभी वह सह्य न होने पर
मृत्यु भी हो जाती है यदि
बच गये तो वह एक नहीं
दो नहीं सौ-भाग्य वाली
सौभाग्यवती कहलाती है
अन्यथा अभागिन अथवा
दुर्भाग्यवती ही कहलाती है।

♦♦♦

पतिव्रता-नारी -16

जो भी नारी पतिव्रता है
रुष्टा नहीं पर, संतुष्टा है
अन्यों से पूर्ण विरक्ता है
तभी वह भाग्यवती और
सौभाग्यवती कहलाती है।

♦♦♦

गर्भवती माँ दौड़ती नहीं -17

जब भी माँ गर्भवती होती है
उसके पेट में बच्चा होता है
तब माँ दौड़ती नहीं, क्योंकि
उस नाजुक को चोट लगेगी
मेरी ही हड्डियाँ उसको गड़ेगी
व उसे पीड़ा होगी, कष्ट होगा
वह पीड़ा को किससे कहेगा
जब मैं ही उसकी न सुन सकी
तो फिर उसकी कौन सुनेगा
यह सोच माँ कभी दौड़ती नहीं
अति शीघ्र कभी चलती नहीं।

♦♦♦

सौभाग्या -18

सौभाग्यवती नारी ही सौ-सौ
भाग्यों का निर्माण करती है
तभी वो एक सुपुत्र पा पाती है
और पुत्र को भी सुसंस्कार दे
उसकी भाग्य रेखाएँ बदलती हैं
नई भाग्य रेखाएँ खींच देती हैं व
एक की नहीं दो की नहीं, किन्तु
सारे परिवार के सौ-सौ भाग्यों को
बढ़ाती है व बनाती है इसलिए वह
सौभाग्या सौभाग्यवती कहलाती है।

♦♦♦

वह चिप्स नहीं खाती -19

वह कभी गर्म मसालेदार
अधिक चिप्स नहीं खाती

चाहे उसे खाने की कभी
कितनी भी इच्छा सताती

परन्तु बच्चे के ख्याल में
वह सब कुछ भूल जाती

सोचती है यदि कभी मेरी
जीभ चिप्स को चखेगी तो,

जीभ से भी कोमल काया
मेरे लाल की ही तो दुखेगी

घाव में मिर्च सी ही लगेगी
तो वह इस कामना का भी

दमन और शमन करती है
यही समता ही माँ की

मम्+ तल्+टाप् से बना ममता शब्द है।

आईस्क्रीम नहीं खाती -20

वह आईस्क्रीम की
कभी भी क्रीम भी
नहीं खाती है और
न वह आईस्क्रीम
कभी खाती क्योंकि
इसे खाने से बच्चे को
बहुत ठंड भी लगेगी
और कपकपी उठेगी
ठंडी भी उसे बैठेगी
शीतल शीत निकलेगा
शीत से वह नाजुक
जान भी गंवा देगा
यह सोचकर वह कभी
आईस्क्रीम नहीं खाती।

ममता -21

माँ की सच्ची ममता पुत्र जन्म के
बाद से नहीं, किन्तु पुत्र जन्म के
पहले से ही प्रारम्भ होती है वह
गर्भ से ही उसकी रक्षा करती
उसे सम्हालती और प्यार करती
जन्म के बाद भी दुलारती
केवल स्व पुत्रों में ही नहीं, किन्तु
किसी भी पुत्रों के प्रति देखी जाती है
फिर चाहे मनुष्य हो या पशु सभी
परस्पर पुत्रों में दुलार भरती जाती है।

गरमा गरम नहीं खाती -22

जब कभी उसकी
गरमागरम खाने की
इच्छा होती तभी वह
इच्छा को मारती पर
कभी गरम नहीं खाती
क्योंकि यह गरमागरम
मेरे लाल को ही कहीं
लाल-लाल बनाकर के
उसका काल न बन जाए
उसके तन को न जलाए
जलन न उठाये इसीलिये वो
कभी गरमागरम नहीं खाती।

♠♠♠

ममता शब्द -23

ममता शब्द का प्रयोग केवल
निज माँ में ही सम्भव होता है
पिता, दादा-दादी, चाचा-चाची में
नाना-नानी में, बुआ, मौसी में या
अन्य किसी में न कभी सम्भव
हुआ और न कभी हो सकता है।

♠♠♠

विचारों में डूबी माँ -24

वह जब भी खाती
तब अच्छा ही खाती
तथा पौष्टिक खाती
अपने लिये ही नहीं,
और न ही तन की
तंदुरुस्ती के लिये,
किन्तु बच्चे की ही
तंदुरुस्ती के लिये,
सोचती और प्रतिपल
सोच पर, सोच रख
सोचती ही सोचती
चली जाती, हरक्षण
नित नये-नये सोच में
विचार में डूबती व
डूबती ही चली जाती।

डूबो पर, चिन्तन में -25

डूबो पर नदी तालाब में नहीं, किन्तु
तात्विक तत्व चिन्तन, आत्म चिन्तन,
परमात्म व परमार्थ चिन्तन में डूबो
पर कभी भी तुम चिन्ता में मत डूबो।

ध्यान में डूबी माँ -26

वह माँ कभी-कभी तो
यह भी भूल जाती कि
मुझे अभी क्या करना है,
पर मैं क्या कर रही हूँ?
वह तो सब भूल जाती
निज बच्चे की याद में
मैं सदा अपने बेटे को
प्राणों से भी अत्यधिक
प्यार दूँगी, दुलार दूँगी
समय-समय पर उसके
दुग्धपान पर ध्यान दूँगी,
जलपान को भी देती रहूँगी।

♦♦♦

ध्यान जरूर करो -27

ध्यान जरूर करो पर सोचो कि
उस ध्यान का फल क्या होगा?
यदि यह समझ सके तो कभी भी
तुम्हारा ध्यान अशुभ नहीं, किन्तु
सदा शुभ होगा,शुभ कारी होगा।

♦♦♦

सदा ख्याल रखूँगी -28

कहीं उस पर धूप तथा
शीत तो नहीं आ रही है?
इसका भी ध्यान रखूँगी
उसे मच्छर,मक्खी,चींटी
या बिछौने का कड़ापन
तो उसे नहीं सता रहा है?
खाँसी,जुखाम,बुखार सम
और कहीं कोई भी पीड़ा
मेरे लाल को विकरालतम
रूप तो नहीं दिखा रही है?
सभी बातों पर ध्यान दूँगी
निष्प्रमाद हो ख्याल रखूँगी।

♦♦♦

माँ की कल्पना -29

उसे कभी किसी की कुदृष्टि
न लगे मैं सदा ध्यान रखूँगी
मैं उसको अपने आँचल में
छिपा-छिपा करके रखूँगी
यदि कहीं किसी की बुरी
नजर भी लगी तो मैं तुरन्त
उसका नजरिया बदल दूँगी
बच्चे की नजर भी उतारूँगी।

♦♦♦

उसकी बातें कौतुक बढ़ाती -30

उसे झूले में झुला-झुला कर
धार्मिक लोरियों को सुनाऊँगी
सुनाते-सुनाते उसे सुलाऊँगी
और मात्र सुलाऊँगी ही नहीं,
किन्तु अज्ञान और मोह की
गहरी नींद से उसे जगाऊँगी
उसके साथ मैं खेलूँगी और
फिर उसे सदा खिलाऊँगी भी
उसका खिसकना, कुड़रना
लड़खड़ाते हुए चलना देख
तोतली भाषा,उसकी नटखटी,
अटपटी सी बातें हँसी पर हँसी
दिलाती और कौतुक बढ़ाती।

♦♦♦

कोई-कोई बातें -31

कोई-कोई बात खट्टी-मीठी, चटपटी होती है
कोई-कोई बात कर्कशी और कड़वी होती है
कोई-कोई बात क्रोध भरी,मान भरी होती है या
कोई-कोई बात माया भरी, दीनता भरी भी होती है
तो फिर कोई-कोई दुख भरी, आर्द्रता भरी होती है
कोई-कोई हितकारी व कल्याणकारी भी होती है
कोई काम की, कोई व्यर्थ विचित्र बातें भी होती हैं
इसलिए सभी बातें समान नहीं, अटपटी भी होती हैं।

♦♦♦

माँ की ऊँची सोच -32

मैं उसे अंगुली के
सहारे खड़ा होना
चलना शनैः शनैः
सिखलाऊँगी तथा
शब्द से बोलना
प्रारम्भ कराऊँगी
णमोकार महामंत्र
कण्ठस्थ कराऊँगी
तीर्थंकरों सम्बंधी
बोधप्रद कथाएँ व
कहानियाँ सुनाऊँगी
सदाचार का पाठ भी
पढ़ाऊँगी और फिर
मोक्षमार्ग पर चलना
भी उसे सिखलाऊँगी
आगे बढ़वाऊँगी और
इंसान बनाकर उसे मैं
भगवान भी बनाऊँगी।

सबसे बड़ी है माँ -33

पर अब वैसी माँ कहाँ
माँ जैसी ममता कहाँ
माँ सी ऊँची सोच कहाँ
यद्यपि "माँ" टीचर है
सौ टीचर से बढ़कर है
अच्छी शिक्षा के लिये
अच्छे संस्कार के लिये
माँ के जैसा न महात्मा है
और न परमात्मा क्योंकि
यदि माँ के म शब्द को
निकाल दिया जाय तो
न महात्मा रहेगा, और
न कोई परमात्मा रहेगा
अत: गृहस्थों के लिये
सबसे बड़ी यदि कोई है
तो एक मात्र माँ ही है
हाँ जल बिन्दु की माँ।

अध्यायान्त-मंगलाचरण

जन्म दिवस कोई अपना मनाता,
मिठाई बनाता है खाता खिलाता।
गर्भ दिवस न मनाया किसी ने,
पद्म प्रभ गर्भ कल्याणक मनाया।।1।।

जब गर्भ में तू आया था माँ के,
बधाईयाँ सभी ने दी थी गाके।
था आठवाँ व नौवां जो महीना,
बाजे बताशे बाँटी थी खुशियाँ।।2।।

पर मात्र वह गर्भ उत्सव हुआ था,
यदि ज्यादती तो महोत्सव हुआ था।
न तेरा कभी गर्भ कल्याणक हुआ है,
न देवों ने आकर मनाया कभी था।।3।।

मनाते हैं देव गर्भ कल्याणक महोत्सव,
कल्याण कारी शुभ मंगल महोत्सव।
उत्सव नहीं ये गर्भ कल्याणक महोत्सव,
मनाया था "पद्म" दिव्य वंदनीय उत्सव।।4।।

(द्वितीय खण्ड में- बाहरवां अध्याय समाप्त)

अध्याय 13-: माँ

अनुक्रमणिका

01 माँ अच्छी और सच्ची
02 ध्यान से सुनो,
03 सुनो, दो कान से
04 सुनो, पर सोते-सोते नहीं
05 सुनो, उपयोग लगाकर
06 मन
07 मन की गति
08 एक मन से सुन,
09 एक ही बात सुन,
10 सुन और समझ,
11 हे जल बिन्दु!
12 जल बिन्दु की माँ
13 जननी
14 माँ का नाम
15 माता और माँ
16 जल बिन्दु की ऐसी माँ
17 फर्ज निभाते माता-पिता
18 त्रिविध-माता-पिता
19 निश्चय से माता-पिता नहीं
अध्यायान्त-मंगलाचरण

माँ अच्छी और सच्ची -01

माँ सभी की
अच्छी होती है
फिर चाहे कोई भी
किसी की क्यों न हो
पर विरली ही माँ
अच्छी के साथ
सच्ची भी होती है
अच्छी के साथ
सच्ची होना सभी में
अच्छी से अच्छी ही
सदा मानी जाती है
अन्यथा वह छी...छी..
और वह छोटी ही
पड़ जाती है इसलिए
जगत की पुकार है
सभी माताएँ अच्छी
और अच्छी से भी
अच्छी बनें, बनती रहें।

ध्यान से सुनो -02

मां की बात
जल बिन्दु ने
ध्यान से सुनी,
एक कान से

ही नहीं सुनी
क्योंकि एक
कान की बात
दूसरे कान से

निकल जाती,
स्मृति में प्रवेश
नहीं कर पाती,
बाहर की बाहर

ही तो रह जाती,
जैसी आती वैसी
ही चली जाती,
सुनी बात भी न

सुनने की तरह
ही रह जाती है,
इसलिए सुनो, पर
एक कान से नहीं,

दो कानों से और
ध्यान से सुनो।

सुनो दो कान से -03

सुनो, सदा दो कान से
साथ ही दुकान से भी
उपयोग को हटाकर
अन्यथा दो-कान या,
दुकान की बात नहीं
वो सौ कान की बात
हो जाएगी, जो कुछ भी
कभी काम न आयेगी
पूर्ण व्यर्थ चली जायेगी
समय की ही बर्बादी लायेगी।

सुनो, पर सोते-सोते नहीं -04

तुम दो कान से सुनो,
परन्तु सोते-सोते नहीं
जाग्रत होकर ही सुनो,
बेहोशी में नहीं किन्तु
होश में आकर सुनो,
तभी वह उपयोग के
द्वार से प्रवेश कर वह
मन तक पहुँच जायेगी
उपयोगी बनकर तुम्हें
सुयोग्य बनायेगी और
सदा सफलता दिलायेगी।

सुनो, उपयोग लगाकर -05

उपयोग लगाना तथा
ध्यान को भी लगाना
अलग-अलग नहीं है
एक और नेक है पर
स्मृति की तिजोरी में
ताला बन्द सम्पत्ति है,
आपत्ति और विपत्ति है
केवल पत्ती ही पत्ती है
न फूल है जो सुगंध दे,
न फल है जो तृप्ति दे,
संतुष्टि दे इसलिए उसे
उपयोग लगाकर सुन,
मात्र उसे सुनो ही नहीं
परन्तु उसका मनन व
मन्थन भी होना चाहिए
तथा उसको सदा अपने
आचरण में भी लाना चाहिए।

मन -06

मन मनन करने की,
अपने विवेक को भी
जागृत करने की और
हेय-उपादेय की एक
रासायनिक प्रक्रिया है
चिन्तन-मनन तत्त्व का
मंथन कर मथ-मथ कर
वह मक्खन निकालता
व मक्खन से घी बनाता
तभी वह कीमती होता
मन की मति, गति लाती,
कार्य में प्रगति भी दिलाती।

मन की गति -07

गतिशील केवल दो द्रव्यें होती हैं
एक जीव द्रव्य, दूसरा पुद्गल द्रव्य
जीव की गति अधिकतम सात राजू
पुद्गल की गति चौदह राजू होती है
फिर मन्द व तीव्र गति वाले और भी
अनेकों जीव व पुद्गल भी होते हैं
जिनमें शब्द गति, प्रकाश गति से भी
गतिशील मनुष्यों के मन की गति होती।

एक मन से सुन -08

हे मन! तू जो सुन
एक मन से ही सुन,
न कभी दो मन से
और न सौ मन से
अन्यथा तू बहुत ही
वजनदार हो जायेगा

तेरा वह सब वजन
कौन उठा सकेगा?
केवल उलझन में ही
तुझको उलझायेगा,
कार्य को नसायेगा,
पश्चाताप बढ़ायेगा

इसलिए सोचो-समझो,
और जो समझो उसे
एक मन से करो तो
अवश्य ही कार्य में।
तू सफलता पायेगा।

♦♦♦

एक ही बात सुन -09

मेरी बात सुन! मन का पथ
संकीर्ण पथ है, एकला पथ है
एक समय में एक ही बात को
सही सलामत सोच सकता है
एक साथ दो या अनेक नहीं
कोशिश भी यदि कभी करेगा,
तो निश्चित ही तू बेमौत मरेगा,
सही निर्णय में असफल रहेगा
अत:मेरी बात सुन, एक समय में
आवश्यक अथवा महत्वपूर्ण
एक ही बात को तू सदा गुन,
व्यर्थ में अनेक ताने-बाने मत बुन
हे मन ! रे मन !! अरे मन !!!

♦♦♦

सुन और समझ -10

कान भले ही दो होते हैं पर
वे दोनों कान दो नहीं किन्तु
एक ही बात को सुनते हैं
मन भी दो नहीं किन्तु एक है
इसलिए एक समय में दो नहीं
किन्तु एक ही काम करता है
अत: कान से सुन,मन से समझ।

♦♦♦

हे जल बिन्दु -11

हे जल बिन्दु! तू
वास्तविक जल है
केवल एकेन्द्रिय है
तुझ में वह मन कहाँ?
जो कुछ सोच सके,
समझाने से समझ सके,

सही गलत का तथा,
कार्य व अकार्य का,
सत्य निर्णय ले सके
ये तो मात्र दुनियाँ को
बोध देने वाली उपमा
तुझको दी जा रही हैं,

तुझे माध्यम बना बात
सबको समझाई जा रही है,
केवल समझाने की भाषा है,
मात्र तरीका है, सिद्धान्त नहीं
क्योंकि भाषायें बदलती हैं
तरीके, शैलियाँ बदलती हैं

पर सिद्धान्त नहीं बदलता है
वह अपने आप में अविचल
और हमेशा ही अटल रहता है।

जल बिन्दु की माँ -12

जल बिन्दु की
माँ का नाम
कल सुना था,
आज भी सुनो,
और तुम फिर
आने वाले युगों
युगान्तरों में भी
सुनते ही रहना
जल बिन्दु की
माँ का आँचल
पल-पल में रूप
बदल करके ही
बादल नाम पाता।

♦♦♦

जननी -13

माँ को संस्कृत में जननी कहते हैं
वैसे तो मातों अनेकों होती हैं पर
वे सभी जननी नहीं, मात्र जननी तो
जन्म देने वाली माँ ही कहलाती है।

♦♦♦

माँ का नाम -14

बादल जलबिन्दु की
जन्म दायनी माँ का
ही एक अवतार है
बादा में जो अटल है,

निश्चल-अचल और
निश्छल है वह ही
अविरल एक साथ
असंख्य संतानों को

जन्म देने वाली माँ का
एक मात्र नाम बादल है।

♦♦♦

माता और माँ-15

माँ कोई भी कैसी भी क्यों न हों
फिर भी माँ, माँ ही होती हैं
माता से भी बड़ी जग माता होती है
सुपुत्र के लिए माँ सब कुछ होती है
पर कुपुत्र के लिए कुछ भी नहीं होती है।
इतना सा ज्ञान ही माँ की सही पहिचान
या इतना सा भी अज्ञान माँ की पहिचान
जड़मूल से पूर्णतः बना या मिटा देता है,
सत्य तो यह है माँ की पहिचान एक
ऐसा टंकोत्कीर्ण गहरा निशान है जो
मिटाने से तो कभी नहीं मिटता परन्तु
अनाड़ी ही उसे विस्मृत कर देता है।

♦♦♦

जल बिन्दु की ऐसी माँ -16

क्या कभी सुनी नहीं तो
सुनो जल बिंदु की
एक ऐसी भी माँ जो
संतान को जन्म देती

परन्तु जनने के बाद
अपनी संतान कभी
भी नहीं देख पाती है,
न पाल पाती और न

उसे दुलार दे पाती है
प्रत्येक संतान अपने
भाग्य से ही पलती व
सदा पलती रहती है

किसी को किसी का
पालनहार कोई कहाँ?
भाग्य के समान कोई
दूसरा होता भी कहाँ?

न यहाँ, न वहाँ सभी
अपने कर्तव्य निभाते
नाम कमाते,यश पाते
उपकार कर,उपकृत होते जाते।

फर्ज निभाते माता-पिता -17

कर्तव्य परायण
माँ और पिता

कर्तव्य का ही
पालन करते

और उसको
पूर्ण निष्ठा से

निभाते तथा
हँसते-हँसाते

फर्ज निभाते।

♠♠♠

त्रिविध-माता-पिता -18

माता-पिता लौकिक भी होते हैं
तथा पारमार्थिक भी होते हैं
लौकिक माता-पिता तो केवल
शरीर को ही जन्म देते हैं किन्तु

पारमार्थिक माता-पिता अर्थात्

धर्म गुरु जो धर्म को जन्म देते हैं
वे ही तो माता-पिता आध्यात्मिक हैं
जिनका सम्बंध बाहर से नहीं पर

आत्मिक गुणों से होता है अर्थात्
निश्चय से निजात्म ज्ञान ही पिता
तथा क्षमा को माता माना गया है।
जो सम्यक् श्रुतियों में कहा गया है।

♠♠♠

निश्चय से माता-पिता नहीं -19

निश्चय नय से यद्यपि कभी भी
कारकों में सम्बंध नहीं होता

अत:आत्मा के माता-पिता का
सम्बंध ही नहीं होता है क्योंकि

माता-पिता यानि जन्म देने वाले
जनक जननी,जबकि आत्मा तो

शाश्वत, अजन्मा हैं फिर उसके
माता-पिता कैसे?नहीं हो सकते

अत: निश्चय से आत्मा के कोई
माता-पिता नहीं होते, व्यवहार से

शरीर को केवल जन्म देने वाले
शारीरिक ही माता-पिता होते हैं।

परन्तु उनका संबन्ध केवल
शरीर से शरीर तक ही होता है

आत्मा से किञ्चित् भी नहीं
भले ही तुम उनसे सदैव अपनी

आत्मा का संबन्ध मानो परन्तु
निश्चय से तो वे अनात्मा ही होते है।

अध्यायान्त-मंगलाचरण

माँ ने ही मुझको उठना सिखाया,
माँ ने ही मुझको चलना सिखाया।
माँ ने ही मुझको बढ़ना सिखाया,
माँ ने ही मुझको ऊँचे उठाया।।1।।

माँ वाणी जिनवाणी मुझ पर कृपा हो,
जिनवाणी मुझ पर तेरी दया हो।
माँ द्वार तुम्हारे सिर झुकाने मैं आता,
शुद्धात्म बनने मेरा जी मचलाता।।2।।

हे माँ कृपा तेरी ऐसी ही होवे,
हर बुराई अनादि की दूर होवे।
अच्छाईयों से भरे सारा आलम,
अच्छाईयों से भरे मेरा आतम।।3।।

कोई माँ शरीरों को जनती रही है,
ममता में कोई फँसती रही है।
तू मेरी माता है ऐसी निराली,
भव सिंधु से पार करती रही है।।4।।

हे सुपार्श्व मुझको दो ऐसी भी शक्ति,
हे सुपार्श्व मुझको दो ऐसी ही बुद्धि।
तव पाद पद्मों पर चलता रहूँ मैं,
शिव मार्ग पर पग बढ़ाता रहूँ मैं।।5।।

(द्वितीय खण्ड में- तेरहवाँ अध्याय समाप्त)

अध्याय 14-:जन्म

अनुक्रमणिका

01 आश ही आश
02 प्यास ही प्यास
03 प्यासा पपीहा
04 करूणार्द्र बादल
05 हृदय की कोमलता
06 बादल ने जन्म दिया
07 जन्म के प्रकार
08 स्वागत
09 चहुँओर खुशियाँ छाईं
10 जन्मोत्सव
11 सुसंस्कार
12 जन्म ले नमस्कार किया
13 नमस्कार तब होता है
14 दर्शन पा हरषती है
15 भक्ति की आँख
16 आरती उतारती
17 मंगलाचरण करती
18 मंगलाचरण
19 विशुद्धि-जगाता
20 पुण्य फलों के लिए नहीं
21 सफल होता
22 भक्ति सदा खरी होती है
23 त्रिविध-मंगल
24 इष्ट-स्मरण
25 ऐसे करें मंगलाचरण

26 मंगलाचरण
27 नमन
28 जल बिन्दु का नमस्कार
29 गुरु चरणों में शीश
30 गुणगान
31 जल बिन्दु एक मिशाल
32 महानायक-जल बिन्दु
33 महाकाव्य नायक
34 चन्द्र प्रभ को नमस्कार
35 अधिष्ठाता - इष्ट देव
36 चन्द्रप्रभ-वन्दना
37 अपूर्व स्वागत
अध्यायान्त-मंगलाचरण

आश ही आश -01

श्रावण माह का
आगमन हुआ
परन्तु ग्रीष्म की
उष्णता अभी भी
यथावत् बनी थी
तपनीय की तपन,
जमीन और गगन
समीर भी गरम थी
हर श्वांस-श्वांस में
प्यास पर प्यास थी,
उसे समूल बुझाने की
सभी की आश थी
सूखी सरिताओं ने
जोरदार शब्दों में कहा
जल बिन अब मेरा
अस्तित्व ही मिट रहा है
कूप बावड़ी ने कहा
नाम मेरा भी पूर्णतः
बदनाम ही हो रहा है
सूखती हुई घास ने कहा
मेरी अंतिम श्वांस चल रही है
फिर चातक ने कहा
जिंदगी मेरी मचल रही है।

प्यास ही प्यास -02

वृक्ष भी अब बोल पड़े
मौनी वे मुखरित हो पड़े
गरमी ने तो मेरे बाल
पका और सुखा दिये
अब तो मेरा शरीर भी
शुष्क होने लगा है
मृग-मरीचिका ने
भ्रम में दम तोड़ दी है
कृषकों ने भी अपनी
कृषि करना छोड़ दी है
गजराजों ने चिंघाड़ा तो
पक्षियों ने भी मुँह फाड़ा
चातक ने ऊपर निहारा
जोर-जोर से आर्द्र भरी
आवाज पर आवाज लगाई।

♦♦♦

प्यासा पपीहा -03

प्यासे पपीहे की प्यास कभी भरे या
बहते पानी से नहीं बुझती
वह बादल की तरफ देखता और
प्यासा हूँ प्यासा हूँ चीखता रहता है
बरसते पानी की बूँद जब भी उसके
मुख में जाती तभी प्यास बुझ पाती।

♦♦♦

करुणार्द्र बादल -04

सभी की आर्द्रता से
भरी हुई प्रार्थना सुन
प्रकृति ने सभी को
देखा सुना व समझा
करुणार्द्र हो अपना
रूप भी बदला और
बदल कर बादल बने
कहीं लाल कहीं पीले
नीले और काले रंग
रंग-बिरंगे आकार ले
जोर-जोर से वे गर्जे
जिसे सुनकर समीर के
झोंके आ आकर हर्षे।

♠♠♠

हृदय की कोमलता -05

हृदय की कोमलता ही तो
हार्दिक दया लाती है तभी
वह दया धर्म कहलाती है
पर यह सब पत्थर हृदय में
सम्भव नहीं होती क्योंकि
वह कभी भी किसी के ही
दुख-दर्द में नहीं पिघलती।

♠♠♠

बादल ने जन्म दिया -06

तब ही बादल ने गर्मी से
पीड़ित प्राणियों को देखा
सभी की हालत भी देखी
समझी फिर करुणार्द्र हो
गोल-गोल जलबिन्दुओं की
अनवरत वर्षा ही कर दिया
और उसने सहर्ष जलबिन्दु-
महाकाव्य को जन्म दे ही दिया।

♦♦♦

जन्म के प्रकार -07

जन्म केवल एक ही प्रकार का नहीं होता
किन्तु शास्त्रों ने उसे तीन प्रकार का माना
पहला गर्भज मनुष्यों व तिर्यंचों का होता
दूसरा उपपाद जो देव नारकियों का होता
तीसरा सम्मूर्च्छन मच्छर आदि का होता
जल बिन्दु का जन्म बादल से तो हुआ था
परन्तु वह केवल सम्मूर्च्छन ही हुआ था।

♦♦♦

स्वागत -08

गगन से मृदंगवत्
हर्षित हो बादल ने
जोर-जोर से गरज कर
ढोल-नगाड़े बजाये
मयूर ने पंख फैलाये
व नाचना प्रारंभ किया
कोयल ने बधाई गीतों
को गाना शुरू किया
झींगुर ने स्वर आलापा
दर्दुर ने भी साथ दिया
गगन विद्युत ने चित्र लिया
इतना स्वागत ऐसा स्वागत
कभी किसी ने किसी का
आज तक नहीं किया होगा
और न किसी का हुआ होगा।

♦♦♦

चहुँओर खुशियाँ छाई -09

और सुनो! धरती ने अब
हरित नया दुशाला ओढ़ा

लताओं ने पुष्प वर्षा की
वृक्षों में भी तंदुरुस्ती आई

मनुष्यों ने कार्य शाला में
सम्यक् गति दे प्रगति पाई

जल बिन्दु महाकाव्य पाकर
खुशियाँ ही खुशियाँ मनाई
चहुँओर खुशियाँ ही खुशियाँ छाई।

जन्मोत्सव- 10

जन्मोत्सव कब नहीं मनाया गया
किसका नहीं मनाया गया अथवा
कौन नहीं मनाते सभी तो मनाते हैं
कोई छोटे रूप में कोई बड़े रूप में
कोई उत्सव से तो कोई उत्साह से
अपने-अपने तरीके से ही मनाते हैं
यूँ कहें "जल बिन्दु" का जन्मोत्सव
किसी आयोजना पूर्वक तो नहीं पर
सहज ही उसका जन्मोत्सव मन गया।

सुसंस्कार -11

जल बिन्दु ने जन्म लिया
माँ को निहारा पर उसको
माँ नहीं दिखी, न ही मिली
परन्तु वह अभागी नहीं थी
क्योंकि प्रकृति की ऐसी ही
एक शाश्वत व्यवस्था थी
सिद्धांत से भरी अवस्था थी
ऐसा नियोग जिसे कभी भी
टाला नहीं जा सकता था
इसलिए उसे अपनी माँ के
सुसंस्कार तो नहीं मिले पर
परभव के संस्कार जरूर थे
तभी तो उसमें सभ्यता आई
धार्मिकता आई जिससे उसने
देव दर्शन की ही भावना भाई
और पवित्र हो शीघ्रातिशीघ्र
वह जिन-मन्दिर तक पहुँच पाई।

जन्म ले नमस्कार किया -12

सर्वोच्च अम्बर से
पयोधर के, योग से,
इंद्र के सहयोग से
जन्मी जल-बिन्दु
भू पर गिरती और
जिन-जिनवरों को
श्रुत-श्रुतधरों को व
मुनिवरों को देख
सभी को विनय से
साष्टांग नमस्कार करती।

♦♦♦

नमस्कार तब होता है -13

नमस्कार अहंकार को खोता है
हृदय जमीन को उर्वरा बनाता है
और विनय के बीज को बोता है
सत् संगति रूपी खाद को देता व
सद्विचार रूपी जल सिंचाई से ही
श्रद्धा, विनय और भक्ति का फल
सुसम्यक् नमस्कार के रूप में ही
नियम से सदैव सभी को प्राप्त होता है।

♦♦♦

दर्शन पा हरषती है -14

जल-बिन्दु एक मात्र

आदि सिंधु,विमल सिंधु के

दर्शन करने के लिये

आप्लावित रहती है

तृषा की तरह नित्यश:

दर्शन पाने के लिये

तरसती-तरसती है

दर्शन पा हरसती है

अवसर पा वह फिर

स्तुति वंदना के रूप में

बरबस ही सदा बरसती है।

♦♦♦

भक्ति की आँख -15

विवेक भक्ति की आँख है

इसलिए वह आँख वाली है

सच्ची श्रद्धा विनय वाली है

फलवती वो सफलता वाली है

हर्ष भरी वो हर्ष भरने वाली है

वो रूढ़ि या अन्ध भक्ति नहीं है

अत: वह सत्य शक्ति शाली है

और वह परमार्थ दिलाने वाली है।

♦♦♦

आरती उतारती -16

जल-बिन्दु निज
दोनों हाथ जोड़
दीन मुद्रा में ही
प्यासे नयनों से
हृदय से जिनको
सदा पुकारती है
मंगल आरती गाती
गा-गाकर संगीत से
आरती उतारती है।

♦♦♦

मंगलाचरण करती -17

जल बिन्दु अपने
मन-वचन-काय के
मंगल आचरण से
मंगलाचरण करती
पाप को धो-धोकर
दुख को काटती है
जीवन सुधारती है
स्वयं सम्हलती और
औरों को सम्हालती है।

♦♦♦

मंगलाचरण -18

ज- जय को
ल- लाती है
ब- बारबार
इन्दु- चन्द्रप्रभ
यानि-अष्टम तीर्थङ्कर
चन्द्र-लांछन से युक्त
चन्द्रप्रभ जिनवर को
निज ध्यान में लाती
भाव-स्तुति, वंदना कर
जय-जयकार लगाती
शुभ मंगलाचरण को
विशुद्ध हृदय से करती
तभी वह जिनभक्त-हृदया
श्रेष्ठ जल-बिन्दु कहलाती।

विशुद्धि-जगाता- 19

मंगलाचरण इष्ट के प्रति श्रद्धा
समर्पण का सही परिचय देता
आत्म विशुद्धि को भी जगाता
पुण्य बढ़ाता व पाप घटाता है।

♦♦♦

पुण्य फलों के लिए नहीं -20

पुण्य के लिए या पुण्य फलों के लिए
मंगलाचरण नहीं किया जाता किन्तु
मंगलाचरण से पाप घटता पुण्य बढ़ता
बिना मांगे बिना चाहे बढ़ता ही बढ़ता
इसलिए प्रत्येक कार्य के प्रारम्भ में
सदा शुभ मंगलाचरण किया जाता।

♦♦♦

सफल होता -21

पाप विघ्नों को ही लाता
पुण्य विघ्नों को नशाता
प्रारम्भ किये ही कर्म को
पूर्ण और सफल बनाता
सफल होता इसलिए सदा
मंगलाचरण किया जाता।

♦♦♦

भक्ति सदा खरी होती है -22

मंगलाचरण एक बार ही नहीं किन्तु
अनेकों बार भी किया जा सकता है
भक्ति का परिचय दिया जा सकता है
जो शब्द-शब्द भावों में भरी होती है
इसलिए वह भक्ति सदा खरी होती है।
सफलता की मिशाल लेकर चलती
आगे बढ़ बढ़ कर सफलता दिलाती
इसलिए कार्य के प्रारम्भ में की जाती
मंगलाचरण के रूप में पुकारी जाती
अपूर्ण वाक्यों को वह पूर्ण बनाती।

♦♦♦

त्रिविध-मंगल -23

आदि मध्य अवसान में लिया
अपने आराध्य का पवित्र नाम
तथा किया गया उनका ध्यान
विनय से किया गया गुणगान

कार्य की शुरूआत को शुभ
कार्य के मध्य को निर्विघ्न व
कार्यान्त में सफलता लाता है
मीठे-मीठे रसीले फल देता है

वह भी वनस्पतिक नहीं किन्तु
मार्मिक धार्मिक फल देता व
स्वपर का उद्धार कराने वाले
त्रिविध मंगलों को जन्म देता है।

इष्ट-स्मरण -24

इष्ट का शुभ स्मरण
केवल स्मृति ही नहीं
किन्तु एक संस्कृति है,
श्रद्धा और विनय की
जीती जागती कृति है,
महापुरुषों की जागृति,
और सच्ची आवृत्ति है।

♦♦♦

ऐसे करें मंगलाचरण -25

मंगलाचरण प्रभु या गुरु का स्मरण है
यहाँ-वहाँ देखते हुए नहीं और न ही
कोई काम करते हुए, चलते-चलते या
लेटे-लेटे, पैर फैलाये नहीं किया जाता है
और न कुछ खाते-पीते किया जाता है
किन्तु मंगलाचरण तो विनय से बन्द या
विनम्र नेत्रों से तथा स्थिर खड़े होकर
या सभ्य आसन से बैठकर हर्षित हो
शुभ ध्यान पूर्वक किया जाता है वही
मंगल आचरण, मंगलाचरण कहाता है।

♦♦♦

मंगलाचरण -26

ज - जन्म
ज - जरा
ज - जन्मान्तक (मरण)
ल - लयति/विनाशते हैं
उनको ही जल बिन्दु ने सिर
झुका विनय से नमन किया
उन्हें सदा नमन करती रही,
करती है और करती रहेगी।

♦♦♦

नमन -27

न- मन नमन नहीं तथा
नम-न भी नमन नहीं है
पर मन सहित किया गया
भाव नमन ही तो, नमन है
केवल शब्द नमन नहीं हैं
तथा मात्र काय नमन नहीं
किन्तु मन,वचन,काय से
किया गया नमन ही, नमन है।

♦♦♦

जल बिन्दु का नमस्कार -28

जिन और जिनेन्द्रों के लिये
गुरु और गुरुवरों के लिये,
मुनि और मुनिवरों के लिये,
श्रुत और श्रुतधरों के लिये
सविनय मन, वचन, काय से
श्रद्धा से और भक्ति भाव से,
जल बिन्दु का सिर झुकाकर
सहस्त्रों बार, बार-बार नमस्कार।

♦♦♦

गुरु चरणों में शीश-29

जो हम सबका
अज्ञानतम नशाता,
ज्ञान प्रकाश लाता,
और मार्ग दिखाता
इंसान में सर्वप्रथम
इंसानियत को लाता
फिर भगवान बनाता
इसलिये उन हितकर
प्रवचन दाता-प्रदाता
गुरुओं के चरणों में
जलबिन्दु सौभाग्य पा
श्रद्धा-भक्ति से सविनय
अपना शीश झुकाता।

♦♦♦

गुणगान -30

जलबिन्दु खुशी से
आज इठला रही है
अपना सौभाग्य मान
प्रभु व गुरु के पवित्र
गुणगान गा रही है व
गाती ही चली जा रही है।

जल बिन्दु एक मिशाल -31

मंगलाचरण कर
जल बिन्दु अब
बिन्दु नहीं रही
अपितु वह तो
सिंधु की तरह
विशाल बन गई
संसार में एक
मिशाल बन गई।

महानायक-जल बिन्दु -32

जल बिन्दु स्वयं ही
महानायक के रूप में
महाकाव्य रचने की
सुदृढ़ प्रतिज्ञा करती
प्रभु व गुरु नाम की
जय जयकार करके
जल बिन्दु महाकाव्य
लेखन प्रारम्भ करती।

महाकाव्य नायक -33

घर का कोई एक नायक होता है
समाज का भी एक नायक होता है
नगर का कोई एक नायक होता है
देश का कोई एक नायक होता है
राष्ट्र का कोई एक नायक होता है
संघ का कोई एक नायक होता है
इसीलिए वह सदा लायक होता है उसी
प्रकार जल बिन्दु ही महाकाव्य का भी
महानायक जल की एक बिन्दु ही है
नायक व महानायक होता है ।

चन्द्रप्रभ को नमस्कार -34

चन्द्रमा भी माँ सी है क्योंकि
चन्द्रमा में छिपा माँ अक्षर है
यदि तुम पूछो किसकी माँ सी है?
तब एक ही उत्तर होगा कि, वह
सुशीला जल बिन्दु की ही माँ सी है
कैसे? समझो ऐसे कि चन्द्रमा में
चन्द्रकान्त मणी की जिन प्रतिमा है
चन्द्रकान्त मणी से सदा अमृत सम
जल बिन्दु झरती है, जन्म पाती है
अत: वह भी एक सच्ची माँ सी ही तो है
चन्द्रप्रभ तीर्थंकर का चिह्न चन्द्रमा है
अत:जलबिन्दु ने चन्द्रप्रभ तीर्थेश को
मंगलाचरण में इष्ट देव के रूप में ही
स्मरण किया है, नमस्कार किया है।

अधिष्ठाता - इष्ट देव -35

चन्द्र प्रभ तीर्थङ्कर चन्द्र चिह्नित हैं
चन्द्रमा सम धवल और शीतल हैं
वे केवल शीतल ही नहीं हैं किन्तु
वे शीतलता के प्रदाता भी हैं तथा

चन्द्रमा केवल शारीरिक शीतलता
प्रदान करता है परन्तु चन्द्र प्रभ जिन
भक्तों के हृदय को तथा आत्मा को
शीतलता देते अत: वे महान होते हैं

इसलिए अष्टम तीर्थङ्कर श्री चन्द्र प्रभ
जलबिन्दु के अधिष्ठाता व इष्ट देव है
यही कारण हैं कि जल बिन्दु ने उन्हें
भाव सहित स्मरण कर नमस्कार किया।

♦♦♦

चन्द्र प्रभ-वन्दना -36

हे चन्द्र प्रभु तीर्थङ्कर! हे महासेन के व
लक्ष्मणा देवी के नन्दन! जगत वन्दन!
हे वाराणसी, चन्द्रपुरी के महाराजा!
आपने चैत्र कृष्णा पंचमी को जन्म ले

भाद्र शुक्ला सप्तमी को निर्वाण पाया
डेढ़ सौ धनुष ऊँचे तथा दस लाख पूर्व
आयु वाले, आप, श्वेत वर्णी देह धारी थे
अत: मेरा आपको शिरसा नमस्कार हो।

♦♦♦

अपूर्व स्वागत -37

जब श्रावण माह का शुभागमन हुआ
जल बिन्दु महाकाव्य का जन्म हुआ
तब बहुत-बहुत सभी ने आदर्श मयी
हर्ष भरा उसका सहज स्वागत किया
नभ से बादलों की जोर शोर मृदंगवत्,
शंख वत् ध्वनि सुन सभी दंग रह गये
झींगुरों ने स्वर ताना, दर्दुरों ने स्वर दिया
पपीहों और कोयलों ने भी साथ दिया
तो फिर सुन्दर मयूर से भी रहा न गया
उसने पूरे ऊँचे अपने पंख फैलाये और
नृत्य प्रारम्भ किया विद्युत ने चित्र खींचे
जिसको देखने सारी धरती रंग-बिरंगे
पुष्पों से चित्रित हरा दुशाला ओढ़े आई,
पाप सन्ताप हटा सभी में खुशियाँ छाईं
हर्ष मनाया मंगल गीत गाये यह देख
सभी फूले न समाये तभी वसुंधरा ने
नदी, नाले के रूप में हर्ष भरे अश्रु बहाये
जलबिन्दु महाकाव्य ने न भूतो, न भविष्यति
ऐसा स्वागत पाकर अनेकों उद्देश्य और
साध्य/लक्ष्य की सिद्धि के लिए सर्वप्रथम
अपने इष्ट का भावों से भरा कलश ले
मंगलाचार कर स्मरण भी किया और
अपनी हार्दिक आस्था का परिचय दिया।

अध्यायान्त-मंगलाचरण

जो जन्म अठारह दोषों में कहा है,
इसे नाशने को प्रभु ने कहा है।
फिर नाचते क्यों मिठाइयाँ बटाते,
क्यों जन्म उत्सव अपना मनाते।।1।।

जो जन्म मरण का साथी कहा है,
जो भव भ्रमण का राही रहा है।
पा जन्म जिसने किया धर्म साधन,
उनका ही जन्म सार्थक हुआ है।।2।।

लिया जन्म तुमने सफल भी करो तुम,
शिव मार्ग पर फिर चलते रहो तुम।
तजो तुम बुराई कुछ अच्छाई धारो,
सफल तुम अपने जन्म को बना लो।।3।।

हे पुष्प! हे पुष्प! पुष्पदन्त जिनेश,
भेजूँ पर भेजूँ पुष्पदन्त हमेश।
दर्शन तुम्हारा सदा मैं करूँगा,
भव जंगलों में कभी न भ्रमूँगा।।4।।

(द्वितीय खण्ड में- चौदहवाँ अध्याय समाप्त)

अध्याय 15 -: शिष्टाचार

अनुक्रमणिका

01 वह मुझे सुहाता
02 सर्वोत्तम आचार
03 शिष्यों का शिष्टाचार
04 इष्ट-श्रद्धा
05 इष्ट-रुचि
06 इष्ट-सम्मान
07 इष्ट को न भूलना
08 इष्ट से विपरीत...
09 विपरीत सम्बन्ध
10 समर्थन न देना
11 प्रतिकूल ही शूल है
12 प्रतिकूलता न छोड़े तो
13 लौटकर आ जाता
14 अपना कर्तव्य
15 ज्येष्ठ सम्मान
16 मंगलाचरण का आधार
17 नम्र नेत्रों से
अध्यायान्त-मंगलाचरण

वह मुझे सुहाता -01

मंगलाचरण मंगल आचरण
केवल गाता या दिखाता नहीं
पर शिष्टाचार का पाठ पढ़ाता,
शुद्ध आचरण को लाता वह ही
मंगलाचरण मम मन को भाता
और सदा ही वह मुझे सुहाता।

सर्वोत्तम आचार -02

शि-यानि शिष्य का
इष्ट-यानि सर्वोत्तम
आचार, शिष्टाचार है।

शिष्यों का शिष्टाचार -03

अपने से श्रेष्ठ, अपने से ज्येष्ठ
यूँ कहें सर्वश्रेष्ठ और ज्येष्ठ
प्रभु तथा गुरु होते हैं वे ही
सु गुणी पारस मणि होते हैं

अचेतन पारस मणि तो मात्र
लोहे को स्वर्ण बनाती है पर
वे अधम से अधम को भी
अपने समान उत्तम बनाते हैं

कार्य के प्रारम्भ में उनका
पूर्ण पवित्र स्मरण करना ही
उत्तम शिष्यों का शिष्टाचार है
नहीं करना, अशिष्टाचार है।

इष्ट-श्रद्धा -04

जिन पर श्रद्धा की जाती
जल बिंदु उन्हें इष्ट मानती
उन्हें ही हृदय से चाहती,
ध्यान लगाती और ध्याती
उनके ही पथ पर चलती,
कदम पर कदम बढ़ाती
परोक्ष में उनका नाम सुन
प्रशसंनीय चर्या को देख
और उनकी प्रशंसा सुन
मन ही मन प्रसन्न होती
व उनका समर्थन करती,
दर्शन करने को ललचाती
सानिध्य की प्यास बढ़ाती,
नित पुरुषार्थ भी करती,
सफलता पा बहु हर्षाती,
उनके पग-पथ पर चलती
आज्ञा अनुशासन पालती
तभी शिष्टाचारियों की यह
शिष्टाचार पद्धति कहलाती।

इष्ट-रुचि -05

कभी अभिमानी न होना
अपने इष्ट की विनय करना
कभी उनके आगे या फिर
उनकी बराबरी से न चलना,
न बैठना, न सोना न कभी
ऊँचा आसन लगाना, यह भी
विनय का एक प्रकार है तथा
पहले सोना, बाद में उठना,
पैर फैलाना, सिर ऊपर कर
हाथ बाँधकर, रूखे स्वर में,
तेज स्वर में उनसे बात करना
समझाने पर, ध्यान न देना,
जवाब देना, बीच में बोलना,
उनके सम्मुख आदेश देना
शोर-गुल करना या कराना,
लड़ना-झगड़ना अविनय है
ऐसा जान/मान सावधान रहना
भूल हो तो पश्चाताप करना
प्रायश्चित्त लेना शिष्टपुरुषों का
और विशिष्ट पुरुषों का यह
आचार ही शिष्टाचार है।

इष्ट सम्मान -06

इष्ट जब कभी रोम-रोम में प्रविष्ट होता
समाविष्ट होता तभी वह प्रतिष्ठित होता
प्रतिष्ठा पाता, तत् सदृश्य कोई न भाता
आता भी कोई तो यथोचित् सम्मान देता,
अनादर न करता, शिष्टाचार को पालता।

💧💧💧

इष्ट को न भूलना -07

किसी के प्रभाव को देख,
महिमा सुन, भावुक न होना
इष्ट को न भूल, उनकी गरिमा,
महिमा में भावों का संतुलन
बनाये रखना ही शिष्टाचार है।

💧💧💧

इष्ट से विपरीत -08

कोई अपने इष्ट से विप्रकृष्ट है,
विपरीत है तो उससे दूर रहना,
दूरियाँ रखना, रुचि न रखना,
सदैव उससे माध्यस्थता रखना,

इष्ट से विपरीत लोगों को देख
हर प्रयत्न से उस विपरीतता को
दूर करना अन्यथा तुम उससे
दूरी बनाये रखना शिष्टाचार है

अशिष्ट चाहे भी निकटता,
तो उसे निकटता न देना
बोले तो भी न बोलना ,
हंसे हसायें तो भी न हँसना

कुछ भी मांगे तो न देना,
कुछ भी दे तो भी न लेना
जब तक शिष्टता न आ जाये
माध्यस्थता बनाये रखना

शिष्ट पुरुषों का सार ,
और सारभूत शिष्टाचार है ।
दूर कर दूर रहना सदाचार है,
जो शिष्ट महापुरुषों का शिष्टाचार है।

विपरीत सम्बन्ध -09

इष्ट से विपरीत लोगों की
विपरीतता दूर किये बिना
और विपरीतता हटाये बिना
संबन्ध रखना, कार्यों में या
उनकी बातों में रुचि लेना,
हर्षित होना, विपरीतता का
मीठा-मीठा सर्मथन देना,
सम्मान या प्रशंसा के लिए
इष्ट के प्रति श्रद्धा को खोना
और विपरीतता को बढ़ाना,
गिरते हुए को गिराना ही तो
उसे आग में झोंकना और
स्वयं उसमें कूदना है बस
इन सबमें विवेक रखना ही
शिष्ट पुरुषों का शिष्टाचार है।

समर्थन न देना -10

प्रतिकूल को यदि अनुकूल
न बना सको तो फिर कभी
स्व सम्मान-प्रशंसा के लिए
नाम अथवा प्रतिष्ठा के लिए
प्रतिकूलता का समर्थन न देना,
रुचि न लेना ही शिष्टाचार है।

प्रतिकूल ही शूल है -11

इष्ट के प्रतिकूल शूल होते हैं
जो शूलवत् चुभते हैं इसलिए
वे वीभत्स व बेखुशबू होते हैं
तभी लोग उनसे दूर अथवा

सदैव सावधान रहते हैं अत:
उनको फूल बनाना या फिर
मूल से उखाड़ दूर फेंकना ही
शिष्ट पुरुषों का शिष्टाचार है।

प्रतिकूलता न छोड़ें तो -12

इष्ट के प्रतिकूल तुम्हारी
कभी कोई प्रशंसा करे,
आदर अथवा सम्मान दे,
तुम्हारे कार्यों में सहयोग दे
पर प्रतिकूलता न छोड़े
तो दिया गया सम्मान व
किया गया सहयोग व्यर्थ है
तुम्हारे लिए अनर्थ ही है
ध्यान रखना, शिष्टाचार है।

लौटकर आ जाता - 13

खल को शिष्टाचार का
ज्ञान कहाँ विवेक कहाँ
तभी तो समझाना पड़ता है
रे खल !
कण भर का रूप तेरा
क्षण भर का जीवन तेरा
न चाहता कोई
न अपनाता कोई
तेरे आते ही
कौन नहीं घबड़ाता
बडबड़ाता
भगाने के उपाय
खोज - खोजकर
स्वेद को
अविलम्ब
भगाता
पर तू
अवसर पर
बार- बार
लौट-लौटकर
आ जाता ।

♦♦♦

अपना कर्तव्य -14

प्रतिकूलों की प्रतिकूलता मिटाना
अननुकूलों को भी अनुकूल बनाना
उनका उपकार ही अपना कर्तव्य है
यही तो इष्ट के प्रति सच्ची श्रद्धा व
समर्पण शिष्ट पुरुषों का शिष्टाचार है।

♦♦♦

ज्येष्ठ सम्मान -15

सम्मुख ज्येष्ठों को आता देख,
प्रसन्न होना, खड़े होना और फिर कुछ कदम
आगे जाकर उनका
प्रतिग्रह करना, नमस्कार करना
उचित स्थान पर लाना/बैठाना
तथा उनकी क्षेम कुशल पूछना,
उचित सत्कार करना शिष्टाचार है।

♦♦♦

मंगलाचरण का आधार -16

आराध्य की स्तुति के लिए,
उनके प्रति प्रार्थना के लिए
योग्य स्थान पर,सही दिशा में
स्थिर खड़े होना,हाथ जोड़ना,
सिर को झुकाना,हर्षित होना,
उत्तम वचनों से गुणानुवाद
सुनाना, सुनना शिष्टाचार है
मंगलाचरण का आधार है।

♠♠♠

नम्र नेत्रों से -17

मंगलाचरण प्रभु या गुरु का स्मरण है
यहाँ-वहाँ देखते हुए भी नहीं और न ही
कोई काम करते हुए,चलते-चलते या
लेटे-लेटे, पैर फैलाये या, न खाते-पीते
किन्तु विनय से बन्द अथवा नम्र नेत्रों से
स्थिर ध्यान से हर्षित हो किया गया
आचरण ही, मंगलाचरण कहलाता है।

♠♠♠

अध्यायान्त-मंगलाचरण

शिष्टों ने हमको शिक्षायें दी हैं,
शिष्टों ने हमको दीक्षा भी दी है।
शिष्टों ने चलना हमको सिखाया,
शिष्टों ने ही शिष्टाचार को पढ़ाया।।1।।

जो शिष्ट होंगे गुरु वे ही बनेंगे,
जो शिष्ट होंगे प्रभु वे ही बनेंगे।
बिना शिष्ट कोई शिष्य नहीं है,
शिष्ट को ही शिष्य कहते सभी हैं।।2।।

शिष्टाचार बिन यदि शिष्य बना जो,
शिष्य का वह केवल बाना बना वो।
न उठ सकेगा परमार्थ में कभी वो,
शिष्ट ही शिष्य सुशिष्यों को बनाता।।3।।

जो शिष्य सदा शिष्टाचारी बनेगा,
वो शिष्य सुशिष्य हरदम रहेगा।
मन से चढ़ा जो शिष्य की सीढ़ी,
गुरुता सदा वो पाता ही रहेगा।।5।।

विमल! शिष्य तेरा विमलता रखूँगा,
विमल! शिष्य तेरा विमलता भजूँगा।
सन्मति को मैंने जिनसे है पायी,
गुरू पाद पंकज पुजारी रहूँगा।।6।।

(द्वितीय खण्ड में- पन्द्रवाँ अध्याय समाप्त)

अध्याय 16-:प्रभु दर्शन

अनुक्रमणिका

01 प्रभु दर्शन
02 दर्शन व देखना एक नहीं
03 प्रभु स्तुति
04 भगवत् भक्ति
05 जगन्नाथ स्तुति
06 दीनानाथ
07 दयालु
08 दीनदयाल
09 दया सिंधु
10 कृपा सिंधु
11 जगत हितैषी
12 देव दर्शन
13 दर्शन/प्रदर्शन
14 दूरदर्शन
15 भक्त को ही दर्शन
16 निर्वाण प्राप्त करूँगा
17 मैं और वो एक है
18 एक और नेक
अध्यायान्त-मंगलाचरण

प्रभु दर्शन -01

जय जयति जय जय कर
जलबिन्दु ने जिन मंदिर में
प्रवेश कर घंटानाद किया,
भक्ति से त्रय परिक्रमा कर
त्रियोगों से नमस्कार किया,
भक्ति के मंगल दीप जलाये,
प्रभु स्तुतियों के सुमन चढ़ाये,
ह्रदय को पवित्रता से निखारा,
और प्रभु को अपलक निहारा,
श्रद्धा से अपना शीश झुकाया,
विनय से साष्टांग नमस्कार कर
दर्शन पा अपना सौभाग्य मनाया ।

दर्शन व देखना एक नहीं -02

दर्शन व देखना अर्थ से भले ही एक है
परन्तु शब्द से और भाव से एक नहीं है
दर्शन सच्चे देव,शास्त्र या गुरु के होते हैं
इसलिए वे आनंद से भरें होते हैं
पर देखना जगत की सभी वस्तु का होता है
देखने में पूज्य व पूजक के भाव नहीं, किन्तु
दर्शन में पूज्य व पूजक के शुभ भाव होते हैं
इसलिए वे हदय की कलुष्यता खोते है।

प्रभु स्तुति -03

जल बिन्दु ने
स्तुति करना
प्रारंभ किया
हे प्रभु! आप
स्वयं प्रभु हैं
प्र-यानि प्रकृष्ट
भू-यानि पृथ्वी
पर विराजते हैं
अष्टम वसुधा
पर विराजते हैं
इसलिये "प्रभु" है।

💧💧💧

भगवत् भक्ति -04

आप तो भगवान हैं
भग - यानि ज्ञान
अर्थात् केवलज्ञान
वान-यानि सहित हैं
अत: "भगवान" हैं
निश्चय से सभी
शरीर धारी प्राणी
भगवान हैं परन्तु
वे मात्र व्यवहार से
सच्चे भगवान तो
केवलज्ञानी ही हैं।

💧💧💧

जगन्नाथ स्तुति -05

आप तो अनाथ नहीं हैं
क्योंकि कभी किसी से
कुछ मांगते नहीं हैं तथा
मांगने की इच्छा नही रखते
न कभी किसी से लेते हैं ,
न किसी को कुछ देते हैं
किन्तु आप सर्व सम्पन्न हैं
अथवा सभी में प्रधान हैं
अनाथों के भी नाथ है
इसलिये आप "जगन्नाथ" है।

♦♦♦

दीनानाथ -06

आप दीन-हीन
प्राणियों की सदा
दीनता-हीनता को
समूल मिटा देते हैं
इसलिये "नाथ" ही नहीं
किन्तु दीनों के नाथ हैं
अर्थात् "दीनानाथ" हैं।

♦♦♦

दयालु -07

आपने सभी पर
कष्टों से दया की,
सभी की रक्षा की
आपकी भक्ति से
आज भी व्यक्ति
कष्टमुक्त हो रहे हैं
अतः आप "दयालु" हैं।

♦♦♦

दीनदयाल -08

प्रभु!आपके सम्मुख तो
जगत का प्रत्येक प्राणी
दीन और हीन है, आप
उनको सन्मार्ग दिखाते हैं
और अपने जैसे बनने की
शिक्षा दे,राह पर चलाते हैं
इसलिये आप "दीनदयाल" हैं।

♦♦♦

दया सिंधु -09

आपमें अनंत, अथाह,
असीम मकराकर की
जल बिन्दुओं की तरह
दया ही दया समाई है
परिपूर्ण भरी हुई है
इसलिये आप "दया सिंधु" हैं।

कृपा सिंधु -10

आपने समवशरण में
विराजमान अनेकों ही
भव्यों को उपदेश देकर
असीम कृपा कर, उन्हें
दुर्गति जाने से बचाया,
भव भ्रमण से बचाया है
इसलिये आप "कृपा सिंधु" हैं।

जगत हितैषी -11

आपने सभी जाति वर्ग के
भेदभाव से रहित होकर
प्रत्येक प्राणी को हितकारी
सद्-उपदेश दिया इसलिये
आप सच्चे जगत् "हितैषी" हैं।

देव दर्शन -12

देखना मात्र दर्शन नहीं है
क्योंकि देखते तो सभी हैं
अथवा दिखते भी सभी हैं
परन्तु भक्त का, मंदिर में
भगवान को देखना या फिर
अपने मन मन्दिर में देखना
निराला ही होता है इसलिये
वह बहु फल वाला होता है
निष्फल नहीं,सफल होता है।

♦♦♦

दर्शन/प्रदर्शन -13

देव दर्शन चाहे पास से हो
या फिर दूर से हो परन्तु वो
सच्ची श्रद्धा के साथ ही हो,
शुद्ध हृदय से हो,निष्काम हो,
निष्प्रमाद और निश्चल हो तो
दूर से भी किये गये देव दर्शन
जिन दर्शन ही तो प्रभु दर्शन हैं
प्र-दर्शन यानि उत्कृष्ट दर्शन हैं
अन्यथा वह सब प्रदर्शन ही है।

♦♦♦

दूरदर्शन -14

जलबिन्दु ने पवित्र
मन से दर्शन किये
देव दर्शन किये व
जिन दर्शन किये
पर प्रदर्शन नहीं किये
और न ही कभी भी
देव दर्शन के नाम पर
दूरतः, दूरदर्शन किये।

भक्त को ही दर्शन -15

भगवान सभी को नहीं
किन्तु किसी-किसी ही
किस्मत वालों को तथा
सच्ची श्रद्धा वालों को
सच्चे पुरुषार्थियों को
भक्त हृदयों को दिखते हैं
अवशेषों को तो केवल
मूर्ति ही दिखा करती है
उसी में ही देव की
नियमतः परिपूर्ति होती है।

निर्वाण प्राप्त करूँगा -16

जल बिन्दु ने गुरु का स्मरण किया,
कृतज्ञता का परिचय दिया मैं अपनी
इच्छा से नहीं गुरु निर्देश पर चलूँगी
तो अवश्य ही एक दिन निर्वाण को
अति शीघ्र नियमत: मैं प्राप्त करूँगी।

♦♦♦

मैं और वो एक हैं -17

जो वो हैं, वही तो मैं हूँ क्योंकि
मैं उनमें व वे मुझमें समाये हैं
इसलिए अन्दर और बाहर से
मैं और वो दो नहीं, एक ही है
मेरी व उनकी हर चर्या, साधना
जिनागम के अनुसार ही है
आपसी विचारों में भी कोई
अन्तर या कोई भेद नहीं है
न भेद भरी कोई अज्ञानता है
और न कहीं अहंकारता है
विचारों में हमारी एकता है।

एक और नेक -18

जो उनके विचार हैं
वे ही मेरे विचार हैं
आचरण पद्धति भी
अलग-अलग नहीं
अन्य किसी का भी
अनुसरण नहीं चूँकि
गुरु के प्रति हमारा
सच्चा ही समर्पण है
अन्य को नहीं अत:
आचरण एक है और
हम एक है, नेक हैं।

अध्यायान्त-मंगलाचरण

मैं दर्शन करूँगा न प्रदर्शन करूँगा,
श्रद्धा सहित जिन अर्चन करूँगा।
दर्शन है अर्चन का ज्येष्ठ भ्राता,
दर्शन बिना अर्चन अधूरा रहेगा।।1।।

जिन के भी दर्शन निज के भी दर्शन,
कारण के दर्शन फिर कार्य के दर्शन।
कारण सहित ही सभी कार्य होते,
कारण बिना न कभी कार्य होते।।2।।

आप्त दर्शन से आत्म दर्शन भी करो,
इसी क्रम से तुम परमात्मा भी बनो।
आत्म दर्शन बिना मात्र दर्शन रहा तो,
भटकते ही भटकते जग में भ्रमोगे।।3।।

दर्शन से शीतलता मुझको मिलेगी,
सन्तप्तता भव की शीघ्र ही मिटेगी।
दर्शन से राह मुक्ति की मिलेगी,
दर्शन से चाह भव की घटेगी।।4।।

(द्वितीय खण्ड में- सोलहवाँ अध्याय समाप्त)

अध्याय 17- भगवान मूर्ति

अनुक्रमणिका

01 दो-आँखें
02 गणतंत्र
03 स्वतंत्र
04 मूर्तिक आँख
05 मूर्ति दर्शन साधन है
06 मूर्ति मूर्ति है
07 भगवान मूर्ति नहीं
08 मूर्ति साध्य नहीं
09 मूर्ति मन्दिर के प्राण हैं
10 मूर्ति दर्शन
11 मूर्ति दर्शन उन्हें आवश्यक
12 मूर्तिमान को देखो
13 देव दर्शन गृहस्थों को
14 अकृत्रिम जैन प्रतिमा
15 भगवान नजर आयें
16 तब तक देखो
17 भगवान मूर्ति नहीं
18 मूर्ति-भगवत् भ्रान्ति
19 भक्त की पुकार
20 स्वरूप पहचानो
21 भगवान को नहीं जान पाओगे
22 भगवान को नहीं पा पाओगे
23 मूर्ति में भगवान देखो
24 विराजमान करो

25 भगवान बनना
26 तू भगवान बन जायेगा
27 न-लायक
28 मैं भगवान आत्मा हूँ
29 अनन्त चतुष्टय
30 मूर्ति इतिहास
अध्यायान्त-मंगलाचरण

दो-आँखें -01

मूर्ति को देखने वाली आँख
अलग है और भगवान को
देखने वाली आँख अलग है
दोनों भिन्न-भिन्न हैं इसलिये
दोनों के कार्य भी भिन्न हैं।

गणतंत्र -02

भगवान के स्वरूप को
देखने वाली आँख और
मूर्ति देखने वाली आँख
केवल अपने कार्य में ही
अभिन्न,स्वाधीन-स्वतंत्र है
परस्पर कार्य में परतंत्र है
ऐसा इनका बिना यंत्र के व
बिना मंत्र के अपना गणतंत्र है।

स्वतंत्र -03

आँख तो आँख का
और नाक-नाक का
कार्य करने में जैसे वे
पूर्ण स्वाधीन, स्वतंत्र हैं
परन्तु पारस्परिक कार्य
करने में वे पूर्ण परतंत्र हैं
तो कहो? भगवान को
देखने वाली आँख और
मूर्ति देखने वाली आँख
एक कहाँ हो सकती है?
कभी कैसे हो सकती है?
दोनों के कार्य एक कहाँ?
एक से कैसे हो सकते हैं?
भगवान को देखने वाली आँख
सदा भगवान को ही देखेगी
मूर्ति को देखने वाली आँख
सदा मूर्त पदार्थ को ही देखेगी ।

मूर्तिक आँख -04

पशु-पक्षियों की भी
दो ही आँखें होती हैं
जो मूर्तिक ही होती है
मूर्ति को ही देखती हैं
जो आँख अमूर्तिक है
वह ज्ञान की आँख है
अमूर्तिक आँख ही तो
भगवान को देखती है
परन्तु मूर्तिक आँख तो
भगवान को देखने में
पूर्ण असमर्थ ही होती है।

♦♦♦

मूर्ति दर्शन साधन है -05

प्रारंभिक साधकों के लिये
मूर्ति दर्शन भले ही प्रथम
साधन हो सकते हैं परंतु
निष्पन्न साधकों के लिये
साध्य तक पहुँचाने में वे
पूर्णतः असमर्थ ही होते हैं।

♦♦♦

मूर्ति मूर्ति है -06

हे विज्ञ! ध्यान रखो,
मूर्ति केवल साधन है
भगवान को जानने में,
समझने में, पहचानने में
परन्तु मूर्ति मूर्ति ही है,
वह कहीं भगवान नहीं।

भगवान मूर्ति नहीं -07

भगवान मूर्ति नहीं
मूर्ति भगवान नहीं
साधन है साध्य नहीं
बस इतना सा ज्ञान ही
भगवान को जानने की
एक सच्ची पहचान है।

मूर्ति साध्य नहीं -08

मूर्ति को ही भगवान मानना
भगवान को जानने और
पहचानने की, बड़ी भूल है
देव दर्शन के अनुकूल नहीं
प्रतिकूल ही प्रतिकूल है।

●●●

मूर्ति मन्दिर के प्राण हैं -09

मूर्ति व्यर्थ ही है ऐसा नहीं
किन्तु मूर्ति का भी अर्थ है
सत्यार्थ है वह भी परमार्थ है
परमार्थ का साधन, आधार है
तभी तो शिल्पकारों के द्वारा
मूर्ति का गढ़ा गया आकार है
प्रतिष्ठा का भी एक प्रकार है
आम प्राणियों की श्रद्धा का,
दर्शन, अभिषेक, पूजा का
भक्ति, भजन, स्तुति, वंदना
और जिनालयों का प्राण है।

●●●

मूर्ति दर्शन -10

मूर्ति उन्हें ही व्यर्थ होती है
जिनके पास ज्ञान की सच्ची
आँख नहीं होती,समझ और
समझदारी की बात नहीं होती
आम व सामान्य जन के बीच
अपने प्राचीन इतिहास की या
शास्त्र और शास्त्र कर्ता की
सही-सही पहचान नहीं होती।

मूर्ति दर्शन उन्हें आवश्यक -11

जिनका मन चंचल होता है,
पल-पल में पलायमान होता है,
ध्यान खोता, स्थिरता खोता,
उपयोग की एकाग्रता खोता,
अटकता, भटकता उनको
प्रारम्भ दशा में मूर्ति दर्शन भी
अवश्य ही आवश्यक होता
और महत्वपूर्ण ही होता है।

मूर्तिमान को देखो -12

मूर्ति में तुम केवल
मूर्ति ही नहीं और
स्वर्ण, चाँदी या
बहुमूल्य मणि भी
मत देखते रहो
मूर्तिमान को भी देखो
तभी सच्चे दर्शन होंगे।

देव दर्शन गृहस्थों को -13

गृहस्थ तो गृहस्थ है
अत: भटकते उनके
मन की स्थिरता हेतु
मूर्ति दर्शन, पूजन व
भक्ति आवश्यक है
योगी योग में रहते हैं
इसलिये उनके लिये
आत्मदर्शन आवश्यक
व परमावश्यक होता है।

अकृत्रिम जैन प्रतिमा -14

जैन मूर्ति का एक इतिहास है

सर्वाधिक प्राचीन है, अनादि है,

शाश्वत है, क्योंकि अकृत्रिम है

अकृत्रिम जैन प्रतिमा के रूप में

निहित है बाकि सभी कृत्रिम हैं

आदि हैं शाश्वत नहीं हैं इसलिये

वे सब नाशवान हैं, न-आशवान हैं।

भगवान नजर आयें -15

मूर्ति को देखो

पर ऐसा देखो,

व इतना देखो

कि उसमें तुम्हें

भगवान नजर

आने ही लगें

तो मूर्ति दर्शन

करना सार्थक,

और सफल है।

तब तक देखो -16

मूर्ति को देखो
देखते ही रहो
और तब तक
तुम देखते रहो
जब तक तुम्हें
भगवान नजर
न आने लगें।

♦♦♦

भगवान मूर्ति नहीं -17

जिसने मूर्ति को ही
भगवान मान लिया
समझो उसके मन ने
चेतन को अचेतन व
अचेतन को चेतन ही
विपरीत मान लिया।
ऐसी विपरीतता रही तो
भगवान कभी भी तुम्हें
कैसे और फिर कभी
तुम्हें कहाँ मिल सकेंगे?

♦♦♦

मूर्ति-भगवत् भ्रान्ति -18

जिसने मूर्ति को भगवान माना
उसने क्या भगवान को पहचाना?
भगवान की सही पहचान बिना
क्या भगवत् दर्शन को जाना?
क्या भगवत् दर्शन को समझा?
क्या इसको समझे बिना कभी
भगवान को पाना सम्भव होगा?
भगवान भी यदि आ गये तो भी
वे तुमसे दूर बहुत दूर खड़े होंगे
अथवा वे तुम्हें दूर खड़ा कर देंगे
या फिर तुम उन्हें भगवान मानने से
नियम से इन्कार कर दोगे तथा वे
तुम्हें भक्त मानने से इन्कार कर देंगे।

♦♦♦

भक्त की पुकार -19

भक्त ने भगवान को
जोर-जोर से भी पुकारा
हे भगवन्! आप आओ,
मेरे इस मंदिर में आओ
मेरे मन मंदिर में आओ,
मेरे घर पर भी आओ,
और जब वे आये तब
उसने उन्हें दुत्कार कर
घर से बाहर भगा दिया,
और कहा- कि तुम मेरे
भगवान नहीं हो क्योंकि
उसने वास्तविक उनको
कभी जाना ही नहीं था
और पहचाना भी नहीं था
ज्ञान होने पर उसने अपने
आँसू बहाये, रोया चिल्लाया
और गिड़गिड़ाते हुए बोला
हे भगवान! मुझ अज्ञानी ने
ये क्या अपराध कर डाला
मुझे माफ करो, माफ करो।

स्वरूप पहचानो -20

जिसने मूर्ति को ही
भगवान जाना, माना
वह कभी भगवान को
सही न जान पायेगा व
न उन्हें पहचान पायेगा
उसके यहाँ तो भगवान
कभी भी नहीं आयेंगे
भूल से आ भी गये तो
वापिस ही चले जायेंगे
ध्यान रखो! फिर कभी
वे वापिस नहीं आयेंगे
इसलिये भगवान को
बुलाने के पहले तथा
भगवान के निकट या
सम्मुख जाने के पहले
भगवान का स्वरूप भी
जानना आवश्यक है
उन्हें जानो और पहले
स्थिरता से पहचानो।

भगवान को नहीं जान पाओगे -21

भगवान पाषाण के होते हैं
सोने के, चाँदी के होते हैं
पीतल या ताँबे के होते हैं
पर यह भ्रम ही भ्रम तो है
भगवान ने उसे बहुत कहा
बहुत बार उसको समझाया,
पर था वह पूर्ण बे अकल
न भगवान की मान पाया,
न भगवान को जान पाया
और न उन्हें पहचान कर
कभी वह अपना पाया।

♦♦♦

भगवान को नहीं पा पाओगे -22

आज हो या फिर कल
जब तक तुम्हारी अकल
बे अकल है, भगवान को
कभी भी न जान पाओगे,
न कभी भी पहचान पाओगे
और तब तक तुम कभी भी
भगवान को नहीं पा पाओगे।

♦♦♦

मूर्ति में भगवान देखो -23

मूर्ति को देखो! परन्तु
इस तरह से देखो कि
उसमें ही तुम्हें भगवान
दिखें और दिखते रहें
फिर वह मूर्ति भले ही
छूट जाये, पर भगवान
तुम्हारे नेत्रों में बस जायें
हृदय कमल में आ जायें
वीडियो कैमरे की तरह
इस प्रकार स्थाई हो जाये
कि जब-जब भी तुम उन्हें
देखोगे तब-तब केवल वे
तुम्हें भगवान ही दिखें और
तुम्हारे नेत्र बंद हों या खुलें
कभी कोई फर्क नहीं पड़ेगा
परन्तु तुम्हें योगियों की तरह
निश्चल ध्यान में एक मात्र
भगवान ही भगवान दिखते रहें।

विराजमान करो-24

भगवान को केवल
दोनों नेत्रों में ही नहीं
किन्तु हृदय में भी
लाना है बसाना है।
अपने मन मंदिर में
हृदय कमलासन पर
विराजमान करना है।
पर तुम ध्यान रखना
देह छूटने पर फिर
न मन रहेगा न हृदय
यदि रहेगी तो अपनी
एक आत्मा इसलिये
अपनी आत्मा में ही
भगवान को लाना है
विराजमान करना है
ध्यान लगाना है और
अपनी आत्मा को ही
भगवान आत्मा बनाना है।

भगवान बनना -25

जिसने भगवान को
सच्चे मन से पहचाना
उसने ही तो नियम से
भगवान बनना ठाना
तथा जिसने स्वयं को
भगवान बनना ठाना
उसने ही सच्चे मन से
भगवान को पहचाना
भगवान को जानना व
पहिचानना मंदिर में जा
उनके गुणगान गाना
श्रेष्ठ ध्यान लगाना भी
भगवान को पाने का,
भगवान बन जाने का
एक सरल तरीका है।

तू भगवान बन जायेगा -26

जो भी भगवान को
जानेगा-पहिचानेगा,
सच्चे मन से श्रद्धा से
ध्यान से उन्हें ध्यायेगा
वह ही भगवान को
ध्यान में पायेगा और
एक दिन अवश्य ही
भगवान बन जायेगा ।

♦♦♦

न-लायक -27

शिष्य, भक्त या सेवक को
उतना ही स्थान देना चाहिए
जितना कि उनके लायक हो
तो देने वाले लायक कहलायेंगे
और लेने वालों को उतना ही
स्थान लेना चाहिए जितना कि
उनके लिये लेने के लायक हो
तब लेने वाले लायक कहलायेंगे
अन्यथा ऐसा समझो कि वे सदैव
न-लायक,नालायक ही कहलायें ।

♦♦♦

मैं भगवान आत्मा हूँ -28

शुद्ध निश्चयनय से आत्मा और परमात्मा की
प्रजातियाँ अलग-अलग नहीं, किन्तु एक ही हैं
भगवान जो बने वे हम सबके बीच से ही बने
क्योंकि भगवान बनने की तो प्रत्येक भव्यों में
निजी योग्यता है इसलिए द्रव्य दृष्टि से प्रत्येक
भव्यात्मा भगवान आत्मा है यदि ऐसा न होता तो
कोई भी प्राणी कभी भी भगवान नहीं बन पाता
सभी संसार में ही रहते और वे भटकते रहते।

अनन्त चतुष्टय-29

प्रत्येक आत्मा शुद्ध निश्चयनय से
अनन्त ज्ञान केवलज्ञान स्वरूपी है
अनन्त दर्शन केवलदर्शन स्वरूपी है
अनन्त सुख व अनन्त बल स्वरूपी है
परमात्मा में भी ये गुण नियम से होते हैं
अन्तर इतना है कि उनके गुण व्यक्त
और हमारे अव्यक्त होते हैं
परन्तु जो अव्यक्त को ही
व्यक्त मान लेते हैं, अत:
वे अज्ञानी ही अज्ञानी होते हैं
अज्ञानता की पहिचान होते हैं ।

मूर्ति इतिहास -30

मूर्ति तो सदा ही मूर्त रही है
पुद्गल से निर्मित पुद्गल रही है
भगवान की केवल पहिचान रही है
भगवान समझ की साधन रही है
मूर्ति जड़ है माना जड़ ही रही है
अचेतन है मान अचेतन कही है
पर सुसुप्त चेतना को जगा ही रही है
परमात्मा से मुलाकात कराती रही है
मूर्ति में मूर्तिमान को जरूर देखो
प्रतिष्ठा के समय की स्थापना भी देखो
मूर्ति को मात्र तुम देखते रहो न
मूर्ति में सदा तुम भगवान को ही देखो
मूर्ति का प्राचीन इतिहास रहा है
अकृत्रिम प्रतिमा का उल्लेख मिला है
जैनागम सदा प्रमाणित रहा है
शाश्वत प्रतिमा का साक्षी रहा है
मूर्ति पूर्वजों की धरोहर हमारी
श्रद्धा और आस्था का प्रतीक रही है
पुरातत्व हर देश में मिलते रहे हैं
जैनत्व की ये पहिचान बनी है।

अध्यायान्त - मंगलाचरण

मूर्ति अकृत्रिम सदा से रही है,
मूर्ति परम्परा अनादि से रही है।
पर मूर्ति ही एक साधन कही है,
जो साध्य माने उसे बाधक रही है।।1।।

प्रतिष्ठित मूर्ति के दर्शन मैं करता,
मूर्ति में ही मूर्ति मान को मैं भजता।
तभी वह दर्शन स्वर्ग सोपान होगा,
वही दर्शन मोक्ष साधन भी होगा।।2।।

मूर्ति के जब मैं सन्मुख रहूँगा,
मूर्ति को तब मैं निहारा करूँगा।
न दृष्टि रखूँगा किसी और पर,
प्रभु में प्रभु को खोजा करूँगा।।3।।

श्रेयांस प्रभु ने न देह दर्शन कहा है,
दर्शन न वैभव का कभी भी कहा है।
दर्शन कभी रत्न स्वर्ण के न करना,
दर्शन सदा आत्म गुणों के ही करना।।4।।

(द्वितीय खण्ड में- सत्रहवाँ अध्याय समाप्त)

अध्याय 18-: मैं सिंधु बनूँगी

अनुक्रमणिका

01 मैं सिंधु बनूँगी
02 सिंधु की शुरूआत
03 बिन्दु की स्वीकारता
04 सिंधु नहीं बन सकेगी
05 बिन्दु का अहंकार
06 अभिमान तज
07 अभिमान, सिंधु-दर्शन तक
08 अभिमान चूर
09 भाग्य निर्माता-भावना
10 रूप बदलती
11 बदलती, छिपती, छिपाती
12 ऐसा काम करती
13 बहाती व रुलाती
14 सीमा में रहो
अध्यायान्त-मंगलाचरण

मैं सिंधु बनूँगी -01

मैं तो एक बिन्दु हूँ
और वह सिंधु है
मुझे तो विश्वास है
अटल विश्वास है
मैं भी सिंधु बनूँगी
अवश्य ही बनूँगी
आज नहीं तो कल
निश्चित ही बनूँगी
सिंधु की संगति से
एक दिन सिंधु और
मैं महासिंधु बनूँगी।

सिंधु की शुरूआत -02

मैं मानती हूँ
कि अभी मैं
जल बिन्दु हूँ
सत्य मैं एक
जलबिन्दु ही हूँ
बिन्दु को बिन्दु
स्वीकारना ही
सिंधु बनने की
शुरूआत है।

बिन्दु की स्वीकारता -03

बिना बिन्दु को
बिन्दुपने की
स्वीकारता के
सिंधु बनने की,
शुभ यात्रा का
आरम्भ, प्रारम्भ
जलबिंदु का फिर
शुभारंभ कैसे?
शुभारंभ किये बिन
जलबिंदु महाकाव्य
पूर्ण बन पायेगा भी कैसे?

♦♦♦

सिंधु नहीं बन सकेगी -04

यदि कोई भी बिन्दु
स्वयं अपने आपको
सिंधु ही मान बैठे तो
वह बिन्दु सदा बिन्दु ही
बनी रहेगी कभी भी
सिंधु नहीं बन सकेगी
न कभी बन पायेगी।

♦♦♦

बिन्दु का अहंकार -05

बिन्दु को स्वयं
अपने आप में
सिंधु मानना ही
बिन्दु का सबसे
अहं अहंकार है
इसे हटाये बिना
बिन्दु, बिन्दु ही रहेगी
सिंधु न बन सकेगी।

♦♦♦

अभिमान तज -06

हे बिन्दु! तू सिंधु
बनना चाहती है तो,
ध्यान रख प्रथमतः,
अभिमान तज और
विनय को भज तभी
तू सिंधु बनेगी सच
मेरी यह बात मान
सरलता, सहजता,
लघुता का ज्ञान,
स्वभाव का ध्यान,
करेगा उत्थान।

♦♦♦

अभिमान, सिंधु-दर्शन तक -07

बिन्दु को सिंधु का
अभिमान तभी तक
ही तो होता रहता है
जब तक कि उसको
सिंधु-दर्शन नहीं होते
अंतर्दर्शन के बिना ही
सदा केवल प्रदर्शन ही
प्रदर्शन होता रहता है।

♦♦♦

अभिमान चूर -08

सिंधु के दर्शन पा
बिन्दु का अभिमान
चूर-चूर हो जाता है,
दूर-दूर हो जाता है
तभी तो वह दर्शन
कूल-कूल होता है
प्रतिकूलता को भूल
सुकून अनुकूल होता है।

♦♦♦

भाग्य निर्माता-भावना -09

भावना सदैव ऊँची रखनी चाहिए
इसके लिए किसी भाग्य की कभी
इंतजारी नहीं की जाती है क्योंकि
भावना भाग्य को निर्मित करती है
भावना शुभ है तो सौभाग्य, अन्यथा
दुर्भाग्य ही दुर्भाग्य प्रदान करती है
सौभाग्य, शान्ति व अनुकूलता देता है
दुर्भाग्य, अशान्ति व प्रतिकूलता देता है
हम स्वतंत्र हैं जैसी भी भावना भायेंगे
नियम से पूर्णत: फल वैसा ही पायेंगे
शास्त्र में शुभभावना को भवनाशनी व
अशुभ भावना को भववर्धिनी कहा है।

♠♠♠

रूप बदलती -10

यह जल बिन्दु कभी
बिन्दु का रूप लेती,
कभी सर, सरिता व
सिन्धु का रूप लेती
कहीं कंकर से शंकर,
राई से पहाड़ बनती
कभी शिष्य तो कभी
वह गुरु बन जाती।

♠♠♠

बदलती, छिपती, छिपाती -11

कभी दिया, घड़ा, कप बनती
कभी खेत की मिट्टी, मूर्ति बनती
कभी घर, तो कभी वह खप्पर भी
कभी फर्श, खलिहान भी बनती

न जाने वह कितने रूप बदलती
व बदलते-बदलते हम सबकी
जीवन पद्धति भी वह बदलती
गरजना भी सभी को सिखाती

और वह बरसना भी सिखाती
कभी कोहरा बन छिपती छिपाती।

♦♦♦

ऐसा काम करती -12

कभी ओस बन पुष्प और
पत्तों पर आ विराजती
सदैव शोभा पाती कभी
भाप बनकर ऊपर जाती
और वह बादल बन जाती
जोर-जोर से शोर मचाती
लोगों में घबड़ाहट लाती।

♦♦♦

बहाती व रुलाती -13

जहाँ न बरसती वहाँ
लोगों को तरसाती,
कभी रोष दिखाती,
फसल, घर, नशाती
विकरालता लाती,
बाढ़ में सब कुछ
बहाती व रुलाती।

♦♦♦

सीमा में रहो -14

यदि सीमा रही तो
सभी की सही ही
किन्तु सीमा टूटी
तो बुरी से बुरी ही
हालात बनाती है
इसलिए गुरुओं ने
बताया सभी को
जिनवाणी ने पाठ
पढ़ाया सभी को
सीमा में रहो तुम
सीमा में चलो तुम
सीमा में बोलो तथा
अपनी इच्छाओं को
सीमित करते रहो तुम।

♦♦♦

अध्यायान्त-मंगलाचरण

मेरी चाह मैं एक सिन्धु बनूँगी,
भले आज बिन्दु पर सिन्धु बनूँगी।
आयेगी जो भी बाधायें मुझ पर,
कभी भी न उनसे पीछे हटूँगी।।1।।

मैं आज बिन्दु हूँ स्वीकार करती,
सिन्धु नहीं हूँ स्वीकार करती।
सिन्धु बनने की मुझ में है युक्ति,
सिन्धु बनने की मुझ में है शक्ति।।2।।

मैं बिन्दु से बिन्दु बनकर मिलूँगी,
पतली सी एक जल धारा बनूँगी।
झरना व नाली व नाला बनूँगी,
फिर मैं नदी बन सिन्धु बनूँगी।।3।।

जग पूज्य तुम हो मेरे पूज्य तुम हो,
श्री वासुपूज्य विश्वपूज्य तुम हो।
विश्वास मुझको मैं सिन्धु बनूँगी
सिन्धु मैं इक दिन बनकर रहूँगी।।4।।

(द्वितीय खण्ड में- अठारहवाँ अध्याय समाप्त)

अध्याय 19-: कलश

अनुक्रमणिका

01 मंगल कलश
02 अष्ट मंगलों में-कलश
03 जन्माभिषेक
04 गन्धोदक
05 की शान्तिधारा
06 प्रतिग्रह में कलश
07 पूजा कलश
08 भरा कलश
09 कलश अमंगल भी
10 सन्मुखी - कलश मंगल
11 दाँया - कलश मंगल
12 प्यास बुझाता कलश
13 जलबिंदु न मिली
14 कलश - कलश है
15 प्यास बुझाती
16 आत्मा ही सुख सागर है
अध्यायान्त-मंगलाचरण

मंगल कलश -01

भरे कलश ही तो
सदैव मंगल, शुभ,
शगुन भी माने जाते
अतः सौभाग्यशाली

अबलाओं, बालाओं
के शीश पर ताने जाते,
वे मांगलिक कार्यों में
महत्वपूर्ण स्थान पाते,

होने वाले कार्यों को
पूर्ण सफल जो बनाते,
इसीलिए तो ये कलश
जग में मंगल कहाते।

♦♦♦

अष्ट मंगलों में-कलश -02

अष्ट मंगल द्रव्यों में भी
कलश को मंगल माना है
तीर्थकरों का जब-जब भी
जन्म कल्याणक
होता है
तब-तब सुमेरू पर्वत पर
जन्माभिषेक उत्सव होता है
सौधर्मेन्द्र कलश करता अतः
लोक में उसे मंगल कर्ता
अमंगल हर्ता माना जाता है।

♦♦♦

जन्माभिषेक -03

जन्माभिषेक के समय
नकली नहीं किन्तु वे
असली रत्नों से जड़ित
नग सितारे चमकते
ऐसे वे बड़े-बड़े विशाल
स्वर्ण से निर्मित कलश
जो एक हजार आठ थे
उन्हें मनुष्य नहीं देव ही
क्षीरसागर के श्वेत, निर्मल,
निर्जंतुक जल बिन्दुओं से
परिपूर्ण भरकर के अपने
अपने हाथों-हाथ लाते।

♠♠♠

गन्धोदक -04

जिनाभिषेक जल ही गन्धोदक है
जो जिनेन्द्र भगवान के देह व
चरण स्पर्श से पवित्र होता है
पाप धो, रोगों को दूर करता,
मन को तनाव मुक्त कर वह
प्रसन्नता से भरता, अत: सभी प्राणी
उसे शिरोधार्य व वन्दन करते
अहो भाग्य मान नमस्कार करते।

♠♠♠

की शान्तिधारा -05

ज- जय - जिन्होंने मिथ्यात्व, राग-द्वेष,
काम,क्रोध,मान,माया,लोभ,आदि
दोषों को नष्ट कर जय व विजय को
ल- लाई-पाई वह भी सदा के लिए तथा
जिन्होंने सत्पथ पर स्वयं चलकर के
सभी को मोक्ष की राह बताई और
ब- बार-बार जो सारे जगत को उस पर
चलने की सही राह बताते तथा उसके
योग्य भी बनाते हैं, वें हैं जगत पूज्य
इन्दु- चन्द्र चिह्न से युक्त श्री चन्द्रप्रभु जिनेन्द्र
जिन्हें जल बिन्दु ने मन से ध्याया और
महा-महाविनय से सम्यक् श्रद्धा सहित
चरणों शीश झुकाया,तीर्थाभिषेक किया,
क्षीर सागर ने जल से कलशाभिषेक किया,
जल से जलधारा की, व सारे विश्व के
हितार्थ अखण्ड विश्व शान्तिधारा की।

प्रतिग्रह में-कलश -06

मुनिवरों के
प्रतिग्रह के समय
जल से पूर्ण भरा
मंगल कलश ही
तो काम आता है
कोई साथ में लेता,
कोई हाथ में लेता,
कोई-कोई उसको
निज माथे पर लेता,
मुनि को पड़गाह लेता
और साथ लेकर के
चौके में प्रवेश कराता,
सविनय उच्चासन देता
तब पाद प्रक्षालन हेतु
कलश ही काम आता
अत: वह प्रसिद्ध जगत में
मंगल कलश कहा जाता।

पूजा-कलश -07

जिन मंदिरों में
व देवालयों में
जिनाभिषेक में,
पूजा-अर्चना,
जलधारा देने,
जल चढ़ाने में,
मात्र कलश ही
तो काम आता
अत:वह मंगल
कलश कहाता।

भरा-कलश -08

कलश मंगल नहीं
किन्तु जल से भरा
कलश ही मंगल है,
जल से खाली नहीं
अर्थात् कलश नहीं
किन्तु जल मंगल है।
यदि कहीं कलश
और जल ये दोनों
मिल जायें तो फिर
वह मंगल ही नहीं
परन्तु महामंगल
जन-जन में माना जाता

कलश अमंगल भी -09

दाग लगा मलीन या
जीर्ण-शीर्ण, पिचका टूटा या फूटा
अथवा पटकेदार भी
कलश शुभ कार्यों में
मान्य नहीं किया जाता
अत:वह मंगल नहीं पर
अमंगल माना जाता है।

♠♠♠

सन्मुखी-कलश मंगल -10

वापिस लौटता हुआ या
वापिस जाता हुआ तथा
पीछे से आगे आता हुआ
जल से भरा कलश भी
मंगल नहीं माना जाता है
किन्तु सन्मुख आता हुआ
और जल से भरा कलश
ही सदा मंगल माना जाता है।

♠♠♠

दाँया-कलश मंगल -11

दाँयीं ओर से,
कहीं बाँयीं ओर
जाता हुआ नहीं
पर बाँयीं ओर से
दाँयीं ओर जाता हुआ
कलश मंगल कलश हैं।

♦♦♦

प्यास बुझाता-कलश -12

प्यासे की प्यास को
गिलास नहीं बुझाता,
कटोरी नहीं बुझाती
किन्तु जल से भरा
कलश ही बुझाता है
इसलिये वह सदा ही
मंगल कलश माना जाता है।

♦♦♦

जलबिंदु न मिली - 13

नरकों में जब हम थे
गर्मी लगती, प्यास सताती
गला सूखता, गाल सूख जाते
ओंठ जीभ सब सूख जाते,
इच्छा जगती और फिर लगता
मानो संपूर्ण सिन्धु ही पी जायें
परन्तु वहाँ पर किसी को
एक जल बिंदु भी नहीं मिलती।

♦♦♦

कलश-कलश है -14

जल से परिपूर्ण कलश
चाहे छोटा हो या बड़ा,
एक हो अथवा अनेक,
सोने का हो या मिट्टी का,
गरीब का हो या अमीर का,
सौभाग्या कन्या के सिर पर हो
पर वह सदा मंगल प्रदाता
मंगल कलश माना जाता।

♦♦♦

प्यास बुझाती -15

जल बिन्दु ही सर्व प्रथम
मिट्टी के नये सकोरे की
प्यास को बुझाती पश्चात्
जन-जन की प्यास बुझाती
और जब तक वह रहती
प्यास बुझाती ही रहती
आश पर पानी नहीं फेरती
किन्तु सभी को पानी देती
और सदैव देती ही रहती
इसलिए वह मंगल कही जाती
अत: जल बिंदु सदा ही लोक में
मंगल, मंगल मानी जाती है।

♦♦♦

आत्मा ही सुख सागर है -16

आज तक हम केवल तन और
मन की ही प्यास बुझाते रहे पर
आत्मा के विषय में नहीं सोचा कि
हमारी आत्मा अनादि काल से
सच्चे सुख व शान्ति की प्यासी है
उसे हमने मात्र बाहरी जल से ही
बुझाने का ही प्रयास किया और
लौकिक सामग्रियों की पूर्ति से ही
शान्ति पाने का प्रयास किया पर
आत्मा की प्यास नहीं बुझ सकी
सत्य तो यही है इन वस्तुओं से
प्यास नहीं बुझती उसको बुझाने
किसी बाहरी वस्तुओं की कोई
आवश्यकता नहीं होती किन्तु
स्वभाव पर दृष्टि डालनी होगी
तब दिखेगा कि हमारे ही अन्दर
सुख का सागर भरा हुआ है
किन्तु हम केवल बाहर में ही
सदैव सुख शान्ति खोजते रहे हैं
यह हमारी सबसे बड़ी भूल है।

अध्यायान्त-मंगलाचरण

क से जो कल्याण कारी रहा है,
ल से जो लाभ दायी रहा है।
श से जो शुभ करता रहा है,
कलश को मंगल कारी कहा है।।1।।

जल से भरा वह पूर्ण स्नान कराता,
जल से भरा वह अभिषेक कराता।
जल से भरा प्यास सबकी बुझाता,
भरा कलश ही शुभ शगुन कहाता।।2।।

मेरा हृदय भी एक कलश बना है,
श्रद्धा के जल से परिपूर्ण भरा है।
भक्ति का उस पर श्रीफल रखा है,
कल्याणकारी मंगल कलश रहा है।।3।।

श्री विमल प्रभु हैं विमल गुरु हैं,
विमल वाणी को हृदय में धँरू मैं।
मंगल कलश सम तेरा नाम लेते,
तुम्हारी कृपा से सभी काम होते।।4।।

(द्वितीय खण्ड में- उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त)

अध्याय 20-:प्यास

अनुक्रमणिका

01 जल बिन जीवन नहीं
02 तीन गुना जल
03 व्यर्थ पानी बहाना तड़पाना
04 जलबिन्दु की कीमत
05 तीन गुना जल क्यों
06 ग्रीष्म मुझे लाई
07 मेरे पास
08 प्यासी ही भर सकती है
09 भरे को भरना कोरा श्रम है
10 गंदे से गंदा हो जाता
11 खाली कर के भरो
12 नदी ने शरण दी
13 भरे को भरना अज्ञानता है
14 जल का भी जीवन
15 जल ही जीवन
16 शुचिता
17 जल बिन्दु का ध्यान
18 शुभाचरण
19 रुको
20 देखो
21 समझो फिर समझाओ
22 प्यास बुझ न सकी
23 प्यास बुझ सकती है
अध्यायान्त-मंगलाचरण

जल बिन जीवन नहीं -01

भोजन बिना जीवन या
जी पाना संभव है परन्तु
पानी बिना जीवन अथवा
जी पाना कभी संभव नहीं है।
भोजन ही जीवन है
वाक्य किसी ने यह नहीं कहा
किसी भी पुस्तक में नहीं लिखा
पर जल ही जीवन है लिखा है व पढ़ा है ।

♦♦♦

तीन गुना जल -02

वसुन्धरा में
तीन हिस्सा
जल होता है,
शरीर में भी
तीन हिस्सा
जल ही तो
महत्वपूर्ण
गति देता है
इसलिए इतना
जल सभी को
आवश्यक होता है।
ऑक्सीजन भी
जल का एक
बदला रूप है
इसलिए ही वह
सिलेन्डर में
पतला जलीय
द्रव्य होता है।

♦♦♦

व्यर्थ पानी बहाना तड़पाना -03

तुमने यदि कभी
व्यर्थ पानी बहाया
समझो, नियम से
किसी प्यासे की
जल के हक को
छीनकर और
प्यास को बढ़ाया,
प्यासा ही तड़पाया
और उसे प्यास से
सता-सता कर मारा।

♦♦♦

जलबिन्दु की कीमत -04

जलबिन्दु की कीमत
तब ही समझ में आती
जब-जब प्यास सताती
अपने कण्ठ तक आती
कण्ठ को पूर्ण सुखाती
और प्राण कण्ठ में लाती
पपीहा वत् उसे तड़पाती
तभी उसके लिए जल की
एक-एक बूँद की कीमत
समझ में आती, होश लाती
सभी की बेहोशी मिटाती।

♦♦♦

तीन गुना जल क्यों -05

सभी संसारी
प्राणियों के
शरीर में तो
तीन हिस्से ही
जल की सदा
आवश्यकता
हुआ करती है
अत:पृथ्वी में
तीन हिस्सा ही
जल होता है
दोनों का ऐसा
महत्वपूर्ण ही
सिद्धांत होता है।

ग्रीष्म मुझे लाई - 06

स्वेद ने
वर्षों वर्ष का
मौन खोला और
खुलकर बोला
मैं नहीं आता
कभी न आता
इसमें मेरी
कोई भी गलती नहीं
मैं व्यर्थ में
गलती रही
गलती जिसकी थी
उसे किसी ने पूछा नहीं
जाना समझा नही
सत्य तो यही था
मैं अकेली नहीं
ग्रीष्म ही मुझे
अपने साथ लाई।

♠♠♠

मेरे पास - 07

खल ने कहा
देखो !
कुदरत ने ही
ऐसी व्यवस्था दी
नाम कर्म की
अवस्था थी कि
मेरे आने के
स्वतंत्र रास्ते
एक नहीं अनेकों
केवल मेरे ही वास्ते थे
मैं सभी के बीच से आई
पर मैं ही आ सकी
मेरे पास ही चला
बाकी तो आस - पास
घूमते ही रहे
चक्कर लगाते ही रहे
पर एक भी
पास आ नहीं सका
मेरे साथ आ नहीं सका ।

♦♦♦

प्यासी ही भर सकती है -08

जो प्यासी, प्याली है
वही तो भर सकेगी
जिसे प्यास नहीं है
वो कभी नहीं भर सकेगी
अथवा कहीं भी जो
कटोरी निर्मल नीर से
लबालब पूर्ण भरी है
उसे भरा नहीं जाता है
परन्तु तुम भरे को ही
सदा भरते जा रहे हो
व्यर्थ पानी बहा रहे हो
खाली को भरो
प्यासे को भरो
तो तुम्हारी सही
पूर्ण समझदारी है
अन्यथा वृद्धि
बोझवाली है।

♦♦♦

भरे को भरना कोरा श्रम है-09

भरे को सदा
भरते रहना
भरने का तो
केवल श्रम,
परिश्रम ही है
ऐसे परिश्रम से
कभी किंचित्
अणुमात्र भी
लाभ नहीं है।

♦♦♦

गंदे से गंदा हो जाता -10

यदि कोई कटोरी
भरी है गंदे नीर से
फिर भी तुम उसमें
क्षीर भरते जाते हो
ध्यान रखो! कभी
ऐसा करने से न तो
वह नीर,नीर रहेगा
न क्षीर, क्षीर रहेगा
पीड़ादायी पीर बनेगा
गंदे की संगति से
पवित्र नीर या क्षीर
नियम से एक दिन
पूर्ण गंदा हो जायेगा।

♦♦♦

खाली कर के भरो -11

भरे को कभी भरना नहीं
और यदि भरना ही पड़े तो
पहले पुराने को खाली कर,
भरने की कोशिश करना
इतनी मेरी बात समझना
फिर भरने का प्रयास करना
तो फिर वह नियम से
अतिशीघ्र ही भर जायेगा।

♦♦♦

नदी ने शरण दी -12

मैं भाग्यशाली थी
कि मुझे नदी मिली,
नदी की संगति मिली
नदी ने मुझे शरण दी
व अपने साथ लिया
बढ़ाया, बढ़ना सिखाया
बढ़ा-बढ़ा, बड़े से बड़ा
सागर महासागर बनाया।

♦♦♦

भरे को भरना अज्ञानता है -13

भरे को भरना
और भरते रहना
भरने वालों की
अज्ञानता ही है
अज्ञानता की ही
वह पहिचान है,
अज्ञानता की ही
केवल निशानी है
अज्ञानता से भरा
कोई अज्ञानी प्राणी
वह अपना स्वत:
परिचय देगा कि
यह कैसा मूर्ख है
भरे को भर रहा है
और भरता ही जा रहा है।

♦♦♦

जल का भी जीवन -14

सुनो! जल ही जीवन नहीं
किन्तु जल का भी जीवन है
यदि तुमने उसके जीवन का
कुछ ख्याल रखा तो वह भी
तुम्हारे जीवन का ख्याल रखेगा
रक्षा का फल सुरक्षा
विनाश का फल विनाश देगा।

♦♦♦

जल ही जीवन -15

जल ही जीवन नहीं, किन्तु
जल सम्पूर्ण जीवन का
एक साधन है, कारण है
कारण में कार्य का उपचार
करने से ही नियम से वह
जल ही जीवन बन जाता है।

♦♦♦

शुचिता -16

जलबिन्दु जब
मुनिराजों के ही
कमण्डल में आयी
तभी तो शुचिता लाई
शुचिता के उपकरण में जा
शौचोपकरण के ही सदा
अर्थ किया रूप बन पायी।

♦♦♦

जल बिन्दु का ध्यान -17

जल बिन्दु ने जब-जब भी
जिनवर का ध्यान लगाया,
पाप नशाया, गुणगान गाया
सहज नाम पाया, यश पाया,
चरणों में शीश झुकाया व
वंदन कर के सौभाग्य पाया।

♦♦♦

शुभाचरण -18

जल बिन्दु ने नित्य ही
शुभ आचरण किया व
"जलबिन्दु महाकाव्य" का
शुभ मंगलाचरण किया
आस्तिकता को साकार,
नास्तिकता का परिहार,
शिष्टाचार का परिपालन,
पुण्य का संचय भी किया,
पुण्य यानि सुख की प्राप्ति
पाप यानि दुख का परिहार
ग्रंथ की निर्विघ्नता के लिये
द्वय कर जोड़, शीश झुका
जिन चरणों में नमन किया।

♦♦♦

रूको -19

रुको! जरा ठहरो!!
कहते ही चले जा रहे,
रुकने का भी तो कहीं
तुम नाम नहीं ले रहे हो
बहती नदी की ही तरह
बहते-बहते ही जा रहे हो
बिना ब्रेक गाड़ी की तरह
चलते-चलते ही जा रहे हो।

देखो -20

हम जब-जब, कहते हैं
जिस-जिस को कहते हैं
पहले यह देखो, कि वे उसे
क्या कुछ समझ पा रहे हैं
कितना,कैसे समझ पा रहे हैं
कुछ भी समझ पाते वे तो
कहना,समझाना सभी सही
अन्यथा तुम्हारा समझाना ही
भैंस के सम्मुख बीन बजाना
और अंधे को दर्पण दिखाना
दिगम्बर मुनिराज के सम्मुख
सूटिंग और सर्टिंग की केवल
फिजूल महिमा बताना ही है।

◆◆◆

समझो फिर समझाओ -21

तुम सदा समझाओ उतना,
जो समझे जितना अन्यथा
अंधे की तरह रस्सी बटना,
फूटे ही घड़े में पानी भरना
मात्र भरते ही भरते रहना है
परन्तु उस घड़े में एक भी बूँद
भर नहीं पाना है केवल श्रम
कोरा परिश्रम पसीना बहाना है।

●●●

प्यास बुझ न सकी -22

प्यास केवल तुम
बाहर की ही मत
बुझाते रहो, किन्तु
अपने अन्दर की
प्यास भी बुझाओ
तुम्हारी आत्मा भी
अनादिकाल से ही
सुख सागर के बीच
एक मीन की तरह
प्यासी ही प्यासी रही
सच्चे सुख की प्यास
वह कभी बुझा न सकी ।

●●●

प्यास बुझ सकती है -23

आज तक तुमने कभी
सच्चे सुख की सम्यक्
परिभाषा ही नहीं समझी,
स्वरूप भी नहीं समझा
इसलिए सागर के बीच
प्यासे के प्यासे बने रहे
तुम प्यास नहीं बुझा सके
यदि प्यास बुझाना है तो
प्रथम उसका वास्तविक
स्वरूप समझ,उपाय खोज
तदनुसार पुरुषार्थ भी करो
तुम्हारी प्यास बुझेगी और
एक दिन अवश्य ही बुझेगी।

अध्यायान्त-मंगलाचरण

अनादि से मैंने जल को पिया है,
सिन्धु को पीकर खाली किया है ।
न प्यास मेरी अभी तक बुझी है,
बुझेगी नहीं ये श्रुति में कही है।।1।।

अब तक मेरी प्यास बुझी नहीं है,
तो ये प्यास मुझको बुझाना नहीं है।
बुझेगी नहीं कोरा श्रम ही रहेगा,
समय व्यर्थ उसमें जाता ही रहेगा।।2।।

आत्मा अनादि से प्यासी रही है,
उसकी न मुझको सुधबुध रही है।
शुभ योग से अब मुझे ध्यान आया,
जल से नहीं धर्म अमृत से बुझाना।।3।।

यदि अनन्त शक्ति कही कर्म की है,
उससे भी मेरी अनन्त शक्ति रहीं है।
बताया है तुमने हे अनन्त स्वामी,
तुम्हारे लिए मेरा अनन्तों नमामि।।4।।

(द्वितीय खण्ड में- बीसवाँ अध्याय समाप्त)

अध्याय 21-:राह की कठनाईयाँ

अनुक्रमणिका

01 राह की कठनाइयाँ
02 अवरोध मिटाती
03 मेरी दुर्दशा
04 जाऊँ तो कहाँ जाऊँ
05 सागर पा सागर बनी
06 जल बिन्दु की प्रार्थना
07 सरिता का उपकार
08 उपादान बिना निमित्त नहीं
09 निमित्त बिना उपादान नहीं
10 स्वतंत्र सत्ता नहीं बनाई
11 जल बिन्दु की उदारता
12 धन्यवाद-जल बिन्दु
13 चन्द्र बिन्दु
14 पानी का रिसना, नाली
15 नदी कहलाती है
16 नदियाँ, सामान्य-विशेष
17 नीर संदेश
18 छपाने में अहंकार है
19 बदनाम सहयोग
20 असहाय पीड़ा
21 लाचारी तमाशा नहीं है
22 व्यापारियों का बाजार
23 झिन्ना
24 सब कुछ लेती- नाली
25 नाली का सम्मान नहीं

26 नमक हराम मत बनो
27 कर्ज चुकाना पड़ेगा
28 कर्ज ही हर्ज है
29 तुम ईमान बहा रहे हो
30 ईमान गया, सम्मान गया
31 मदहोश होश में आ
अध्यायान्त-मंगलाचरण

राह की कठनाइयाँ -01

यद्यपि राह में, आह भरी थी
कभी बड़ी-बड़ी चट्टानों से,
कभी छोटे-मोटे पत्थरों से
टकराती-टक्कर भी खाती
कभी स्वयं ऊँचाई से गिरती,
कभी पत्थरों को भी गिराती।
सरिता नित प्रतिक्षण ही
दुःख सहन करती जाती।

♦♦♦

अवरोध मिटाती -02

अपनी द्रुत गति से
बहती-बहती वह नदी
मार्ग के अवरोधों को
अपने ही साथ बहाती
व उनके अहंकार की
कठोरता को मिटाती
सबको सबक सिखाती
उन्हें गोल-गोल बनाती
अपनी सत्य विजय की
ध्वजा फहराती, लहराती
हटाते हटाते सबको
आगे बढ़ती ही जाती।

♦♦♦

मेरी दुर्दशा -03

वह कभी अपने आपको
भानु की तेज किरणों से
जलते-सूखते हुए देखती
और कभी वह वाष्प बन
ऊपर उठते हुए भी देखती,
कभी वाहनों से या फिर
कभी मनुष्यों व तिर्यंचों के
पैरों तले कुचलती देखती।

♦♦♦

जाऊँ तो कहाँ जाऊँ - 04

स्वेद ने यह देख
जल बिंदु से कहा
सभी मुझे कहते
तू जा यहाँ से
मैं जाऊँ तो जाऊँ कहाँ
जहाँ से आई थी
वे रोम कूप थे
वहाँ से आ तो सकती हूँ
पर वहाँ जा नहीं सकती हूँ
क्योंकि मैं स्वेद बूंद हूँ
वीर की तरह
जिस पथ पर बढ़ जाती
फिर लौटकर कभी
उस पथ पर नहीं आती
जो पग बढ़ाती उसे कभी
वापिस लौटाती नहीं हूँ

सागर पा सागर बनी -05

इन सब संकटों से बचती-बचती
जल निधि तक पहुँच ही गई और
निधि के योग स्व-पुण्य संयोग से
बन गई मैं सागर, जी हाँ! सागर
इसमें मेरा क्या? कुछ भी नहीं
मुझमें तो चलने की शक्ति भी न थी
वहाँ तक पहुँचने की ताकत भी न थी।

जल बिन्दु की प्रार्थना -06

छोटी सी वह जल बिन्दु,
कभी प्यासों के पेट में जाती हुई
निज सहेली बूँदों को देख घबराती
और प्रार्थना करती कि हे भगवान!
कभी मेरे जीवन में ऐसे दिन न आयें
कभी तो वह किन्हीं सहेलियों को
किसी खेतों में पाईप द्वारा घिसटती
बलात् रस्सी बाल्टी से खींची जाती,
कभी बर्तनों द्वारा ले जाती, देखती
पर मैं असहाय अनाथ, निर्बलों की
क्या? कहाँ? कैसे? सहायता करती
सबलों का प्रतिकार भी कैसे करती
नित-प्रति क्षण इसी विचार में डूबती
और सदैव वह आकण्ठ डूबी रहती।

सरिता का उपकार -07

सहस्रों आपदाओं से
निपटने का/बचने का
कोई साहस भी न था
यह तो सब सरिता का
केवल उपकार ही था।

उपादान बिना, निमित्त नहीं -08

मैं मानती हूँ कि
उपादान मेरा था
उपादान के बिना
निमित्त कोरा था
वीर जिनेश का
यही सन्देश था
उपादान के बिना
जिसको निमित्त
तुम कहते हो वह
निमित्त नहीं होता
मित्रवत् होता कहाँ?
वृक्ष बिन वर्षा नहीं,
बीज बिन फल नहीं,
आग बिन धुआँ नहीं,
ठीक इसी प्रकार से
समर्थ उपादान के बिना
समर्थ निमित्त भी नहीं।

निमित्त बिना उपादान नहीं -09

जो कार्यकारी नहीं होता
उसके लिए तुम भले ही
निमित्त कहो,कहते रहो
किन्तु वह वास्तविकत:
समर्थ निमित्त नहीं होता
और समर्थ निमित्त बिना
समर्थ उपादान नहीं होता
मैं यह सब भी जानती हूँ
मानती हूँ कि निमित्त बिना
उपादान कार्यकारी नहीं होता
कार्य सिद्धि में उपादान और
निमित्त दोनों का भी महत्व है
जैसे- रथ में दो चक्के होते हैं
वैसे ही कार्य सिद्धि में उपादान
और निमित्त भी जरूरी होते हैं।

♦♦♦

स्वतंत्र सत्ता नहीं बनाई -10

जल की बिन्दु का
सरिता के लिये
सच्चा समर्पण था
वह तो सरिता में
इस तरह से पूर्ण
हिलमिल गई कि
अपनी स्वतंत्र सत्ता
बनाने, जताने का
कभी भी कोई भी
प्रयास नहीं किया,
न कभी सोचा कि
हमारे बिना कभी
सरिता का कोई
अस्तित्व भी रहेगा
यह जानते हुए भी
उसने अपने अंदर
के अहंकार को
कभी उठने न दिया।

जल बिन्दु की उदारता -11

आज वह इंसान के लिये
एक सबसे बड़ी चुनौती थी
सम्पूर्ण गायकों ने गीत मात्र
सरिता के ही सदैव गाये हैं,
पुजारियों ने पूजा की परन्तु
जल बिन्दु सदा खामोश रही
यह उसकी लाचारी नहीं थी
और ना ही कोई कमजोरी थी
अपितु उसकी ये उदारता थी
जिसने मुझे अपनी शरण दी
गीत उसी के गाये जाने चाहिये
उसी की ही असीम कृपा से
मैं बिन्दु, सिंधु तक पहुँच सकी
और सिंधु, महासिंधु बन सकी।

धन्यवाद-जल बिन्दु -12

आज का ये प्राणी
सिंधु बनने के पूर्व ही
अपने आप के लिए
सिंधु ही मान बैठता है
इसीलिये ही वह सिंधु
बन पाना गंवा बैठता है
अत: मैं अपने आपको
जलनिधि बन करके भी
जल बिन्दु ही मानती रहूँगी
धन्य है! जल बिन्दु!! तुझे
और तुम्हारी उदारता को।

♦♦♦

चन्द्र बिन्दु -13

जिसने अपने आपको
लघु से भी लघु माना,
प्रत्येक अक्षर ने उसके लिए
अपने मस्तिष्क पर
सदैव ही धारण किया
चन्द्र ने अपने ऊपर बैठा,
चन्द्र बिन्दु यह नाम दिया।

♦♦♦

पानी का रिसना, नाली -14

भोली भाली जल बिन्दु,
सर्व प्रथम जल
रिसने के रूप में,
मिटने के रूप में,
अवतीर्ण होती है
मिटती और फिर
नाली बनकर वह
नाले में जा मिलती
नाला नाम को पाती
सब कुछ लेती जाती
फिर भी वह ना-ली
नाली ही कहलाती है
व जो बहा-बहा कर
सब कुछ लाता जाता
तो भी वह ना-लाया
नाला कहलाता है।

नदी कहलाती है -15

देखो, यह बात भी
कैसी अटपटी है
बहते-बहते वह
बे-रोक टोक ही
जल देती जाती है
फिर भी वह न-दी
नदी कहलाती हैं।

नदियाँ,सामान्य-विशेष-16

कुछ नदियाँ शाश्वती हैं तथा
कुछ नदियाँ अशाश्वती भी हैं
जो बरसाती नदी होती वो केवल
बरसात तक ही सीमित रहती हैं
बरसात समाप्त हो जाने के बाद
वे सदैव समाप्त हो जाती हैं पर
ये दो प्रकार सामान्य नदी के हैं
विशेष नदियाँ,नदियाँ ही नहीं,
किन्तु वे महानदी कहलाती हैं
जैसे हिमवन पर्वत,पद्म सरोवर से
उद्गम होने वाली गंगा-सिंधु नदियाँ
ये हिमालय से उत्पन्न नदी नहीं है।

नीर संदेश -17

दान सदैव देते रहो
परन्तु मानो, यही कि
मैंने कुछ नहीं दिया
तो देने का अहंकार
तुम्हें कभी नहीं होगा
फिर तो तुम्हारा दान
कभी छपा कर नहीं
किन्तु छिपाकर होगा
तभी वह दान सम्यक्
अच्छा व सच्चा होगा
छपा कर देना केवल
छपाने के लिये होता है,
नाम के लिये होता है
इसलिये वह दान नहीं,
दान का मात्र बाना होता
जो दिखता, पर होता नहीं
यही नदी का संदेश होता है।

छपाने में अहंकार है -18

कभी आर्थिक परिस्थितियों से
सताये हुए किसी व्यक्ति को
भरी सभा में उसे खड़ा करना,
प्रार्थना के लिए मजबूर करना,
असहाय के नाम को पुकारना,
उसकी फोटो खींचना अथवा
वीडियो बना के वायरल करना,
समाचार पत्रों में प्रचार करना,
दान नहीं अपना अहंकार है
दूसरे की इज्जत को गिराना है
व उसका तिरस्कार करना है।

♦♦♦

बदनाम सहयोग -19

सहयोग आज बदनाम भी हो रहा है
समर्थ व्यक्ति भी आज असमर्थता का
केवल बहाना बना रहा है, खेल में वह
झूठी अटखेलियाँ ही तो खेल रहा है,
जिसे जो जितना सहयोग दिया जाता है
वह वहाँ तक उतना पहुँच ही नहीं पाता
कहीं का कहीं बट, बाँट दिया जाता है
कुछ निजी जेब में पहुँचता तो शेष रहा
कुछ असहायकों में पहुँचा दिया जाता।

♦♦♦

असहाय पीड़ा -20

परिस्थितियों से
सताया व्यक्ति
सभी के सम्मुख
बेबस खड़ा होता,
दीन मुख होकर
प्रार्थना करता है,
आँसू बहाता हुआ
लेता जरूर है पर
बड़े दुःख के साथ
जी हाँ, बड़े दुःख के
साथ ही वह लेता है।

♦♦♦

लाचारी, तमाशा नहीं है-21

सज्जन पुरुष, सज्जन होते हैं
वे मरना पसन्द करते हैं, परन्तु
किसी से कभी कुछ माँगते नहीं,
किसी से हलुआ-पुरी माँग कर
खाने की अपेक्षा, घर की नमक
रोटी को ही वे श्रेष्ठ मानते हैं पर
परिस्थितियाँ लाचार बना देती हैं
किन्तु ध्यान रखो, कभी भी उसकी
लाचारी को तमाशा मत बनाओ।

♦♦♦

व्यापारियों का बाजार -22

नाम प्रतिष्ठा के लिए दी गई
असहाय प्राणियों को सहायता
देने वाले को तथा लेने वाले को
न प्रसन्न रखती, न पसन्द करती
अत: उसमें पवित्रता नहीं रहती,
न उसमें वास्तविक धर्म होता
न धर्म संज्ञा को वह प्राप्त होता किन्तु
वह मात्र नाम प्रतिष्ठा का व्यापार
व व्यापारियों का बाजार होता है।

♦♦♦

झिन्ना -23

जल की बिन्दुएँजब
प्रारम्भ में झिन्ना थी
छिन-छिन में भी तब
वह सदा मिटती थी
बिना झिर के ही
झिरती फिर भी
झिरने का छोटा रूप
झिन्ना कहलाती थी।

♦♦♦

सब कुछ लेती - नाली -24

जल बिन्दु जब भी झिन्ना से
बही तभी वह नाली बनी
सभी जगह का जल ले-ले
और वह लेती-लेती रही
लेती ही रहती फिर भी
जो कभी तृप्त नहीं होती
अपितु लेने के लिये वह
प्यासी ही प्यासी रहती है

जो भी मिला उसे ले लिया,
अपने आप में मिला लिया
कोई छीन न ले इसलिये
दूर-दूर तक बहा लिया
और भी लेने तत्पर रही
फिर भी कुछ नहीं लिया
जो स्वयं बह कर आई
उसे ही बहाती रही
अतः नाली कहलाती रही।

नाली का सम्मान नहीं -25

नाली ने कभी भी
सम्मान नहीं पाया
अछूत की तरह ही
अपमान को पा वह
नाली कहलाती रही।

♦♦♦

नमक-हराम मत बनो -26

महापुरुष कहते हैं,
कि कभी किसी का
कुछ भी न लो, यदि
नमकवत् कुछ लो
तो उसके प्रति तुम
नमकहराम न बनो
नमक की कीमत
नमक से नहीं, किन्तु
मीठे से चुकाने का
सदा ही प्रयास करो
यदि संभव न हो तो
नमक के ऋण को,
नमक से ही चुकाओ
पर अवश्य चुकाओ।

♦♦♦

कर्ज चुकाना पड़ेगा -27

यदि कर्ज लेकर भी
तुमने नहीं चुकाया तो
ध्यान रखो, कालान्तर में
उसका भी ब्याज और
ब्याज पर ब्याज बढ़ेगा
और तुम्हें गधा-घोड़ा
बनकर चुकाना पड़ेगा
अतः चुका न सको तो
कभी भी कर्ज नहीं लो
तो ऋणी बनकर तुम
गंदी नाली भी नहीं बनोगे,
कभी नहीं बनोगे, नहीं बनोगे।

♦♦♦

कर्ज ही हर्ज है -28

कर्ज में जीना कोई जीना नहीं
फर्ज में जीना ही तो जीना है
अन्यथा हर्ज पर हर्ज रहेगा
खर्च भी नहीं निकल सकेगा
इसलिए पैर उतने ही फैलाओ
जितनी कि तुम्हारी चादर है।

♦♦♦

तुम ईमान बहा रहे हो -29

नाली तो सदा
गंदा बहाती है

पर तुम उसमें
अपने धर्म को,
सत्कर्तव्यों को,
स्व सम्मान को,
सु-विश्वास को,
पूर्ण बहा रहे हो
व उन्हें अपवित्र
बनाते जा रहे हो
बेहोशी में सब कुछ
बहाते जा रहे हो।

ईमान गया, सम्मान गया -30

ईमान गया तो बेईमान कहलाओगे
फिर इन्सान नहीं, हैवान कहलाओगे
और तुम एक दिन शैतान बन जाओगे
अपना व अपनों का सम्मान गिराओगे
गिरते-गिरते मिट्टी में मिल जाओगे
कहीं भी कुछ भी तुम ना पा पाओगे।

मदहोश होश में आ -31

ओ मदहोश!
होश में आ
और अपना
विवेक जगा
देख तू क्या
कर रहा है?
क्या तुझको
करना था तू
क्या करने लगा?
जो कर्तव्य है
उसे ही कर,
अकर्तव्य को
कभी न कर
नातर तू कभी
ना-तर पायेगा
भव सिंधु से
कभी तू पार
न हो पायेगा
मझधार में ही
गोता खायेगा।

अध्यायान्त-मंगलाचरण

जो काठ सी हो पाषाण सी हो,
या लोह सम भी कठनाईयाँ हो।
तो न डिगूँगा कभी लक्ष्य से मैं,
निश्चित ही लक्ष्य पाकर रहूँगा।।1।।

कठिनाईयों से न कभी डरूँगा
विवेक पूर्वक पुरुषार्थ करूँगा
मैं सामना नित उसका करूँगा,
इम्तिहान उसका देता रहूँगा।।2।।

कैसे ही तुम पा सकोगे सफलता,
कैसे भी सम्हाल सकोगे सफलता।
कठिनाई, यों ही इम्तिहान लाती,
पात्रता को वे तेरी देख पाती।।3।।

हे नाथ श्री धर्म सम्बल हो तेरा,
हे नाथ मुझको सहारा हो तेरा।
जो पीयूष सम है भव तारणी है,
जिनवाणी माता सुख कारणी है।।4।।

(द्वितीय खण्ड में- इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त)

द्वितीय खण्ड समाप्त

गणाचार्य श्री विरागसागर जी महाराज

जन्म : 2 मई 1963, पथरिया (म.प्र.)

माता : श्रीमती श्यामा देवी

पिता : श्री कपूरचन्द्र जी जैन

जन्म नाम : अरविन्द कुमार जैन

क्षु. दीक्षा : 20 फरवरी 1980, बुढ़ार (म.प्र.)

दीक्षा गुरु : तपस्वी सम्राट आचार्य श्री सन्मतिसागर जी

मुनि दीक्षा : 9 दिसम्बर 1980, छ. संभाजी नगर

नाम : मुनि विरागसागर जी

दीक्षा गुरु : निमित्तज्ञानी आचार्य श्री विमलसागर जी

आचार्य पद : 11 नवम्बर 1992, द्रोणगिरि (म.प्र.)

दीक्षाएँ : 7 आचार्य, 7 उपाध्याय, मुनि 91, आर्यिका 83 ऐलक-4, क्षुल्लक-25, क्षुल्लिका 32 शिष्य-249, प्रशिष्य-265, कुल-514

आचार्य पद त्याग : 3 जुलाई 2024, जालना (महा.)

वीरमरण : 4 जुलाई 2024, जालना (महा.)

भारतीय ज्ञानपीठ

18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली - 110 003

संस्थापक : स्व. साहू शान्तिप्रसाद जैन, स्व. श्रीमती रमा जैन